विज्ञान, धर्म और कला

प्रवचन-क्रम

1. विज्ञान, धर्म और कला...2
2. धर्म है बिल्कुल वैयक्तिक...16
3. सेवा स्वार्थ के ऊपर..30
4. निर्विचार होने की कला..41
5. प्रेम और अपरिग्रह...57
6. मृत्यु का बोध...71
7. धर्म और विज्ञान का समन्वय..89
8. विधायक विज्ञान..101
9. विज्ञान स्मृति है और धर्म ज्ञान...116 10..धर्म को वैज्ञानिकता देनी जरूरी है .... 130 11..नया मनुष्य 138

विज्ञान, धर्म और कला
पहला प्रवचन

विज्ञान, धर्म और कला

मेरे प्रिय आत्मन्!
विज्ञान है सत्य की खोज, धर्म है सत्य का अनुभव, कला है सत्य की अभिव्यक्ति। विज्ञान प्राथमिक है, पहला चरण है। और विज्ञान चाहे तो बहुत देर तक बिना धर्म के जी सकता है। क्योंकि सत्य की खोज ही उसका लक्ष्य है। मैंने कहा, बहुत देर तक बिना धर्म के जी सकता है। और आज तक बिना धर्म के विज्ञान जीया है। न केवल बिना धर्म के बल्कि विज्ञान धर्म को अस्वीकार करके जीया है। जी सकता है। कोई रास्ता चाहे तो बिना मंजिल के भी हो सकता है। लेकिन विज्ञान जैसे ही विकसित होगा--मनुष्य सिर्फ सत्य को जानना ही नहीं चाहेगा--सत्य होना भी चाहेगा। इसलिए बहुत देर तक विज्ञान भी धर्म के बिना नहीं रह सकता है। और उसके न रहने की संभावना रोज-रोज प्रकट होती चली जाती है।
विगत सदी के बड़े से बड़े वैज्ञानिक--चाहे आइंस्टीन हो, चाहे मैक्स प्लांक हो, चाहे एडिंग्टन हो, चाहे कोई और हों। वे सारे लोग जीवन के अंतिम क्षणों में धर्म की बात करते हुए पाए गए हैं। यह बड़ी कीमती संभावनाएं हैं। आने वाली सदी में विज्ञान रोज-रोज धार्मिक होता चला जाएगा। क्योंकि कोई रास्ता मंजिल के बिना रह सकता है, लेकिन मंजिल के बिना कोई रास्ता पूरा नहीं हो सकता।
और मंजिल के बिना अगर कोई रास्ता हो तो अर्थहीन भी होगा, असंगत भी होगा, अब्सर्ड भी होगा। क्योंकि जो रास्ता किसी मंजिल पर न पहुंचाता हो, उसको रास्ता कहना ही बहुत कठिन है। एक दिन रास्ते को मंजिल भी स्वीकार करनी पड़ती है। और कोई साधन साध्य के बिना अर्थपूर्ण नहीं हो पाता है।
इसलिए पश्चिम में जहां विज्ञान का गहरा प्रभाव है, रोज-रोज अर्थहीनता, मीनिंगलेसनेस का भी विस्तार होता चला गया है।
विज्ञान को धर्म होना पड़ेगा।
धर्म का अर्थ हैः सत्य के साथ एक होने की आकांक्षा, सत्य का अनुभव। आदमी इतने से तृप्त नहीं हो सकता कि सत्य क्या है। उसकी तृप्ति तो पूरी तभी होती है जब वह सत्य के साथ एक हो जाए। हम यही न जानना चाहेंगे कि प्रेम क्या है; हम प्रेम होना भी चाहेंगे। हम यही न जानना चाहेंगे कि धन क्या है; हम धनी होना भी चाहेंगे। हम यही न जानना चाहेंगे कि सत्य क्या है; हम सत्य होना भी चाहेंगे। क्योंकि जानना सदा होने के लिए एक चरण--उसके अतिरिक्त और कुछ भी नहीं है। इसलिए दूसरा चरण, मनुष्य की खोज का धर्म है।
धर्म चाहे तो बहुत दिन तक बिना कला के जी सकता है। जैसा मैंने कहा कि विज्ञान चाहे तो बिना धर्म के जी सकता है। धर्म चाहे तो बहुत दिन तक बिना कला के जी सकता है। लेकिन जब धर्म की बहुत गहरी अनुभूति होगी, तो जो हमने जाना है वह प्रकट भी होना चाहेगा। सिर्फ जो हम हो गए हैं, उतना ही काफी नहीं है। जो हम हो गए हैं वह अभिव्यक्त भी होना चाहेगा। हम न केवल जानना चाहेंगे कि प्रकाश कैसे जन्मता है, हम प्रकाश होना भी चाहेंगे। लेकिन हम प्रकाश होने से चुप न होंगे; हम प्रकाश की किरणों को दूर-दूर तक फैलाना भी चाहेंगे।
जिस दिन धर्म की अनुभूति इतनी प्रगाढ़ होती है कि ओवरफ्लोइंग शुरू हो जाए, जिस दिन धर्म की अनुभूति इतनी गहरी होती है कि हमसे बाहर बहने लगे, चारों तरफ फैलने लगे, उस दिन कला का जन्म होता है। धर्म चाहे तो बहुत देर तक कला से बच सकता है, लेकिन बहुत ज्यादा देर तक नहीं बच सकता। अनुभूति जब गहरी होगी, तो बंटना चाहेगी। जब बादल बहुत सघन हो जाएंगे, तो बरसना चाहेंगे। और जब नदी में वेग आएगा, तो वह सागर की तरफ दौड़ना चाहेगी। और जब प्रेम हमारे हृदय में भर जाएगा, तो वह चारों तरफ बरसना चाहेगा। और जब बीज पूर्ण विकसित होगा, तो फूट कर अंकुर बनना चाहेगा।
सत्य की अनुभूति पर ही बात नहीं रुक जाती; सत्य की अभिव्यक्ति भी अनिवार्य है। और बड़े आश्चर्य की बात है कि जितना सत्य अनुभव करने से मिलता

है, उससे हजार गुना सत्य अभिव्यक्त करने से वापस लौट आता है। क्योंकि जो हम देते हैं, वह हमें वापस हजार गुना होकर मिलने लगता है। जिस चीज में हम दूसरों को साझीदार बनाते हैं, जिस चीज में हम दूसरों को बंटवारे में मित्र बनाते हैं, वह चीज हम पर लौटने लगती है। सत्य की अनुभूति अंततः सत्य की अभिव्यक्ति बनती है।
विज्ञान पहला चरण है मनुष्य की यात्रा का, धर्म दूसरा चरण है, कला उसका अंतिम चरण है। लेकिन यह बड़ी कठिन बात है, जैसा मैं कह रहा हूं। इतिहास में उलटा हुआ है। इतिहास में ऐसा हुआ कि धर्म पहले आया, कला बाद में आई, और विज्ञान सबसे बाद में आया। इसलिए कुछ और बातें भी आपसे कहना चाहूंगा। जो धर्म विज्ञान के पहले आ जाएगा, वह अवैज्ञानिक होगा, सुपरस्टीटस होगा। जो धर्म मनुष्य के पास विज्ञान के पहले आ जाएगा, वह अंधविश्वास के निकट होगा, वैज्ञानिक नहीं हो सकता।
इसलिए जो धर्म विज्ञान के पहले पृथ्वी पर आ गया, वह जिन्होंने अनुभव किया होगा, बहुत थोड़े से लोगों ने--कोई जीसस, कोई कृष्ण, कोई बुद्ध, कोई महावीर, कोई कनफ्यूशियस, दस-पांच लोगों के जीवन में तो वह गहरे अर्थों में था, लेकिन हम सबके जीवन में वह अंधविश्वास से ज्यादा नहीं हो सकता था। विज्ञान के ठीक विकास के बाद जो धर्म आएगा, वही वैज्ञानिक हो सकता है। यही वजह है कि दुनिया में होना तो चाहिए था एक धर्म, लेकिन हो गए अनेक। बीमारियां अनेक हो सकती हैं, स्वास्थ्य अनेक नहीं होते। मैं बीमार पडूंगा, तो अपने ढंग से; आप बीमार पड़ेंगे, तो अपने ढंग से। और बीमारियों के हजारों नाम हैं--कोई टी.बी. से बीमार पड़ता है, कोई कैंसर से बीमार पड़ता है। लेकिन जब आप स्वस्थ हो जाते हैं तो स्वास्थ्य का कोई भी नाम नहीं है। तब आप यह नहीं कह सकते कि मैं किस ढंग से स्वस्थ हो गया हूं। आप सिर्फ स्वस्थ हो जाते हैं।
अधर्म हजार हो सकते हैं, धर्म हजार नहीं हो सकते। अधर्म बीमारी है, धर्म स्वास्थ्य है। इसलिए धर्म तो एक ही हो सकता है, लेकिन एक नहीं हो सका। क्योंकि विज्ञान के पहले जो भी आएगा वह अंधविश्वास होगा, वह विज्ञान नहीं बन पाता है।
अब पहली बार पृथ्वी पर धर्म के अवतरण की समुचित व्यवस्था हो पा रही है। और भविष्य में जो धर्म अवतरित होगा--वह हिंदू नहीं होगा, वह मुसलमान नहीं होगा, वह जैन नहीं होगा, वह ईसाई नहीं होगा--वह सिर्फ धर्म होगा। और जिस दिन मनुष्य-जाति पर सिर्फ धर्म का अवतरण होगा, उस दिन ही हम धर्म के नाम पर हो रही नासमझियों से मुक्त हो सकेंगे, उसके पहले नहीं हो पाएंगे। आश्चर्य की बात है कि साधारण धार्मिक आदमी हिंदू-मुसलमान होता है, सो ठीक। संन्यासी भी हिंदू, मुसलमान, ईसाई और जैन होता है? कम से कम संन्यासी तो सिर्फ धार्मिक हो? वह भी संभव नहीं हो पाया है। आश्चर्यजनक है यह बात! असल में समाज के रोग संन्यासी को भी पकड़ लेते हैं। समाज की सीमाएं और विशेषण संन्यासी को भी घेर लेते हैं। समाज की गुलामियां और समाज के बंधन संन्यासी को भी जकड़ लेते हैं।
धर्म पैदा हुआ। कुछ थोड़े से व्यक्तियों के जीवन में उसकी अनुभूति गहरी थी। लेकिन समूह के जीवन में वह तब तक नहीं पहुंच सकता था जब तक कि विज्ञान ठीक भूमि को साफ न कर दे। अब विज्ञान ने भूमि ठीक से साफ कर दी है। और अब धर्म अवैज्ञानिक ढंग से नहीं स्वीकृत होगा, इसीलिए बड़ी कठिनाई पैदा हो रही है।
जो लोग अंधविश्वासों को पकड़े हुए हैं, वे सोचते हैं कि सारी दुनिया अधार्मिक होती जा रही है। वे बड़ी भ्रांति में हैं। सारी दुनिया अधार्मिक नहीं हो रही, सारी दुनिया अंधविश्वासों से मुक्त होने की कोशिश कर रही है और नये धर्म के जन्म की संभावनाओं को प्रकट कर रही है।
आज बड़ी अजीब हालत है। आज अजीब हालत यह है कि जिसको हम कहें कि जो मंदिर नहीं जाता, हमारे पुराने शास्त्र को नहीं मानता, हमारे पुराने सिद्धांत को नहीं मानता, बहुत संभावना उलटी हो गई है। संभावना यह हो गई है कि उस आदमी की जिंदगी में धर्म थोड़ा ज्यादा हो सकता है बजाय उनके जो मंदिर जाते हैं, पूजा करते हैं, प्रार्थना करते हैं।

सच तो यह है कि इस सदी के समस्त बुद्धिमान, विचारशील लोग धर्म के कारागृहों में खड़े होने को राजी नहीं रह गए हैं। उसका कारण यह नहीं है कि लोग अधार्मिक हो गए हैं, उसका कारण कुल इतना है कि अब धर्म वैज्ञानिक होने की चेष्टा कर रहा है। और अवैज्ञानिक धाराएं उसे छोड़नी पड़ेंगी। उन्हें वह छोड़ रहा है। तो आज उलटी बात हुई है।
अगर हम बुद्ध के जमाने में लौटें या कृष्ण के जमाने में लौटें, तो उस जमाने का श्रेष्ठतम बुद्धिमान आदमी धार्मिक था। और आज अगर हम धर्म की तरफ देखें, तो आज का सबसे कम विकसित आदमी धार्मिक मालूम पड़ता है। सबसे कम शिक्षित, सबसे कम बुद्धिशाली, सबसे ज्यादा पिछड़ा हुआ आदमी आज धार्मिक मालूम पड़ता है। कृष्ण के जमाने में सबसे ज्यादा विकसित, सबसे ज्यादा बुद्धिमान आदमी धार्मिक मालूम पड़ता है। यह हैरानी की बात है।
आज जो आदमी ठीक से शिक्षित है, जो आदमी ठीक से सोच-विचार करता है, वह आदमी अचानक अधार्मिक क्यों हो जाता है? यह सोचने जैसी बात है। हम कहेंगे, यह शिक्षा गलत है। हम कहेंगे कि ये, ये तर्क गलत हैं जो आज लोगों को दिए जा रहे हैं, इसलिए लोग अधार्मिक हो रहे हैं।
नहीं, ऐसा नहीं है। बात उलटी हो गई है। बात ऐसी हो गई है कि धर्म अब वैज्ञानिक सुचिंतित होने की चेष्टा कर रहा है। और जब सुचिंतित होने की चेष्टा धर्म करेगा, तो निश्चित ही विचारशील लोग बंधी हुई धाराओं के बाहर हो जाएंगे। धर्म अब वैज्ञानिक हो सकता है, क्योंकि विज्ञान अब विकसित हुआ है। जैसे आज से सौ साल पहले का वैज्ञानिक ईश्वर को इनकार कर रहा था, लेकिन आज का वैज्ञानिक उतनी हिम्मत से ईश्वर को इनकार नहीं कर सकता है। आइंस्टीन ने मरने के पहले कहा कि जब मैंने विज्ञान की खोज शुरू की थी,
तो मैं सोचता था कि आज नहीं कल, सब जान लिया जाएगा।
और आइंस्टीन शायद मनुष्य-जाति में पैदा हुए उन थोड़े से लोगों में से
एक है, जिसने सर्वाधिक जाना है।
मरने के दो या तीन दिन पहले आइंस्टीन ने अपने एक मित्र को कहा कि जो भी मैंने जाना है, आज मैं कह सकता हूं कि उससे सिर्फ मुझे मेरे अज्ञान का पता चलता है और कुछ भी पता नहीं चलता। और जो जानने को शेष रह गया है, वह इतना ज्यादा है कि जो हमने जान लिया है, उसकी तुलना भी नहीं की जा सकती। मरने के पहले आइंस्टीन ने कहा कि मैं एक रहस्यवादी की तरह मर रहा हूं, एक वैज्ञानिक की तरह नहीं। मुझे जगत रोज-रोज ज्यादा मिस्टीरियस, ज्यादा रहस्यपूर्ण होता चला गया है। जितनी ही मैंने खोज की है, उतना ही मैंने पाया है कि खोज करने को और भी ज्यादा आयाम खुल गए हैं, और डाइमेन्शंस खुल गए हैं। जितने दरवाजे मैंने खोले, पाया कि और बड़े दरवाजों पर पहुंच गया हूं। जितने रास्ते मैंने पकड़े, पाया कि और बड़े राजपथों पर मुझे पहुंचा दिया गया है। जितनी कुंजियां मैंने पाईं, उनसे जो ताले मैंने खोले, पाया कि और बड़े ताले आगे लटके हुए हैं।
एडिंग्टन ने अपने संस्मरणों में लिखा है कि जब मैंने सोचना शुरू किया था, तो मैं समझता था कि जगत एक वस्तु है। लेकिन अब मैं कह सकता हूं कि मोर एण्ड मोर आर दि वर्ल्ड इ.ज लुकिंग नॉट लाइक ए थिंग बट लाइक ए थॉट। लेकिन अब मैं कह सकता हूं कि जगत वस्तु की तरह मालूम नहीं पड़ता, बल्कि एक विचार की तरह मालूम पड़ता है।
अगर जगत एक विचार है, तो विज्ञान ने छलांग लगा ली धर्म में। और जगत अगर
एक अनंत रहस्य है, तो हमने परमात्मा शब्द का उपयोग किया हो या न किया हो; हम परमात्मा के द्वार के पास खड़े हो गए हैं। और अगर जगत हमारे ज्ञान से नहीं सुलझता, सिर्फ जानने से नहीं सुलझता, तो बहुत देर नहीं है जब हम यह बात कह पाएंगे कि जानने से नहीं सुलझेगा; होने से सुलझेगा। नॉलेज काफी नहीं है, बीइंग की जरूरत पड़ गई है। इतना काफी नहीं है कि हम दूर खड़े होकर देखें, जरूरी हो गया है कि हम एक हो जाएं, तन्मय हो जाएं, डूब जाएं और जानें। शायद जानने का अब एक ही रास्ता है, वह होना है।
विज्ञान अब धर्म के लिए रास्ता खोज रहा है, लेकिन कला भी आ चुकी है दुनिया में। और मैं मानता हूं कि कला तो तब आएगी, जब बड़े व्यापक पैमाने पर धर्म आ जाए। तो फिर कला के नाम पर जो आया है, वह क्या है? कला के नाम पर

निन्यानबे प्रतिशत तो वासना का उभार है। नाइंटी नाइन परसेंट। चाहे काव्य हो, चाहे चित्र हो, चाहे मूर्तियां हों, चाहे संगीत हो, कला के नाम पर अभी जो भी पृथ्वी पर है, वह मनुष्य की वासनाओं को उत्तेजना देने के अतिरिक्त और कुछ भी नहीं है। कह रहा हूं, निन्यानबे प्रतिशत। चाहे कालिदास के ग्रंथ हों और चाहे भवभूति के और चाहे बॉरेन की कविताएं हों, और चाहे शेली की। पृथ्वी पर जो भी कला के नाम पर अब तक आया है, वह मनुष्य की इंद्रियों को स्टुमलेट का काम कर रहा है और कुछ भी नहीं कर रहा। असल में धर्म के बाद ही वास्तविक कला का जन्म हो सकता है, लेकिन अभी धर्म का ठीक जन्म ही नहीं हो पाया।
एक प्रतिशत मैंने छोड़ दिया। निन्यानवे प्रतिशत कला के नाम पर, सिर्फ मनुष्य की वासनाओं का विस्तार है। और एक प्रतिशत, एक प्रतिशत में कुछ थोड़ा सा हिस्सा उनका है, जिन्होंने धर्म को जाना और कला को जन्म दिया। जैसे मीरा के भजन हों, तो मीरा के भजन साधारण भजन नहीं हैं। मीरा के भजन एक धर्म की अनुभूति से प्रकट हो रहे हैं। एक अनुभूति है भीतर और फिर अभिव्यक्ति हो रही है। कुछ पाया गया है, और अब बांटा जा रहा है। आमतौर से लोग समझते हैं कि मीरा ने भजन कर-करके भगवान को पा लिया।
मैं नहीं समझता। मीरा ने भगवान को पाकर भजन गाने शुरू किए हैं। क्योंकि भजन को गाकर कोई भगवान को कैसे पा सकता है? इतना सस्ता भगवान कि आप भजन गाएंगे और भगवान को पा लेंगे? नहीं, भजन गाना मीरा का भगवान को पाने का रास्ता नहीं है, भगवान को पाने का जो फुलफिलमेंट है, जो तृप्ति है उसकी अभिव्यक्ति है, धन्यवाद है। साधना नहीं है।
चैतन्य नाच रहे हैं। वह नृत्य कोई भगवान को पाने के लिए नहीं है, यह तो सभी नाचने वाले भगवान को पा लें। और, चैतन्य से अच्छे नाचने वाले जमीन पर हैं। और, मीरा से अच्छे गाने वाले लोग जमीन पर हैं। लेकिन चैतन्य के नाच की बात और है। चैतन्य की यह थिरक, भगवान को पाने के लिए नहीं, भगवान को पा लेने की थिरक है। यह भगवान समा गया भीतर। अब यह चैतन्य नहीं नाच रहे हैं। अब यह भगवान ही नाच रहा है। अब यह प्याली भर गई है और ऊपर से बह रही है। और अब यह बहती हुई प्याली से जो कला पैदा होगी, वह बात अलग है।
कृष्ण की बांसुरी... कृष्ण से अच्छे बांसुरी बजाने वाले हुए हैं, हो सकते हैं। शायद प्रतियोगिता में कृष्ण बांसुरी बजाने में जीतेंगे कि नहीं जीतेंगे, यह पक्का नहीं कहा जा सकता। लेकिन फिर कृष्ण की बांसुरी का कोई मुकाबला नहीं है। बांसुरी के तल पर कृष्ण को जीतने वाले लोग हो सकते हैं, लेकिन कृष्ण के तल पर कोई मुकाबला नहीं है। क्योंकि जहां से यह बांसुरी के स्वर आ रहे हैं, वहां अब कृष्ण नहीं हैं, वहां परमात्मा ही हैं। यह बांसुरी कोई खबर दे रही है, यह बांसुरी भीतर जो बजा है, उसे बाहर फैला रही है। भीतर जो अनुगूंज पैदा हुई है उसे बाहर पहुंचा रही है।
एक प्रतिशत कला ऐसी है, जिसे हम कला कह सकें। बाकी निन्यानवे प्रतिशत कला सिर्फ मनुष्य की वासनाओं की सेवा से ज्यादा नहीं है। और इस निन्यानवे प्रतिशत कला में मैं उस कला की भी गिनती करना चाहूंगा जो वासना के विपरीत खड़ी है। इसे थोड़ा समझना मुश्किल पड़ेगा। क्योंकि वासना के खड़े होने के दो ढंग हैं, एक तो वासना सीधी खड़ी होती है, जिससे हम परिचित हैं। और कभी-कभी वासना शीर्षासन भी करती है, जिससे हम परिचित नहीं हैं। वासना जब शीर्षासन करती है, तब हम समझते हैं कि यह आध्यात्मिक कला हो गई। नहीं, वासना के शीर्षासन करने से भी वासना वासना ही रहती है, आध्यात्मिक नहीं हो जाती। अब जैसे उदाहरण के लिए मैं आपको कहूं, एक चित्र शायद यहां होगा। क्योंकि हरिकिशन दास जी की डायरी में वह चित्र मैंने देखा। उस चित्र में एक सुंदर युवती का चित्र है, युवा। साथ में एक बूढ़ी स्त्री का चित्र है, और नीचे कैप्शन है, नीचे शीर्षक दिया हुआ है। जिसका कुछ मतलब ऐसा है कि जवानी बहुत देर नहीं रुकती, और बुढ़ापे पर ध्यान होना चाहिए। लेकिन इसको मैं आध्यात्मिक नहीं कहूंगा। क्योंकि यहां भी जो सोचने का ढंग है, वह जवानी पर ही खड़ा है। और अगर बुढ़ापे की निंदा की जा रही है तो सिर्फ इसलिए कि जवानी ज्यादा दिन नहीं टिकती।

अगर ज्यादा दिन टिके तो? फिर इस चित्र का क्या होगा? आज नहीं कल विज्ञान रास्ते खोज लेगा कि बुढ़ापा नहीं टिकेगा, जवानी टिकेगी। फिर इस चित्र का क्या होगा? और अभी हम जिस आदमी से कह रहे हैं कि जवानी ज्यादा दिन नहीं टिकती, बुढ़ापे का खयाल रखो। उस आदमी को दूसरा खयाल भी आ सकता है कि जो चीज ज्यादा देर नहीं टिकती, उसको ज्यादा भोग लो। यह दोनों संभावनाएं हैं। और फिर जो आप जोर दे रहे हैं, वह यही दे रहे हैं न कि जवानी ज्यादा देर नहीं टिकती। लेकिन जवानी आपको भी कीमती है और बुढ़ापा आपको भी कीमती नहीं है। लेकिन धार्मिक कला बुढ़ापे की भी कीमत मानती है। बुढ़ापे का अपना सौंदर्य है। किसने कहा कि बुढ़ापे में सौंदर्य नहीं है। बचपन का अपना सौंदर्य है, जवानी का अपना सौंदर्य है, बुढ़ापे का अपना सौंदर्य है। और धार्मिक आदमी के लिए जन्म ही सुंदर नहीं है; मृत्यु का भी अपना सौंदर्य है। जब सुबह सूरज उगता है, तब ही सुंदर नहीं होता; जब सांझ डूबता है, तब भी सुंदर होता है। और अगर कोई आदमी सच में, ढंग से बूढ़ा हो जाए... बहुत कम लोग हो पाते हैं, क्योंकि जवानी इतने जोर से पकड़ लेती है कि आदमी ठीक से बूढ़ा नहीं हो पाता।
अगर कोई आदमी ठीक से बूढ़ा हो जाए, तो बूढ़े के बराबर सुंदर, जवान कभी भी नहीं हुआ है। क्योंकि जवानी में उत्तेजना है, जवानी में तूफान हैं, आंधियां हैं। बुढ़ापे का सौंदर्य बड़ा शांत सौंदर्य है। बुढ़ापे का सौंदर्य संध्या का सौंदर्य है। सुबह तो जिंदगी के तनाव की है। दिन भर का उपद्रव शुरू हो रहा है। सांझ सब उपद्रव शांत हो गया और रात का विश्राम निकट आ रहा है। सांझ के सूरज का मुकाबला क्या है? पक्षी लौटने लगे हैं घर को, वृक्ष मौन और निद्रा में जाने लगे हैं, सूरज डूबने लगा है, अंधेरा पृथ्वी को घेर लेगा। सब चुप हो जाएगा। सब परमात्मा में एक अर्थों में लीन हो जाएगा। बुढ़ापा भी संध्या है।
लेकिन जब हम चित्र पर जवानी का चित्र बनाते हैं और बुढ़ापे का चित्र बनाते हैं और कहते हैं, सावधान! बुढ़ापा आ रहा है, तो दो बातें पक्की हैं। जवानी हमारे लिए कीमती है और बुढ़ापे के हम भी दुश्मन हैं। तो यह आध्यात्मिक चित्र नहीं हो सकता। यह सिर्फ परवर्टिड पैशन है। यह सिर्फ शीर्षासन करती हुई वासना है। और वासनाग्रस्त आदमी इसमें से यह मतलब नहीं निकालेगा, जो वासना के दुश्मन ने निकाला है। वासनाग्रस्त इस चित्र को देख कर एकदम दौड़ पड़ेगा, वह कहेगा, बुढ़ापा निकट आ रहा है। दिन जल्दी डूबने के हैं, जो भी करना है कर लो। तो वह कहेगा, इट ड्रिंक एण्ड बी मैरी। अब जल्दी पीओ, जल्दी खाओ, जल्दी नाचो, क्योंकि बुढ़ापा करीब आ रहा है। और इन दोनों का तर्क एक जैसा है, इस तर्क में फर्क नहीं है। इन दोनों का तर्क यही है कि बुढ़ापा आ रहा है। मौत आ रही है।
नहीं, इसको मैं अध्यात्मिक चित्र नहीं कहूंगा। अध्यात्मिक कला जमीन
पर बहुत कम पैदा हो सकी। या तो वासनाग्रस्त कला है, या वासना विरोधी कला है। और जो वासना के विरोध में है, वह भी वासनाग्रस्त है। जो दुश्मन है वासना का, वह भी वासनाग्रस्त है। जो कह रहा है कि सुख क्षणभंगुर है, इसलिए छोड़ो। वह असल में सुख छोड़ने को नहीं कह रहा है, वह यह कह रहा है कि क्षणभंगुर है, इसलिए छोड़ो। लेकिन अगर शाश्वत हो तो?
तो फिर छोड़ना नहीं है। इसलिए जमीन पर स्त्री को छोड़ो और स्वर्ग में अप्सरा को भोगो। यह धार्मिक आदमी है! जमीन पर शराब छोड़ो और स्वर्ग में शराब के चश्मे बह रहे हैं, उसमें नहाओ। जमीन पर स्त्रियों से बचो और स्वर्ग की अप्सराएं सोलह साल से ज्यादा उम्र की होती ही नहीं, उनकी तैयारी करो। यह आदमी धार्मिक है! यह आदमी कह रहा है, जमीन पर कामनाएं छोड़ो और स्वर्ग में कल्पवृक्ष लगे हैं उनके नीचे बैठो और कामनाएं करो और पूरी हो जाएं।
बड़े मजे की बात है, कामनाएं इसलिए छोड़ो कि कल्पवृक्ष मिल जाए। तो यह कामना छोड़ने वाले की वृत्ति है? नहीं, यह तो मुझे लगता है कि भोगी से भी ज्यादा भोगी मालूम पड़ता है। भोगी तो बेचारा क्षणभंगुर से राजी है। बड़ा त्यागी है। यह आदमी कह रहा है कि हम क्षणभंगुर को छोड़ते हैं, क्योंकि हम शाश्वत को चाहते हैं। हम रमणी को छोड़ते हैं क्योंकि हम तो मोक्षरमणी को

चाहते हैं। हम जमीन की स्त्रियों को छोड़ेंगे, क्योंकि वह बूढ़ी हो जाती हैं। हम तो स्वर्ग की अप्सराएं चाहते हैं जो कभी वृद्ध नहीं होती। हम सुख छोड़ते हैं क्योंकि यह आते हैं और चले जाते हैं। हम ऐसे सुख चाहते हैं, जो आएं और कभी न जाएं।
यह आदमी आध्यात्मिक है या सुखवादी है? यह हैडोनिस्ट है, पारएक्सलेंस। इसका मुकाबला ही नहीं है, सुखवाद का। इस सुखवादी ने स्वर्ग बनाए हैं। यह धार्मिक नहीं है। यह प्रलोभन दे रहा है। यह कह रहा है, यहां की स्त्रियां छोड़ो तो और अच्छी स्त्रियां इंतजार कर रही हैं। यहां का धन छोड़ो, तो अपार धन, अनंत धन इंतजार कर रहा है। यहां का शरीर छोड़ो, तो फिर और सुंदर देह मिल जाएगी। देवों की देह।
नहीं, यह धार्मिक चिंतन नहीं है। यह वासना शीर्षासन करती हुई खड़ी हो गई। इसलिए जो आदमी समझना चाहता हो, वह थोड़ा ठीक से देख ले कि इस तरह के सारे के सारे चिंतन के पीछे हमारी अतृप्त कामना ही मांग कर रही है। सप्रेस डिजायर, दमित की हुई कामना ही मांग कर रही है। यह ठीक नहीं है। इससे कोई अध्यात्म पैदा नहीं होगा। आध्यात्मिक कला तो आध्यात्मिक चित्त से पैदा होती है। और आध्यात्मिक चित्त परमात्मा का अनुभव न हो तो नहीं होता। इसलिए मैं मानता हूं कि अभी वास्तविक कला का पृथ्वी पर जन्म सबसे कम हुआ है। विज्ञान थोड़ा वास्तविक हुआ है, धर्म और भी कम वास्तविक हुआ है, कला तो बहुत ही मुश्किल है वास्तविक होनी। अभी वे महाकवि पैदा नहीं हुए हैं। कभी-कभी झलक मिलती है किसी उपनिषद में, कभी झलक मिलती है किसी गीता में, कभी झलक मिलती है बाइबिल के किसी वचन में, कभी झलक मिलती है कबीर की किसी पंक्ति में, लेकिन झलक ही मिलती है। अभी वे महाकाव्य पैदा नहीं हुए। अभी वे महान मूर्तियां पैदा नहीं हुईं। कभी झलक अजंता में दिखती है, कभी एलोरा में, लेकिन वह झलक है, अभी पृथ्वी उनसे भर नहीं गई।
अभी कला के नाम पर जो चल रहा है, वह सब रोग है। बीमारी है। दो तरह के रोग हैं, एक जो वासना को उभार रहे हैं, एक जो वासना को दबाने की कोशिश में लगे हैं। लेकिन दोनों की दृष्टि वासना पर है।
यह कला अगर ठीक से समझें, तो जीवन का चरम उत्कर्ष है। फिर जरूरी नहीं
है कि आप मूर्ति ही बनाएं। फिर जरूरी नहीं है कि आप चित्र ही रंगें, फिर जरूरी नहीं है कि आप बांसुरी ही बजाएं। कुछ भी जरूरी नहीं है। फिर आपका पूरा जीवन ही सृजनात्मक होगा। आप चलेंगे तो भी उसमें काव्य होगा।
जब बुद्ध चलते हैं पृथ्वी पर, तो उनके कदमों की आहट में भी काव्य होता है; और जब जीसस सूली पर लटके हुए लोगों की तरफ देखते हैं, तो उनकी आंख में भी कविता होती है। जरूरी नहीं है कि जीसस चित्र बनाएं। बनाना चाहें तो बना सकते हैं। झेन फकीरों ने जापान में बहुत चित्र बनाए हैं। कोई मुकाबला नहीं उनके चित्रों का। लेकिन वे ध्यान के बाद बनाए हैं। चीन में ताओइस्ट फकीरों ने बड़ी मूर्तियां बनाई हैं, लेकिन वह ध्यान के बाद बनाई हैं।
उन मूर्तियों में, झेन फकीरों के चित्रों में, सूफी दरवेशों के नृत्य में, कबीर, दादू के गीत में, नानक, रैदास की पंक्तियों में, कृष्ण की बांसुरी में, उपनिषद की पंक्तियों में, कभी-कभी झलक आई है। लेकिन पृथ्वी अभी कला से वंचित है। मौन भी काव्य हो सकता है।
सच तो यह है कि परम अर्थों में जब कविता पूरी होती है और कला पूरी होती है, तो मौन हो ही जाएगी। लेकिन हम जिसको कला समझते रहे हैं, उसे मैं कला नहीं कह रहा हूं। हम जिसे कला समझते रहे हैं, वह ठीक वैसी ही है जैसे हम मनुष्य की वासनाओं को सहयोग देने वाला कहें या मनुष्य की वासनाओं को दबाने वाला कहें। लेकिन कला का केंद्र वासना रही है। अभी तक कला का केंद्र आत्मा नहीं हो पाई।
कला का केंद्र आत्मा तभी हो सकती है जब कलाकार देने को उत्सुक न हो, कुछ बनाने को उत्सुक न हो, कलाकार से कुछ बनना शुरू हो जाए, कलाकार से कुछ देना शुरू हो जाए। कलाकार के पास इतना हो कि बांटने के सिवाय उसके पास कोई रास्ता न रहे। लेकिन पीछे होना चाहिए न। हम वही दे सकते हैं जगत को जो हमारे पास है। जो हमारे पास नहीं है, वह हम जगत को कैसे दे सकते हैं?

इसलिए एक बड़ी अनूठी घटना घटती है। किसी कवि की कविताएं पढ़ें, तो ऐसा लगता है कि पता नहीं यह आदमी परमात्मा के मंदिर में प्रविष्ट हो गया होगा। और अगर वह कवि कहीं आपको होटल में बैठा मिल जाए, तो बड़ी मुश्किल होती है। मुश्किल यह होती है कि ये कविताएं इसी आदमी की थीं! चित्रकार का चित्र देख कर ऐसा लगता है कि पता नहीं किस मोक्ष की खबर लाया है। लेकिन अगर वह चित्रकार खुद मिल जाए, तो बड़ी मुश्किल होती है कि इस चित्रकार ने वह चित्र बनाया था! इस चित्रकार में तो कुछ भी नहीं दिखाई पड़ता जिससे उस चित्र का जन्म हो जाए। तब यह चित्र क्या है?
यह क्रिएशन नहीं है, सिर्फ कंस्ट्रक्शन है। और इस फर्क को समझ लेना ठीक है। सृजन और निर्माण में बड़ा फर्क है। निर्माण के लिए किसी का कलाकार होना जरूरी नहीं है, निर्माण के लिए सिर्फ शिल्पी, टेक्नीशियन होना जरूरी है। एक आदमी रंग फैलाना जानता है, रेखाएं बनाना जानता है। स्कूल हैं, कॉलेज हैं, जहां रंग फैलाना और रेखाएं बनाना सिखाया जाता है। एक आदमी ने रेखाएं बनानी सीख ली हैं, रंग फैलाना सीख लिया है। यह आदमी टेक्नीशियन है, आर्टिस्ट नहीं है। यह आदमी चाहे तो कुछ भी बना सकता है। अगर इससे सुंदर स्त्री बनवानी हो तो सुंदर बना देगा, कुरूप स्त्री बनवानी हो तो कुरूप बना देगा। वासना भरी मूर्ति बनवानी हो तो वासना भरी मूर्ति बना देगा। और अगर वासना के विपरीत मूर्ति बनानी है, तो वह बना देगा। यह कुशल है, कलाकार नहीं। इस आदमी के पास टेक्नीक है। इसलिए कोई चीज निर्मित कर सकता है। लेकिन क्रिएटिविटी कंस्ट्रक्शन नहीं है। सृजन बड़ी और बात... हो सकता
है कि सृजक के पास कोई, कोई टेक्नीक ही न हो।
मैं सोच भी नहीं पाता कि कृष्ण ने किसी स्कूल में जाकर बांसुरी बजाना सीखा होगा। मैं सोच भी नहीं पाता कि मीरा किसी स्कूल में नाच सीखने गई होगी। मैं सोच भी नहीं पाता, और मुश्किल दिखता है कि चैतन्य ने कहीं भी शिक्षा ली होगी भजन की, और अपनी मृदंग पीटने की। चैतन्य की सारी शिक्षा तो तर्क की थी। चैतन्य ने पढ़ा तो था तर्कशास्त्र। चैतन्य थे तो एक पंडित। चैतन्य थे तो एक अदभुत विचारक। लेकिन एक दिन विचार थक गया, और एक दिन तर्क उस जगह आ गया, जहां तर्क की आगे गति नहीं है। और चैतन्य ने तर्क और विचार को फेंक दिया और मृदंग लेकर सड़कों पर नाचने लगे।
टेक्नीशियन, शिल्पी और कलाकार के फर्क को ठीक से ले लेना जरूरी है। शिल्पी वह बनाता है, जो विचार से बनाना चाहता है। सर्जक वह देता है जो उसके हृदय में भर गया है। शिल्पी मस्तिष्क से जीता है, कलाकार हृदय और आत्मा से जीता है। इसलिए तकलीफ हो रही है। अच्छा कवि हो सकता है कोई, लेकिन अच्छा काव्य उससे पैदा होगा यह जरूरी नहीं। और एक आदमी अच्छा कवि न हो, लेकिन अच्छा काव्य उससे पैदा हो सकता है।
अब उपनिषद के ऋषि कोई बड़े कवि रहे होंगे, ऐसा नहीं मालूम पड़ता। उन्होंने कोई छंद और कोई तुक का हिसाब रखा होगा, ऐसा मालूम नहीं पड़ता। इतने छोटे दिमाग नहीं हो सकते जो छंद और तुक का हिसाब रखते हों। जिसने सब हिसाब छोड़ कर और गैर-हिसाब में जो कूद गए हों, वे इस तरह के छोटे हिसाब नहीं रख सकते। लेकिन उनसे जो पैदा हुआ है, वह अमृत-काव्य है। उस, उस काव्य में बात ही कुछ और है। वह सिर्फ कविता नहीं है, वह सिर्फ शब्दों का जमावट नहीं है। वह सिर्फ मात्राओं का हिसाब नहीं है; वह हृदय का बहाव है। कुछ भीतर से बहा है और फैल गया है। उस बहाव में ही काव्य है।
रेल की गाड़ियां चलती हैं पटरियों पर, ठीक लोहे की पटरियों पर दौड़ती हैं। नदियां रेल की पटरियों जैसी नहीं दौड़ती हैं। बेढंगे हैं उनके रास्ते, अनजान, अपरिचित हैं उनके मार्ग। कुछ पता नहीं, बना-बनाया रेडीमेड कोई रास्ता ही नहीं है गंगा का। लेकिन गंगा के दौड़ने में जिंदगी है; रेल में जिंदगी नहीं हो सकती। टेक्नीशियन रेल की पटरियों पर दौड़ता है, सीखे- सिखाए मार्गों का उपयोग करता है। कलाकार अनजान, अपरिचित, अननोन में प्रवेश करता है। उसे कुछ पता नहीं है कि क्या होगा।
जिस समय कोई टेक्नीशियन किसी चित्र को बनाता है तो वह जानता है कि क्या बना रहा है, वह जानता है क्या बनाने वाला है। उसकी एक प्लानिंग है। उसकी एक योजना है। लेकिन जब एक सर्जक एक चित्र को बनाता है, तो वह उतना ही

चौंकता है बन जाने के बाद जितना देखने वाले चौंकते हैं। उसको खुद भी पता नहीं है कि क्या बन जाएगा। वह सिर्फ परमात्मा के हाथों में अपने को छोड़ देता है। इसलिए बड़े सर्जक कभी नहीं कहते कि हमने कुछ बनाया है; वे कहते हैं, हमारे द्वारा कुछ बनाया गया है। वे सिर्फ मीडियम, माध्यम रह जाते हैं।
इसलिए अंतिम बात आपसे कहूं कि जो व्यक्ति परमात्मा के लिए माध्यम बन जाता है, जैसे कबीर ने कहा है कि मैं तो सिर्फ बांस की एक पोंगरी हूं, मैं कुछ और नहीं हूं। मेरे स्वर नहीं हैं, मैं तो सिर्फ बांस की एक पोंगरी हूं, स्वर तो परमात्मा के हैं। हां, यह हो सकता है कि मेरी पोंगरी ठीक काम न करे और स्वर बेसुरे सुनाई पड़ें, वह गलती मेरी होगी। लेकिन स्वर अगर सुंदर हों, और स्वर अगर प्राणों को नचा दें, तो धन्यवाद परमात्मा को देना। कबीर कहते हैंः मैं बांस की पोंगरी हूं।
कला उस दिन पैदा होती है जिस दिन व्यक्ति बांस की पोंगरी हो जाता है। जिस दिन वह कहता है मैं नहीं हूं, तू ही है। और जिस दिन उसकी अंगुलियां उसके अहंकार का काम नहीं करतीं, बल्कि परमात्मा का काम करने लगती हैं। रामकृष्ण परमहंस का एक चित्रकार ने फोटो उतारी, और रामकृष्ण के पास
वह एक चित्र को बना कर लाया। रामकृष्ण का ही चित्र। और जब वह चित्र आया तो कोई दस-पच्चीस लोग मौजूद थे रामकृष्ण के पास। रामकृष्ण ने वह चित्र देखा, वे उठ कर नाचने लगे और उस चित्र के पैर पड़ने लगे। वह रामकृष्ण का ही चित्र था। पास बैठे भक्तों ने कहाः आप यह क्या कर रहे हैं?
भक्त अपने गुरुओं की बड़ी रक्षा करते रहते हैं, क्योंकि भक्तों को सदा
डर रहता है कि गुरु कुछ गड़बड़ न कर दे।
भक्तों ने कहाः आप यह क्या कर रहे हैं? अपने ही चित्र के, और पैर पड़ते हैं? रामकृष्ण ने कहाः भली याद दिलाई, मैं तो भूल ही गया कि मेरा चित्र है। मुझे तो सिर्फ इतना ही लगा कि कैसा समाधिस्थ, समाधि का चित्र है, इक्सटेसी का--तो मैं नाचने लगा। और मैंने पैर पड़ लिए, तुमने अच्छी याद दिलाई, नहीं तो लोग मुझ पर बहुत हंसते।
अब इस आदमी को अपना चित्र भी पहचानने नहीं आया, बात क्या है?
असल में अपनी पहचान ही मिट गई है, नहीं तो पहचान में कैसे न आता। यह आदमी अब सिर्फ बांस की पोंगरी रह गया है। अब यह अपने चित्र में भी परमात्मा को ही देख पाया और पैर पड़ पाया। यह अपने चित्र में भी अपने को न देख सका, समाधि दिखाई पड़ी। रामकृष्ण ने कहा कि इस चित्र के हजारों साल तक लोग पैर पड़ेंगे, क्योंकि यह समाधि का चित्र है। एक सज्जन ने कहा कि आप ऐसी बात न कहें, लोग क्या कहेंगे कि अपने ही मुंह से कैसा अहंकारी आदमी रहा होगा कि कहता है कि मेरे चित्र के लोग हजारों साल तक पैर पड़ेंगे। रामकृष्ण ने कहाः तुमने पता नहीं कैसे सुन लिया? मेरे तो मैंने कहा ही नहीं। मैंने कहाः इस चित्र के। मुझसे क्या लेना-देना है, यह समाधि का चित्र है।
कला जन्मती है उस दिन, जिस दिन कलाकार मर जाता है। जब तक कलाकार है, तब
तक कला का जन्म नहीं होता। जब तक अहंकार है तब तक कला का जन्म नहीं होता। जब तक मैं हूं, तब तक सिर्फ कंस्ट्रक्शन है, क्रिएशन नहीं है। परमात्मा इतने बड़े जगत को बना पाया, क्योंकि परमात्मा बिल्कुल नहीं है। हम एक छोटा सा चित्र बना लेंगे और बुरी तरह हो जाएंगे। हम एक छोटी सी मूर्ति खोद लेंगे और बुरी तरह हो जाएंगे।
एक बहुत बड़ा मूर्तिकार हुआ। उसने एक पत्थर को खोद कर मूर्ति बनाई। राह से जो लोग भी निकलते हैं, वे धन्यवाद देते हैं कि अदभुत हो तुम, इतनी सुंदर मूर्ति बनाई। वह चित्रकार कहता है कि तुम, सभी नासमझ ही इस रास्ते से गुजरते हैं क्या? मैंने मूर्ति बनाई नहीं। मैं यहां से गुजरता था, इस पत्थर में छिपी मूर्ति ने मुझे पुकारा। मैंने तो सिर्फ बेकार पत्थरों को अलग किया है। मूर्ति तो छिपी थी, वह प्रकट हो गई। मैंने सिर्फ बेकार पत्थरों को अलग कर दिया छेनी से, मूर्ति तो पत्थर में छिपी थी। मैं यहां से गुजरता था, मूर्ति ने मुझे पुकारा कि कहां जा रहे हो, थोड़े से गलत पत्थर अलग कर दो। और अब मैं कह सकता हूं कि जो मूर्ति के भीतर से मुझे बुलाया, उसी ने मेरे भीतर से सुना। अन्यथा मैं सुन कैसे सकता था? अगर पत्थर के भीतर

बोलने वाला और हो, और मेरे भीतर सुनने वाला और हो, तो कम्युनिकेशन कैसे होगा, संवाद कैसे होगा? मैं सुन सका, क्योंकि जो मूर्ति के भीतर छिपा है, वही मेरे भीतर छुपा है। उसने मुझे खबर दी, मैंने गैर-जरूरी पत्थर भर अलग कर दिए हैं।
मूर्तिकार मर जाए, तो मूर्ति पैदा होती है। चित्रकार मर जाए, तो चित्र जन्मता है। कवि मर जाए, तो कविता पैदा होती है। कलाकार नहीं हो जाए, तो कला का जन्म होता है। नहीं हो जाने की कला का नाम ध्यान है। इसलिए आखिरी दो-चार बातें ध्यान के संबंध में आपसे कहूं।
ध्यान का मतलब नहीं है कि आप कुछ करते हैं। लोग कहते हैं, मैं ध्यान करता हूं। जब तक मैं है, तब तक तो ध्यान नहीं हो सकता। लोग कहते हैं, मैं ध्यान करता हूं। जब तक करना है, तब तक भी ध्यान नहीं हो सकता। कभी आपने सोचा, जब आप कहते हैं, मैं प्रेम करता हूं, तो आप बड़ी गलत भाषा बोलते हैं। प्रेम भी किया जा सकता है? कभी दुनिया में किसी ने प्रेम किया है, सिर्फ अभिनेताओं को छोड़ कर। और अगर आप भी करते हैं तो अभिनय ही करते होंगे, इससे बहुत फर्क नहीं पड़ता कि मंच आपकी कितनी बड़ी है और अभिनेता कितने स्थाई हैं--इससे कोई बहुत फर्क नहीं पड़ता।
प्रेम किया नहीं जा सकता, प्रेम कोई कृत्य नहीं है, एक्ट नहीं है। कैसे करिएगा प्रेम? इसलिए अगर मैं आपसे कहूं कि चलिए शुरू करिए प्रेम, आप कैसे करिएगा? आप अचानक पाएंगे कि नहीं होता। आप कहेंगे कैसे कर सकता हूं? प्रेम कोई कृत्य नहीं है, एक्शन नहीं है। प्रेम एक स्टेट ऑफ माइंड है।
एक चित्त की दशा है। किया नहीं जाता, होता है। इसलिए जो लोग प्रेम में गहरे उतरेंगे, वे कहेंगे प्रेम हो गया। वे नहीं कहेंगे कि प्रेम किया। और दूसरे मजे की बात है कि जब प्रेम होता है, तब आप नहीं होते। और जब तक आप होते हैं, तब तक प्रेम नहीं होता।
जब आप अपने प्रेमी के पास होते हैं, तब आप होते हैं? नहीं प्रेमी हो सकता है, आप नहीं होते। आप बिल्कुल मिट गए होते हैं, आप होते ही नहीं है, एक शून्य रह गया होता है। इसलिए दो प्रेमी जब मिलते हैं, तो कितना विचार करके आते हैं कि यह बात करेंगे, यह बात करेंगे, यह बात करेंगे। लेकिन जब मिलते हैं, तो चुप हो जाते हैं। सब बातें खो जाती हैं। ऐसे ही जैसे जब तक घड़ा खाली होता है, तो आवाज करता है और जब भर जाता है, तो चुप हो जाता है। दो प्रेमी मिल कर आज तक इतना भी नहीं कह पाए कि मैं तुम्हें प्रेम करता हूं। आप कहेंगे, नहीं, बहुत प्रेमी कहते हैं कि मैं तुम्हें प्रेम करता हूं। ध्यान रखना: जब कोई कहे, मैं तुम्हें प्रेम करता हूं। तो समझना कि प्रेम का क्षण जा चुका है, यह सिर्फ स्मृति है। जब प्रेम होता है तो इतने कहने का भी मन नहीं होता कि करता हूं, कि मैं हूं। जब प्रेम होता है, तो प्रेम ही इतना होता है कि वहां मैं और तू को जगह नहीं रह जाती।
रूमी ने एक गीत लिखा है कि एक प्रेमी अपनी प्रेयसी के द्वार को खटखटाता है। पीछे से आवाज आती है, कौन है तू? तो वह प्रेमी कहता है, मैं हूं। तूने आवाज नहीं पहचानी? तो वह प्रेयसी कहती है कि जब तक तू है और तेरी आवाज और तेरी पहचान, तब तक प्रेम के द्वार कैसे खुल सकते हैं? वह प्रेमी वापस लौट जाता है। वर्षों के बाद वापस आता है, फिर द्वार ठोकता है। वह प्रेयसी पूछती है, कौन है तू? तो वह प्रेमी कहता है अब तो मैं नहीं हूं, अब तो तू ही है। और रूमी कहते हैं कि द्वार खुल जाता है।
मैं नहीं कहूंगा। मैं मानता हूं रूमी ने जरा जल्दी द्वार खुलवा दिए। मैं तो कहूंगा कि वह प्रेयसी फिर कहती है कि जब तक तेरे लिए तू है, तब तक मैं भी छुपा होगा, कहीं न कहीं गहरे में बैठा होगा। क्योंकि अगर मैं भीतर मर जाए, तो बाहर तू भी मिट जाता है। मैं और तू एक ही सिक्के के दो पहलू हैं। जहां तक मैं है, वहां तक तू है।
इसलिए जो भक्त भगवान से कहता है कि तू ही है, मैं नहीं हूं। वह घोषणा
कर रहा है कि मैं पूरी तरह हूं। उसके घोषणा न करने में, उसके इनकार में भी उसका मैं मौजूद है। इनकार करने को भी कम से कम मैं तो चाहिए ही। नहीं, भक्त इतना भी नहीं कहता कि तू ही है, मैं नहीं हूं, भक्त कुछ कहता ही नहीं, बस रह

जाता है। वह तू भी नहीं कहता, मैं भी नहीं कहता। वह चुप हो जाता है। इस चुप्पी का नाम ध्यान है।
यह चुप्पी अगर प्रेम से उपलब्ध हो जाए, तो उस मार्ग का नाम भक्ति है।
यह चुप्पी अगर ज्ञान से उपलब्ध हो जाए, तो उस मार्ग का नाम ज्ञान है। यह चुप्पी अगर कर्म के मार्ग से उपलब्ध हो जाए, तो उस मार्ग का नाम कर्म है। और इस चुप्पी का नाम ध्यान है। चुप हो जाए मेरा मैं, वह जो भीतर निरंतर बोल रहा है--मैं। वह श्वास-श्वास में बोल रहा है--मैं। आंख की पलक हिलती है तो-- मैं, पैर उठता है तो--मैं, श्वास लेता हूं तो--मैं। सब तरफ वह जो मेरा मैं है, वह चुप होता जाए, वह शांत होता जाए। और एक घड़ी आ जाए कि मैं अपने भीतर खोज कर कह सकूं कि मैं कहां गया? मैं कहां है? तो ध्यान उपलब्ध होता है। लेकिन हम बड़े अदभुत लोग हैं। सांसारिक आदमी का मैं तो होता ही है, जिसको हम धार्मिक कहते हैं, उसका और प्रगाढ़ता से होता है। एक गृहस्थ का तो मैं होता ही है, होना ही चाहिए। लेकिन जिसको हम संन्यस्त कहते हैं, उसके मैं का कोई मुकाबला ही नहीं। संन्यासी का मैं और सघन हो जाता है। भक्त को देखा है सड़क पर, उसकी अकड़ ही और है। क्योंकि वह टीका लगाए हुए है। जिसके माथे पर टीका नहीं है, उसको वह नरक भेजने की नजर से देख रहा है। जो मंदिर नहीं गया है, उसको सोच रहा है कि नरक में सड़वा देगा, आश्चर्य है!
ध्यान का अर्थ सिर्फ एक ही है कि मैं न रह जाए। लेकिन वह मैं बड़ा प्रगाढ़ होता चला जाता है। मैं की तरकीबें अनंत हैं। उसके रास्ते सूक्ष्म हैं। कहीं से भी भागो, मैं पकड़ लेता है। मैं से भी भागो तो पकड़ लेता है। और निर-अहंकारी खड़े होकर बाजार में कहने लगता है कि मुझसे बड़ा निर-अहंकारी कोई भी नहीं है। हद हो गई!
यह अहंकार की घोषणा है कि मुझसे बड़ा निर-अहंकारी और कोई भी नहीं। अहंकार के रास्ते सूक्ष्म हैं। वह धन होता है, तो कहता है इतना है धन मेरे पास। वह धन को त्याग देता है, तो वह कहता है इतने धन को मैंने लात मार दी। लेकिन वह मैं पीछे खड़ा रह जाता है। वह संसार में भी अपने को भर लेता है। वह परमात्मा में भी अपने को भर लेता है। वह कहता है मेरा परमात्मा सही है, तुम्हारा गलत है।
मेरा भी परमात्मा हो सकता है, वह भी मेरा पजेशन हो जाता है। अगर मेरे मंदिर में आग लगा दी तो मैं आपकी मस्जिद में आग लगा दूंगा, क्योंकि वह तुम्हारे परमात्मा का मंदिर है। मस्जिद वाला मंदिरों को तोड़ता जाएगा, मंदिर वाले मस्जिदों को तोड़ते जाएंगे। ईसाई हिंदू को गलत समझेगा, हिंदू ईसाई को गलत समझेगा। गीता वाला कुरान को गलत समझेगा, कुरान वाला वेद को गलत समझेगा। यह क्या पागलपन है?
लेकिन जहां मैं है, वहां पागलपन होता ही है। असल में मैं के अतिरिक्त
और कोई मैडनेस नहीं है। मैं ही पागलपन है। मैं जितना बड़ा होता जाता है, हमारे भीतर पागल उतना सघन होता जाता है। मैं जितना विरल होता है, हमारे भीतर पागल उतना विदा होता जाता है। जिस दिन मैं नहीं रह जाता, उस दिन हम पागल नहीं रह जाते। और जो पागल नहीं है, वह धार्मिक है। वह ध्यान को उपलब्ध होता है।
तो अंतिम बात आपसे इतना ही कहूं कि जरा इस मैं के रास्ते पहचानना। खयाल करके इससे लड़ना मत। क्योंकि लड़ेंगे तो वह मैं कहेगा कि देखो मैं लड़ रहा हूं। लड़ना मत सिर्फ रास्ते पहचानना कि मैं कहां-कहां से हाथ बढ़ा कर आपको पकड़ लेता है। बस सुबह से सांझ तक उसके रास्ते पहचानना। और जब वह पकड़े और जब आपके पैर को पकड़ ले, और आप अकड़ कर चलने लगें, और जब आपकी रीढ़ को पकड़ ले, और आप पद्मासन में बैठ जाएं, और जब आपके सिर को पकड़ ले, और टीका लगा ले, और जब मंदिर में आपको पकड़ ले, और चाल बदल जाए, तो जरा उसको पहचानना कि यह मैं पकड़ रहा है।
और जब आप मैं को पहचानने लगेंगे, तो बुद्ध का एक वचन है कि जैसे घर में दीया जला हो तो चोर नहीं आते, और घर का पहरेदार जगा हो तब तो चोर आना बहुत मुश्किल हो जाता है, लेकिन पहरेदार सोया हो और घर का दीया बुझा हो, तब तो घर चोरों का ही हो जाता है।

ऐसे ही जब भीतर हमारा पहरेदार जगा हो, साक्षी जगा हो और देख रहा हो कि कहां-कहां से मैं पकड़ रहा है, तो वह मैं का चोर आना बंद हो जाता है। और जब हमारे भीतर चेतना का दीया जला हो, मौन का दीया जला हो, चुप्पी का दीया जला हो, तो वह फिर चोर हमारे भीतर प्रवेश नहीं कर पाता। और एक ही चोर है, मैं। उसने ही हमसे परमात्मा को छीन लिया है। छोटा-मोटा चोर नहीं है, बहुत बड़ा चोर है। क्योंकि जो परमात्मा को छीन सके, वह कोई साधारण चोर नहीं है। एक ही दीवाल है।
मैं एक बच्चे को देख रहा था एक रास्ते पर। वह एक बांस की छोटी सी पोंगरी बना कर साबुन के बबूले उड़ा रहा था। पोंगरी को डुबा लेता था साबुन के पानी में, फूंक मारता था, बबूला बन जाता और आकाश में उड़ता था। सुबह का सूरज, साबुन का बबूला, सुबह की सूरज की किरणें, उसमें उठता हुआ बबूला और सूरज की किरणें सब तरंगों में टूट जातीं उस बबूले को पार करके, बड़.ा सुंदर हो जाता था। वह बच्चा उसे पकड़ने दौड़ता था, लेकिन वह बबूला ऊपर उठता जाता था।
बड़ी मजे की घटना उस दिन मुझे दिखाई पड़ी। वह साबुन नीचे भी पड़ा था, लेकिन सुंदर न था। वही साबुन की एक बूंद फैल कर सूरज की किरणों में बहुत सुंदर हो गई थी। जिसे हम सौंदर्य कहते हैं, वह सब ऐसा ही सौंदर्य है। सब मिट्टी है, सूरज की किरणों में फैल कर सुंदर हो जाती है। कहीं फूल बन जाता है, कहीं आदमी बन जाता है, कहीं स्त्री बन जाती है, कहीं चांद बन जाता है। सब सूरज की किरणों में फैल कर सुंदर हो जाता है।
सौंदर्य नीचे पड़ी चीजों का ऊपर उठ जाना है। सौंदर्य अंधेरे में पड़ी चीजों का प्रकाश में आ जाना है। सुंदर हो गई थी बहुत, एक बूंद साबुन की। बर्तन में नीचे साबुन की बूंदें पड़ी थीं, सुंदर न थीं। सूरज की किरणों में बहुत सुंदर हो गई थीं। और बड़ा आश्चर्य कि वह बबूला ऊपर उठ रहा था। ऐसा लगता था जैसे बबूला अपनी तरफ से ऊपर उठ रहा है। आपने भी साबुन के बबूले ऊपर उठते देखे होंगे, लेकिन आपको पता न होगा कि बबूला क्यों ऊपर उठता है?
साबुन का बबूला इसलिए सिर्फ ऊपर उठता है कि बच्चे के मुंह से जो हवा निकलती है वह गर्म होती है, बाहर की हवा से। ठंडी हवा नीचे की तरफ गिरती रहती है, गरम हवा ऊपर की तरफ उठने लगती है। गर्म हवा को जगह देने के लिए ठंडी हवा मार्ग छोड़ देती है, तो वह बबूला ऊपर उठने लगता है। हालांकि बबूला भी नीचे गिरना चाहता है। सब चीजें नीचे गिरना चाहती हैं। लेकिन गर्म हवा है, विरल है, आस-पास की जो हवा है, ज्यादा ठंडी, ज्यादा सघन है। आस-पास की हवा ज्यादा ईगोइस्ट है, ज्यादा अहंकार से भरी है। बबूले के पास अहंकार जरा विरल है। तो वह ऊपर उठने लगता है। उसके पास मैं का भाव थोड़ा कम है। हवा थोड़ी सघन कम है, इसलिए ऊपर उठने लगता है।
लेकिन एक और मजे की बात है कि वह थोड़ी देर ही ऊपर उठता है, लेकिन जैसे- जैसे ऊपर उठता है, बड़ा होता जाता है। जो भी चीज ऊपर उठती है, बड़ी होती चली जाती है। वह बबूला भी बड़ा होता चला जाता है, क्योंकि उस पर दबाव हवा का कम होता जाता है और साबुन फैलती चली जाती है। फिर एक क्षण आता है कि साबुन का बबूला टूट जाता है और हम कहते हैं बबूला मर गया। वह बच्चा दूसरा बबूला बनाने में लग जाता है।
लेकिन क्या बबूला मर गया? क्या मर गया? उस साबुन की पतली सी फिल्म के भीतर जो हवा थी, वह मर गई। वह अब भी है। वह साबुन की पतली सी फिल्म जो उस हवा के चारों तरफ फैल गई थी, वह मर गई? वह अब भी है। मर कुछ भी नहीं गया। सिर्फ बबूला इतना बड़ा हो गया कि अब साबुन की फिल्म उसे न सम्हाल सकी। साबुन की फिल्म टूट गई और बबूला विराट सागर से मिल गया।
ऐसे ही ध्यान में रोज विरलता आती जाती है। फिर एक दिन जिसे हम "मैं" कहते हैं, वह साबुन के बबूले की फिल्म की तरह टूट जाता है। हम मर नहीं जाते, लेकिन जिसे हम "हम" कहते थे, वह मर जाता है। वह भी क्या मर जाता है, सिर्फ हमारा भ्रम मर जाता है। और वह जो हमारे भीतर विराट हमारे बबूले के भीतर बंद था, विराट के साथ एक हो जाता है। उस दिन नृत्य है। उस दिन संगीत है। उस दिन कला है। उस दिन सृजन है। उस दिन व्यक्ति के जीवन से दुख का अंत हो गया और आनंद की वीणा बजने लगती है।

उस आनंद की वीणा से उठे स्वरों का नाम कला है। उस आनंद के स्वरों से जन्मे हुए चित्रों का नाम कला है। उस आनंद के स्वरों से बजे हुए घुंघरूओं का नाम कला है। उस आनंद से जो भी हो, चाहे मौन, चाहे नृत्य, चाहे संगीत, चाहे गीत, चाहे काव्य, चाहे साहित्य, और चाहे कुछ भी न हो, कोई चुप ही रह जाए, तो उसका मौन भी कला है।
यह तीन बातें मैंने कही। विज्ञान प्रथम चरण है। वह तर्क का पहला कदम है। तर्क जब हार जाता है तो धर्म दूसरा चरण है, वह अनुभूति है। और जब अनुभूति सघन हो जाती तो वर्षा शुरू हो जाती है, वह कला है। और इस कला की उपलब्धि सिर्फ उन्हें ही होती है जो ध्यान को उपलब्ध होते हैं। ध्यान की बाई-प्रॉडक्ट है। जो ध्यान के पहले कलाकार है, वह किसी न किसी अर्थों में वासना केंद्रित होता है। जो ध्यान के बाद कलाकार है, उसका जीवन, उसका कृत्य, उसका सृजन, सभी परमात्मा को समर्पित और परमात्मामय हो जाता है। इसलिए कला को मत खोजना, खोजना ध्यान को। और कला को छाया की तरह पीछे से आने देना। कला को मत खोजना, खोजना मौन को; कला को पीछे आने देना। कला सदा शैडो की तरह आती है, पीछे से आती है। जो कला को सीधा खोजता है, वह शैडोलैंड में खो जाता है। वह सिर्फ छायालोक में खो जाता है। इसलिए जिसको हम कलाकार कहते हैं--चित्रकार, मूर्तिकार, कवि--वे सब छायालोक में खोए रहते हैं। सत्य की दुनिया से उनका कोई संबंध नहीं हो पाता। वे सिर्फ सपनों में ही खोए रहते हैं। और अपने सपनों को ही सजाते और संवारते रहते हैं। कला का सपनों से कोई संबंध नहीं। जितना संबंध विज्ञान का सत्य से है, जितना संबंध धर्म का सत्य से है, उतना ही संबंध कला का भी सत्य से है।
ये थोड़ी सी बातें मैंने कहीं। जरूरी नहीं कि मेरी सब बातें ठीक हों।
यह भी जरूरी नहीं कि कोई एकाध बात भी ठीक हो। यह भी जरूरी नहीं कि आप मेरी बातें मानें। इतना ही काफी है कि जो मैंने कहा उसे आप थोड़ा सा सोचना, हो सके तो थोड़ा सा अनुभव करना। हो सके तो अनुभूति को थोड़ा सा फैलने देना और बंटने देना।

मेरी बातों को इतनी शांति और प्रेम से सुना, उससे बहुत अनुगृहीत हूं।
और अंत में सबके भीतर बैठे परमात्मा को प्रणाम करता हूं। मेरे प्रणाम स्वीकार करें।

विज्ञान, धर्म और कला
दूसरा प्रवचन

धर्म है बिल्कुल वैयक्तिक

एक छोटी सी घटना से मैं अपनी आज की बात शुरू करना चाहूंंगा।
एक छोटे से गांव में, एक अंधेरी रात में, एक झोपड़े के भीतर से बहुत जोर
से आवाज आने लगीः आग लगी है, मैं जल रही हूं, मुझे कोई बचाओ। आवाज इतनी तीव्र, इतनी करुण और दुख भरी थी कि सोए हुए पड़ोसी जाग गए और हाथों में बाल्टियां लेकर पानी भर कर उस झोपड़े की तरफ भागे। अंधेरी रात थी, लेकिन झोपड़ी के पास जाकर उन्होंने देखा, आग लगने का कोई भी चिह्न नहीं है। छोटी सी झोपड़ी है। भीतर से जोर से आवाजें आती हैंः आग लग गई है। लेकिन कोई आग लगने का चिह्न नहीं है। उन्होंने दरवाजे धकाए, वे दरवाजे भी खुले हुए थे। वह बहुत गरीब स्त्री की झोपड़ी थी। उस पर ताले और द्वार लगाने की भी कोई बात नहीं थी। भीतर एक औरत जोर से रो रही थी और छाती पीट रही थी। वे सारे लोग परेशान हुए। उन्होंने कहाः आग कहां है? हम जरूर उसे बुझाएं? लेकिन वह स्त्री जो रोती थी, हंसने लगी और उसने कहाः आग बाहर होती तो तुम जरूर बुझा देते, यह आग मेरे भीतर लगी है। और उसे मेरे सिवाय कोई दूसरा नहीं बुझा सकेगा। इसलिए तुम वापस लौट जाओ। और अच्छा हो तुम भी अपने घर जाकर देखो कि वहां भी तो भीतर आग नहीं लगी है? बजाय इसके कि तुम किसी और की आग बुझाने जाओ, तुम भी देखो, शायद तुम्हारे भीतर भी आग लगी हो और उसे बुझाने की जरूरत हो।
शायद ही वे पड़ोसी समझ पाए हों कि क्या उसने कहा। वह राबिया नाम की एक फकीर औरत थी।
करीब-करीब मनुष्य के भीतर सदा से एक आग लगी हुई है। उसे बुझाने के सब भांति के उपाय चलते हैं। अब तक जाति के नाम ही तो मनुष्य की उस आग को बुझाने में कोई सफलता नहीं मिली। कुछ थोड़े से लोगों ने बुझा ली होगी, लेकिन पूरी मनुष्यता अब भी भीतर आग से परेशान और पीड़ित है।
जैसे उस रात उस बूढ़ी औरत की आग को बुझाने के लिए लोग बाल्टियां लेकर दौड़े, करीब-करीब उस आग को बुझाने कि लिए अब तक जो प्रयास हुआ है, वह भी ऐसा ही है। आग भीतर है, बुझाने की कोशिश बाहर है।
इस बुझाने की, बाहर की बुझाने की कोशिश से विज्ञान का जन्म होताहै। आग भीतर है, मनुष्य की पीड़ा भीतर है। उसका दुख, उसकी चिंता और संताप भीतर है और बाहर से उसे बुझाने के जो उपाय चल रहे हैं, उनसे विज्ञान निर्मित और विकसित हुआ और खड़ा हुआ। विज्ञान तो खड़ा हो गया।
इधर सैकड़ों वर्षों के मनुष्य के श्रम ने विज्ञान की बड़ी उन्नति के शिखर स्पष्ट कर लिए, जीत लिए। लेकिन आग जहां थी, वहीं है। शायद आज उसकी पीड़ा और भी गहरी हो गई है।
इसलिए पीड़ा और गहरी हो गई है कि हमारी जो आशा और आकांक्षा थी कि शायद बाहर के जगत में हमारी खोज, हमारा ज्ञान, हमारी समृद्धि उस आग को बुझा देगी। अब वह भी निष्फल हो गई है, वह आशा भी टूट गई।
सब भांति बाहर एक तीव्रतम संभावी विकास हुआ है। लेकिन मनुष्य भीतर और
भी दरिद्र दिखाई पड़ने लगा है। क्योंकि बाहर इतना विकास हुआ है और भीतर मनुष्य वही का वही है। और इस दरिद्रता के बड़े घातक परिणाम आने शुरू हुए हैं। पिछले थोड़े से ही वर्षों में दो महायुद्ध हुए। और दो महायुद्धों में कोई दस करोड़ लोगों की हमने हत्या की।
दस करोड़ छोटी संख्या नहीं है। एक व्यक्ति जब मर जाता है तो, तो हम जानते हैं क्या गुजरती है। दस करोड़ लोगों की हत्या! और फिर तो उसके बाद जो तैयारी चली है उसमें शायद हम पूरी मनुष्य-जाति को भी समाप्त कर लें, यह भी हो सकता है।
मरने के कुछ ही दिन पहले आइंस्टीन को किसी ने पूछा था कि तीसरे महायुद्ध में किन अस्त्र-शस्त्रों का प्रयोग होगा? आइंस्टीन ने कहा कि तीसरे के बाबत तो मैं कुछ भी नहीं कह सकता, लेकिन चौथे के बाबत निश्चित ही।

उसने पूछा--वह हैरान हुआ। उसने कहा कि तीसरे के बाबत कहने में असमर्थ हैं तो चौथे के बाबत कैसे कहेंगे?
आइंस्टीन ने कहाः दो बातें तय हैं। पहली बात तो यह है कि चौथा महायुद्ध जहां तक, होगा ही नहीं। उस आदमी ने पूछा, क्या यह हो जाएगा कि मनुष्य लड़ना छोड़ देगा?
आइंस्टीन ने कहाः नहीं, मनुष्य के बचने की तीसरे युद्ध के बाद कोई संभावना नहीं है। चौथा महायुद्ध इसलिए नहीं होगा कि मनुष्य ही नहीं होगा। और अगर हुआ भी कभी चौथा महायुद्ध कभी, तो तीसरे और चौथे महायुद्ध में हजारों वर्षों का फासला होगा। और जो चौथे महायुद्ध में अस्त्र-शस्त्र प्रयोग होंगे, वे वही होंगे जो पहले महायुद्ध में प्रयोग हुए होंगे--पत्थर के, लकड़ी के औजार। यह डर और यह संभावना खड़ी हो गई है कि शायद पूरी मनुष्य-जाति समाप्त हो जाए।
विज्ञान के इतने उत्कर्ष के बाद मनुष्य के भीतर अगर उसकी आत्मा विकसित न हुई हो, तो शक्ति अविकसित हाथों में खतरनाक हो जाती है। नादिरशाह हिंदुस्तान की तरफ आता था तब रास्ते में एक बहुत बड़े ज्ञानी
से उसका मिलना हुआ। और उस नादिर ने पूछा उस ज्ञानी को कि मैं सुनता हूं कि दिन में नींद लेना बुरा है, बहुत ज्यादा सोना बुरा है; क्या आप मुझे बता सकेंगे कि बहुत ज्यादा सोना बुरा है या कम सोना अच्छा है? उस वृद्ध ने कहाः यह एक-एक आदमी पर अलग-अलग निर्भर होगा। तुम जैसे लोगों का बहुत ज्यादा सोना अच्छा है; क्योंकि तुम जागे रहोगे तो कोई न कोई उपद्रव होगा, कोई न कोई परेशानी होगी। बुरे लोग सोए रहें तो अच्छा है।
ऐसे ही अज्ञानी मनुष्य के हाथ में शक्ति न आए तो अच्छा है। अज्ञान भीतर हो और शक्ति हाथ में आ जाए, तो सिवाय दुर्घटना के और कुछ भी नहीं हो सकता। विज्ञान ने शक्ति दी है, लेकिन मनुष्य के भीतर वह शांति नहीं है उस शक्ति का सम्यक उपयोग कर सके। उसके भीतर तो परेशानी बढ़ती चली गई है। और उसकी परेशानी का यही परिणाम हो सकता है।
और यह आप स्पष्ट रूप से खयाल में ले लें कि जो आदमी परेशान है, भीतर दुखी है, भीतर चिंतित है, कष्ट में है और पीड़ा में है, उस मनुष्य का एक ही सुख होता है, केवल एक ही सुख। और वह यह कि वह दूसरों को भी पीड़ा में डाल दे और कष्ट में डाल दे। जो मनुष्य दुखी है उसका एक ही सुख होता है कि वह दूसरों को ज्यादा से ज्यादा दुख में डाल दे। इसके अतिरिक्त उसकी सुख की और कोई कल्पना नहीं होती।
मनुष्य है भीतर दुख में और आग लगी है उसकी आत्मा में। तो विज्ञान की शक्ति बड़ी खतरनाक है। इसके द्वारा उसे मौका मिल गया है कि वह दूसरों को कितने ही कष्ट में डाल दे। और इधर हम पचास वर्षों से निरंतर इसी की खोज कर रहे हैं कि हम ज्यादा से ज्यादा दुख, ज्यादा से ज्यादा मृत्यु लाने में कैसे सफल हो सकते हैं। यह हैरानी की बात है। जरूर ही मनुष्य का चित्त कुछ रुग्ण होगा, बीमार होगा, विक्षिप्त होगा, अन्यथा मृत्यु को लाने की इतनी आयोजना और इतना चिंतन नहीं हो सकता।
एक छोटी सी, एक बिल्कुल झूठी कहानी कहूंगा। फिर इस संबंध में कुछ और
भी बात मुझे कहनी है वह मैं आपको कहूंं। कहानी मुझे बड़ी प्रीतिकर है, एकदम ही झूठी है, एकदम असत्य है। लेकिन मनुष्य के बाबत शायद उससे सच्ची और कोई बात आज नहीं हो सकती है।
मैंने सुना है, यह स्थिति देख कर परमात्मा परेशान हो गया। बहुत परेशान हो गया कि मनुष्य को क्या हुआ जा रहा है? और मनुष्य कैसे आत्मघाती प्रयास में संलग्न है? इससे उसे चिंता हुई होगी। और उसने तीन बड़े राष्ट्रों को अपने पास बुलाया--इंग्लैंड को, रूस को और अमरीका को। यह कहानी थोड़ी पुरानी होगी, नहीं तो इंग्लैंड को कौन बुलाता। यह कहानी थोड़ी पुरानी है। उस वक्त इंग्लैंड एक ताकत रही होगी। तब उसे बुलाया गया। और उन तीनों प्रतिनिधियों से कहा कि हम बहुत हैरान हैं, तुम्हारी सारी शक्ति मनुष्य की हत्या की ओर नियोजित हो गई है। और डर है इस बात का कि तुम पूरी मनुष्य-जाति को समाप्त कर दो। न केवल यह बल्कि हो सकता है पूरे प्राणी-जगत को समाप्त कर दो। इस भय से भयभीत होकर मैं खुद ही तुम्हें एक मौका देता हूं

और प्रार्थना करता हूं कि तुम एक वरदान मांग लो। तुम्हारी जो कामना है वह पूरी हो जाए, ताकि जीवन बच सके। तुम क्या चाहते हो, आखिर इस दौड़ के पीछे इरादे क्या हैं?
अमरीका के प्रतिनिधि ने कहा कि हे परमात्मा! हमारी बड़ी कोई आकांक्षा नहीं है, बड़ी छोटी आकांक्षा है, पूरी हो जाए तो हम निश्चिंत हो जाएं। यह सब उपद्रव भी बंद हो जाए। ईश्वर ने कहाः कहो, तुम कहो, और मैं पूरा कर दूं। शायद ईश्वर ने कल्पना न की होगी कि वह क्या कहेगा। उस प्रतिनिधि ने कहा कि हे पिता, छोटी सी इच्छा पूरी करनी है, दुनिया हो, लेकिन दुनिया में रूस का कोई निशान न रह जाए। फिर आतंक न हो। फिर सब शांति है। एक ही कठिनाई है जिससे जीवन उलझ गया है और वह यह रूस का होना।
ईश्वर ने बहुत वरदान दिए, पुराण में कथाएं हैं। लेकिन ऐसा कोई वरदान कभी मांगा नहीं गया था। वह बहुत हैरान हुआ! तो उसने रूस की तरफ आंखें घुमाईं। रूस के प्रतिनिधि ने कहाः महानुभाव, यह हो सकता है कहा हो, कामरेड मुझे पता नहीं। यह भी हो सकता है, कहा हो कामरेड। कहाः महानुभाव, एक तो हमें विश्वास नहीं है कि आप हो। (12ः00 से 12ः 04 तक-- ध्वनि नहीं है) कोई वर्ष हुए, कोई पचास वर्ष हुए, हमने अपने मंदिरों, मस्जिदों से और गिरजाघरों से आपको निकाल कर विदा कर दिया। और अब हमारे देश में आपकी कोई पूजा नहीं होती और कोई दीये नहीं जलाए जाते और कोई फूल नहीं चढ़ाए जाते। हम आपके भ्रम से बहुत दिन हुए मुक्त हो गए हैं। लेकिन फिर भी हम दुबारा आपकी पूजा शुरू कर सकते हैं और स्वीकार कर लेंगे कि आप हो, और स्वीकार कर लेंगे आंख बंद करके जो भी आप कहोगे। लेकिन छोटी सी आकांक्षा हमारी पूरी हो जाए, तो प्रमाण बन जाए आपके होने का। हम नक्शा तो चाहते हैं, लेकिन अमरीका के लिए कोई रंग नहीं चाहते उसमें। दुनिया का नक्शा हो अमरीका के लिए कोई रंग न रह जाए।
ईश्वर ने बहुत घबड़ा कर ब्रिटेन की तरफ देखा। ब्रिटेन के प्रतिनिधि ने
जो कहा वह मन में रख लेने जैसा है। उसने कहा कि हे परमपिता! हमारी अपनी कोई आकांक्षा नहीं है, इन दोनों की आकांक्षाएं एक साथ पूरी हो जाएं, तो हमारी आकांक्षा पूरी हो जाएगी।
ऐसी स्थिति हो, और यह कहानी तो एकदम ही झूठ है। लेकिन यह स्थिति झूठ नहीं है। ऐसा ही हमारे मनों में चल रहा है। ऐसे ही विनाश को हम उत्सुक हैं।
और उसमें कोई ब्रिटेन और अमरीका और रूस ही सम्मिलित हों तो गलती हो जाएगी।
हम भी, सारी दुनिया के सभी लोग, चाहे वे कहीं रहते हों दुनिया के किसी कोने में, उन सबकी आकांक्षा दूसरों को कष्ट और दुख देने की और मिटा देने की है। और राष्ट्रों के तल पर यह चलता है, व्यक्ति के तल पर भी यही चलता है।
आप एक बड़ा मकान बना लेते हैं और बड़े प्रसन्न हो जाते हैं। इस खयाल में
न रहना कि बड़े मकान से आपको प्रसन्नता मिल रही है। किन्हीं लोगों के मकान आपने छोटे कर दिए होंगे, उससे प्रसन्नता मिल रही है। और अगर कोई और बड़ा मकान आपके करीब खड़ा हो जाए, तो यही बड़ा मकान जिसमें आप थे आपको दुख देने का कारण हो जाएगा।
जब हम किसी का मकान छोटा कर पाते हैं, तो प्रसन्नता मिलती है। और जब हम किसी को पीछे छोड़ पाते हैं, तो प्रसन्नता मिलती है। और हम जीवन में किसी को लंगड़ा कर देते हैं, पंगु कर देते हैं, तो प्रसन्नता मिलती है। दुखी चित्त का एक ही लक्षण है, वह दूसरे को दुख देकर प्रसन्न होता है। और आनंदित चित्त का भी एक ही लक्षण है, वह आनंद को बांट कर प्रसन्न होता है। जो हमारे पास है वही तो हम बांटेंगे। वही हम बांट सकते हैं।
दुख मनुष्य के भीतर गहरा है। और विज्ञान ताकत उसके हाथ में अपरिसीम
दे दिया है, तो खतरा होगा। दुख देने की क्षमता हमारी बढ़ गई है और भीतर हम दुखी हैं। मृत्यु को लाने की क्षमता हमारी बढ़ गई है, और भीतर हम दुखी हैं। जीवन को विनष्ट करने की क्षमता हमारी बढ़ गई है, और हमारे भीतर कोई आनंद, कोई सौंदर्य, कोई संगीत नहीं है, तो परिणाम युद्ध होने स्वाभाविक है। विज्ञान की शक्ति की खोज अपने आप में घातक सिद्ध हो गई है। लेकिन मनुष्य का मन कुछ एक्सट्रीम में, कुछ अतियों में डोलता है। ऐसे देश और ऐसी संस्कृतियां भी रही हैं, जिसे हम खुद, जिन्होंने इसी तरह अतिशय से, इसी तरह

एक्सट्रीम पर धर्म की भी खोज की है। और मैं यह निवेदन करना चाहूंगा, धर्म अकेला भी एक घातक सिद्ध हो जाता है। कोई यह न सोचे कि विज्ञान अकेला घातक सिद्ध हो जाता है, धर्म अकेला भी घातक सिद्ध हो जाता है।
इसलिए धर्म अकेला घातक सिद्ध हो जाता है कि भीतर शांति तो बढ़ती है। लेकिन बाहर अशक्ति, कमजोरी, दीनता और दरिद्रता का राज्य होता है। और अब तक दुनिया में जो भी संस्कृतियां विकसित हुई हैं, उनमें से कोई भी संस्कृति इतनी पूर्ण नहीं रही कि उसने भीतर और बाहर के बीच एक संतुलन और समन्वय खोज लिया हो। या तो पूरब के देशों में धर्म का इस भांति अनुसरण किया कि वे बाहर दरिद्र, दीन और दास हो गए। या पश्चिम के लोगों ने बाहर का इस भांति अनुसरण किया कि वे भीतर एकदम आत्मा को खो उठे हैं।
इन दो अतियों पर अभी तक मनुष्य का मन डोला है। और आज भी जो लोग इस संबंध में चिंतन करते हैं, उनमें से अधिक पक्षपाती हैं। उनमें से या तो धर्म के पक्षपाती हैं या विज्ञान के पक्षपाती हैं। मेरा निवेदन है कि मनुष्य के बाबत इस तरह के पक्षपात घातक हैं। और हमें मनुष्य को उसकी समग्रता में, उसकी पूर्णता में देखना और अंगीकार करना चाहिए। मनुष्य न तो केवल शरीर है और न केवल आत्मा। अगर वह शरीर मात्र ही होता तो विज्ञान पर्याप्त था। अगर वह आत्मा मात्र ही होता तो धर्म पूरा था। लेकिन मनुष्य दोनों का एक अदभुत सम्मिलन है। दोनों का एक अदभुत संतुलन है। दोनों की एक अदभुत कीमिया से पैदा हुई इकाई है। इसलिए उसका जीवन और उसकी संस्कृति और उसकी सभ्यता यदि किसी एक का चुनाव करेगी तो भटक जाएगी। अब तक मनुष्य-जाति की सभी सभ्यताएं भटकी हुई सभ्यताएं रही हैं। वे सभी एकांगी हैं।
एक छोटी सी कहानी मुझे स्मरण आती है।
रोम में एक बादशाह बीमार पड़ा। वह बहुत बीमार था। बहुत वर्ष उसकी चिकित्सा हुई। दूर-दूर से वैद्य बुलाए गए, चिकित्सक बुलाए गए। लेकिन वह ठीक नहीं हो सका। कुछ बीमारी भी पकड़ में न आई। बीमारी ही समझ में नहीं आई। फिर तो चिकित्सकों ने कहा कि इसका बचना असंभव है। दिन दो दिन की बात है और यह समाप्त हो जाएगा। उसकी आंखें भी खुलनी बंद हो गईं, उसकी श्वास भी टूटने लगी। वह करीब-करीब बिस्तर पर अर्धमृत होकर पड़ा रहा। कि तभी एक वजीर ने आकर खबर दी कि चिंतित न हों और निराश न हों, एक फकीर गांव में आया है और उस फकीर के बाबत लोगों को खयाल है कि वह तो मुर्दे को भी जिला दे। अभी तो आप जिंदा हैं, मरने से तो कम से कम बचा ही सकता है।
राजा ने आंखें खोलीं, उसने कहाः जल्दी करो, देर न करो। क्योंकि श्वास
का कोई भरोसा नहीं कि जो बाहर जाती है वह भीतर लौटे न लौटे। वे भागे और उस फकीर को लेकर आए। उस फकीर ने कहाः यह तो कोई बड़ी बीमारी ही नहीं है। और इसीलिए चिकित्सक असफल रहे। क्योंकि बीमारी थी ही नहीं, तो वे बीमारी खोज कैसे पाते? और उन्होंने जो दवाएं दी हैं, उन दवाओं ने इस आदमी को मरने के करीब पहुंचा दिया है, बीमारी ने नहीं। इसका तो बड़ा सीधा सा इलाज है।
राजा जो कि महीनों से पड़ा था, उठ कर बैठ गया और उसने कहाः कौन सा इलाज?
उस फकीर ने कहाः बड़ा सीधा और सरल। इस बड़ी राजधानी में जाओ और किसी ऐसे आदमी के वस्त्र ले आओ जो सुखी भी हो और समृद्ध भी, और उसके वस्त्र इसे पहना दो, बस। यह रात बीतते-बीतते स्वस्थ हो जाएगा।
वजीर नाच उठे खुशी से। महल के बुझे दीये जला दिए गए। महल में गीत और नाच होने लगे। बड़ी खुशी की बात थी, इलाज आसान था। वजीर भागे किसी ऐसे आदमी के वस्त्र लेने जो सुखी भी हो और समृद्ध भी। लेकिन जैसे-जैसे जिन-जिन भवनों में वे गए, हर घरों से लौटते वक्त उनकी निराशा बढ़ती गई। जिसके पास भी वे गए उसने कहा कि मैं अपने प्राण दे दूं राजा को बचाने के लिए, लेकिन मेरे वस्त्र कारगर नहीं होंगे। समृद्धि तो मेरे पास है, लेकिन सुख, सुख से मैं अपरिचित हूं। धन मेरे पास है, भवन है, बड़ी शक्ति, बड़े पद, लेकिन सुख मैंने अभी जाना नहीं। अभी कामना करता हूं, सपने देखता हूं, उसे पाया नहीं है।
हर भवन से लौटते वक्त वे निराश होते गए। धीरे-धीरे सांझ हो गई, सूरज ढलने लगा, और वे वजीर इकट्ठे हुए। और उन्होंने कहा कि राजा को बचाना तो मुश्किल मालूम पड़ता है। हम तो भ्रम में थे। उनके साथ जो नौकर दौड़ रहा था दिन भर, उसने कहा, यह तो मैं उसी वक्त समझ गया था कि यह नहीं हो सकेगा।

क्योंकि जब राजा के वजीर ही किसी और के कपड़े लेने जा रहे थे, तभी मुझे शक हो गया था।
अगर यह होने वाला होता तो राजा के वजीर ही अपने कपड़े दे देते। तुम जब दूसरों से कपड़े मांगने गए तभी मुझे शक हो गया था कि यह इलाज होगा नहीं, राजा मरेगा। किस मुंह से राजा के पास जाएं? तो सोचा, अंधेरा हो जाए, सूरज ढल जाए, तो चलें हम। सूरज ढले वे राजमहल की तरफ चले। राजमहल के पीछे ही नदी बहती थी, और वहीं उन्होंने बांसुरी की आवाज सुनी। दूर नदी के उस पार कोई पत्थर पर बैठ कर बांसुरी बजाता था। उसके स्वर में कुछ ऐसा जादू, कुछ ऐसा आनंद था, कुछ ऐसे सुख की गंध थी। उन्होंने सोचा, अंतिम प्रयास और कर लें, हो सकता है यह आदमी सुखी हो, इसके स्वर इतने आनंद से भरे हैं, इतने प्रेम से, इतनी खुशी से। वे गए और अंधेरे में जाकर उस आदमी के हाथ जोड़ कर खड़े हो गए और उन्होंने कहाः हमारा सम्राट मृत्यु के करीब है और हम एक ऐसे आदमी की खोज में हैं जो सुखी हो, उसके वस्त्रों से हमारा राजा ठीक हो जाएगा। क्या तुम अपने वस्त्र देने की कृपा करोगे?
वह आदमी हंसने लगा, उसने कहाः सुखी तो मैं हूं, लेकिन अंधेरे में आपको दिखाई नहीं पड़ रहा, मैं नग्न बैठा हूं, मेरे पास वस्त्र नहीं हैं।
फिर वह राजा मर गया। क्योंकि कुछ लोग मिले जो समृद्ध थे, लेकिन सुखी नहीं थे। और एक आदमी मिला जो सुखी था, लेकिन समृद्ध नहीं था। और वह राजा मर गया।
और मनुष्य भी इसी तरह की बीमारी से पीड़ित है। और करीब-करीब मरने के करीब खड़ा है। और अभी तक कोई ऐसे वस्त्र नहीं मिल पा रहे हैं जो सुखी और समृद्धि दोनों को अपने भीतर समेटे हों। या तो आंतरिक शांति की खोज होती है, तब बाहर से दरिद्र और दीन-हीन हो जाता है। जैसा इस देश में हुआ, पूरब के और देशों में हुआ। और या फिर समृद्धि की खोज होती है और सुख क्षीण हो जाता है, और सुख के सब तंत्र टूट जाते हैं।
यह इसलिए हुआ है क्योंकि बाहर और भीतर को विरोध की तरह देखा। यह इसलिए हुआ है कि हमने शरीर और आत्मा को शत्रु की तरह देखा। यह इसलिए हुआ है कि हमने सुख की खोज को एक अखंड खोज नहीं जाना, और मनुष्य के जीवन की खोज को हमने खंड-खंड टुकड़ों में करके देखा। हमने मनुष्य की अखंड और पूरी इकाई को आज तक स्वीकार नहीं किया है। जो लोग मनुष्य को शरीर मान कर स्वीकार करते हैं, वे उसकी आत्मा को इनकार कर देते हैं। और जो लोग उसकी आत्मा की बातें करते हैं, वे शरीर के जाने-अनजाने शत्रु हो जाते हैं।
एक ऐसी संस्कृति चाहिए जो मनुष्य के अंतर और बाहर के बीच सेतु बने, उन दोनों को जा.ेड सके। वस्तुतः वे दोनों जुड़े हैं। तो न तो कोई धार्मिक संस्कृति चाहिए, क्योंकि वह भी एक पक्ष है और एक अति। और न कोई एक वैज्ञानिक संस्कृति चाहिए, क्योंकि वह भी एक दूसरी अति पर भूल है। एक ऐसी संस्कृति चाहिए जो मनुष्य की अखंड प्रकृति को स्वीकार करे और उस अखंड प्रकृति को आनंद की दिशा में गतिमान कर सके। स्मरण रहे, मनुष्य की आत्मा की कोई भी खोज शरीर के आधार के बिना संभव नहीं है।
संत फ्रांसिस जब मर रहा था, उसने सारे लोगों से विदा ली, और अंत में वह हाथ जोड़ कर खड़ा हुआ, तो लोगों ने सोचा, शायद वह अब परमात्मा को धन्यवाद देगा। लेकिन उसने क्या कहा? उसने कहाः हे मेरे प्यारे शरीर, मैंने तुझे बहुत सताया और बहुत परेशान किया, और मैंने सदा यह समझा कि तू मेरा शत्रु है। और आज जब मेरी आंखें खुली हैं और मेरे हृदय में दीया जला है, तो मैं देख पा रहा हूं कि तू निरंतर मेरा साथी था, मेरा शत्रु नहीं। और तूने हर सुख-दुख में मेरे साथ साथ दिया। और मैंने तुझे सताया हो और परेशान किया हो, तू भी तो मेरा साथी था। और जिस आत्मा को मैं समझ पाया वह तेरी सीढ़ी पर चढ़े बिना उसे जानना असंभव था। इसलिए मैं तुझे धन्यवाद देता हूं और क्षमा मांगता हूं। भूल होगी जो मैंने तेरे साथ की होगी।
जो लोग भी मनुष्य के व्यक्तित्व को ठीक से देखेंगे, उन्हें दिखाई पड़ेगा: शरीर और आत्मा सीढ़ी और लक्ष्य की भांति काम करते हैं। और जो लोग भी मनुष्य के जीवन को गौर से देखेंगे, उन्हें दिखाई पड़ेगा: विज्ञान और धर्म साधन और साध्य की तरह काम करते हैं। विज्ञान अकेला रह जाए, तो खतरा हो जाता

है। अकेली सीढ़ी रह जाती है, रास्ता रह जाता है, पहुंचने को कोई जगह नहीं रह जाती है। और अकेला धर्म रह जाए, तो पहुंचने की जगह तो रह जाती है, लेकिन पहुंचने वाले सब मार्ग टूट जाते हैं। और तब जीवन पंगु होता है, जीवन अब तक पंगु रहा है।
एक दिशा है जिसे हम बाहर की दिशा कहेंः वहां विज्ञान ने पदार्थ को खोजा, उसके रहस्य को खोजा। एक और दिशा है जिसे हम भीतर की दिशा कहेंः वहां धर्म ने कुछ सत्य खोजे हैं।
लेकिन विज्ञान के सत्य ज्यादा प्रभावी हो सके, क्योंकि विज्ञान एक सार्वजनिक सत्य है। और धर्म के सत्य इतने प्रभावी नहीं हो सके, क्योंकि धर्म से अर्थ हिंदू, मुसलमान, ईसाई, जैन और बौद्धों से है। धर्म आज भी आपस में टूटा हुआ, आपस में विरोध में, आपस में टुकड़ों-टुकड़ों में, विरोधी टुकड़ों में बंटा है। इसलिए धर्म की वह प्रभावना नहीं हो सकी जो विज्ञान की हो सकी। विज्ञान एक अखंड सत्य की तरह खड़ा हुआ है। पूरब और पश्चिम के फासले गिर गए। संप्रदायों के फासले गिर गए। छोटे-छोटे प्रादेशिक घेरे गिर गए। एक-एक कबीले की अपनी मान्यताएं गिर गईं। और सारी मनुष्यता का विज्ञान खड़ा हो सका।
अभी सारी मनुष्यता का धर्म खड़ा नहीं हो सका है। इसलिए धर्म तो हार रहा
है रोज, इसलिए नहीं कि धर्म कम ताकत की चीज है। बल्कि इसलिए कि धर्म का खेमा आपस में बंटा हुआ है और आपस में लड़ रहा है। और यह हिंदू और मुसलमान और ईसाई और जैन और बौद्ध जब आपस में लड़ते हैं, तो स्वभावतः इनकी शक्ति तो आपस में लड़ने में समाप्त हो जाती है। और अधर्म की शक्तियां अपने आप बड़ी हो उठती हैं। विज्ञान के ऊपर कसूर नहीं है, कसूर है तो धार्मिक लोगों के ऊपर ही हैं।
इस समय जिसका चित्त भी थोड़ा धार्मिक है, उसके सामने पहली जो बात उठेगी
वह यह कि अगर वह ठीक-ठीक अर्थों में रिलीजस है, धार्मिक है, तो वह हिंदू और मुसलमान होने से मुक्त हो जाए। क्योंकि दुनिया में इन नामों के कारण ही धर्म का जन्म नहीं हो पाता है। कोई तीन सौ फेथ, कोई तीन सौ समुदाय हैं सारी जमीन पर, और ये सब एक-दूसरे के विरोधी हैं। दो सौ निन्यानवे में प्रत्येक एक के विरोध में खड़े हैं। उनकी सारी ताकत आपस में लड़ती है और समाप्त हो जाती है।
धर्म भी वैसे ही एक शक्ति है, जैसे विज्ञान। और धर्म के सत्य भी वैसे
ही युनिवर्सल हैं, वैसे ही सार्वलौकिक जैसे विज्ञान के। लेकिन हम चूंकि अभी धर्म के जगत में बहुत पक्षपातपूर्ण हैं। और हमारी धर्म के संबंध में चिंतना भी कोई तीन-चार हजार वर्ष पुरानी है। इसलिए, इसलिए वह चिंतना विज्ञान के समक्ष एक बल की भांति खड़ी नहीं हो पाती, और निरंतर पराजित हो जाती है।
तो कुछ दो-तीन बातें इस संबंध में विचार करना जरूरी है। पहली बात तो
यह कि मनुष्य चाहे बाहर कुछ भी खोजे, आज नहीं कल उसे भीतर की कमी और अभाव अखरना शुरू होता है। क्योंकि मैं चाहे कुछ भी पा लूं, और कितने ही बड़े भवन और कितने ही बड़े उपकरण और कितने ही बड़े साधन जुटा लूं, लेकिन अगर मेरे भीतर मैं एक आनंदपूर्ण आत्मा की थिरक को अनुभव न कर पाऊं, तो मैंने जो भी पाया है, वह मेरे ही द्वारा पाया हुआ मेरे लिए बंधन हो जाएगा। और मैंने जो पाया है वह भी मुझे दुख देने लगेगा।
क्योंकि सुख पाने की क्षमता एक दृष्टि, एक एप्रोच, एक कोण से व्यक्तित्व को खड़े होकर देखने की है। जब हम एक खास जगह से भीतर जीवन की चीजों को देखते हैं तब वे आनंददायी हो जाती हैं। और अगर भीतर से हमारा कोई आनंद के बिंदु पर खड़े होकर देखने की क्षमता और पात्रता न हो तो जीवन दुखदायी हो जाता है।
एक सुबह एक आदमी ने एक गांव के बाहर बैठे हुए वृद्ध से आकर पूछा अपनी बैलगाड़ी को रोक कर कि इस गांव के लोग कैसे हैं? मैं यहां निवास करना चाहता हूं। उस बूढ़े आदमी ने कहाः इसके पहले कि मैं बताऊं इस गांव के लोग कैसे हैं, क्या तुम कृपा करोगे कि उस गांव के लोग कैसे थे जिनको तुम छोड़ कर आ गए हो? उस आदमी ने कहाः उन लोगों का नाम लेते मेरी आंखों में आग जलने लगती है,

मेरे हृदय में क्रोध की ज्वालाएं उठ आती हैं। उन जैसे दुष्ट लोग तो जमीन पर खोजने असंभव। उस बूढ़े ने कहाः मित्र, इसलिए मैंने पूछा, इस गांव के लोग तो और भी बुरे हैं। मैं तो कोई सत्तर वर्ष से इनके बीच हूं। तुम कोई और गांव खोज लो। जिस गांव को तुम छोड़ कर आए हो उस गांव से भी बुरे लोग तुम यहां पाओगे।
वह आदमी चला गया। और वह जा भी नहीं पाया था कि उसी के पीछे एक और बैलगाड़ी आकर रुकी। कोई और यात्री, और उसने भी वही पूछा उस बूढ़े से कि इस गांव के लोग कैसे हैं? हम यहां रुकना चाहते हैं, यहीं बस जाना चाहते हैं। उस बूढ़े ने कहाः पहले मुझे यह बताओ कि जिस गांव से तुम आते हो वहां के लोग कैसे हैं? उस आदमी की आंखें खुशी से भर गईं और आंखों में खुशी के आंसू आ गए और उसने कहा कि उन लोगों की याद भी हृदय को बड़ी स्मृति से भर देती है, उतने भले लोग पृथ्वी पर कहीं खोजने कठिन हैं। दुख तो, दुर्भाग्य तो यही है कि कुछ मजबूरियों में मुझे उस गांव को छोड़ना पड़ा। लेकिन यही आशा लेकर आया हूं कि आज नहीं कल फिर उसी गांव में जाकर बस जाऊंगा। इतने प्यारे लोग खोजने कठिन हैं। उस बूढ़े ने कहाः आओ, तुम्हारा स्वागत है। मैं सत्तर वर्ष से इस गांव में रहता हूं, इस गांव के लोग तुम उस गांव से भी अच्छे पाओगे।
जीवन को देखने की एक दृष्टि यदि आनंदपूर्ण हो, तो बाहर सब आनंदपूर्ण
हो जाता है। और जीवन को देखने की दृष्टि यदि दुख और अंधेरे से भरी हो, तो बाहर सब अंधकार हो जाता है।
विज्ञान बाहर की दुनिया को बना रहा है; जरूर बनाया जाना चाहिए। बाहर
की दुनिया जैसे मिली है उसे वैसा ही केवल वे स्वीकार कर सकते हैं जो हर अर्थों में काहिल, सुस्त, और जिनके जीवन में कुछ भी करने की कोई उमंग, कोई जीवन को बदलने की आकांक्षा नहीं है। निश्चित ही बाहर की दुनिया बदली जानी चाहिए। निश्चित ही बाहर की दुनिया और बेहतर निर्मित की जा सकती है। लेकिन इतनी ही बात अधूरी होगी और भूल भरी होगी, क्योंकि बाहर की दुनिया वही दे सकती है जो भीतर का मनुष्य लेने की तैयारी में होता है। और अगर भीतर का मनुष्य गलत है, तो बाहर की ठीक दुनिया भी नरक बन जाएगी।
प्रश्न बिल्कुल यह नहीं है कि बाहर की दुनिया कैसी है, बहुत गहरे में प्रश्न यही है कि भीतर का मनुष्य कैसा है। भीतर अगर हमारे चीजों को देखने का दृष्टिकोण दुखपूर्ण है तो बाहर की दुनिया दुखपूर्ण हो जाएगी।
और अब तक दुनिया के तथाकथित धर्मों ने अगर हम ठीक से देखें, तो बाहर की दुनिया के दुख को अपने समर्थन में एक उपकरण बना लिया है। वे यह कहते हैं कि दुनिया दुख से भरी है, जन्म-मरण दुख से भरा है, इसलिए तुम एक ऐसे मोक्ष की खोज करो जहां सब आनंद ही आनंद हो।
ये झूठी और नासमझी की बातें हैं। ये इसलिए झूठी और नासमझी की बातें हैं कि इस भांति वे भी बाहर की दुनिया पर अति बल दे देते हैं और भीतर के मनुष्य को भूल जाते हैं। क्योंकि यही दुनिया कुछ लोगों के लिए अपूर्व आनंद की घड़ी बन जाती है।
तो सवाल यह बहुत बड़ा नहीं है कि इसको छोड़ कर कोई कहीं भाग जाए। सवाल बहुत बड़ा यही है कि वह इसके बीच अपने को कैसे परिवर्तित कर ले कि जिसे हम दुख और नरक की भांति जानते हैं वह आनंद और मोक्ष की भांति बन जाए?
धर्म का बुनियादी संबंध व्यक्ति के भीतर देखने की क्षमता और पात्रता
को परिवर्तित करने से है। और विज्ञान का बुनियादी संबंध वस्तुओं को अधिकतम सुविधापूर्ण बनाने से है। और धर्म का संबंध जीवन को अधिकतम आनंद की दृष्टि से देखने से है। धर्म के बिना तो विज्ञान अधूरा होगा ही, धर्म के बिना तो विज्ञान घातक होगा ही, धर्म के बिना तो जीवन में आनंद की कोई किरण नहीं हो सकती।
लेकिन धर्म से मेरा मतलब हिंदू-मुसलमान से नहीं। धर्म से मेरा मतलबः निरंतर बताई गई बातों, शास्त्रों और परंपराओं से नहीं है। धर्म से मेरा मतलब हैः जीवन को आनंदपूर्ण ढंग से जीने के उपाय से है। जो व्यक्ति भी, चाहे वह एक कवि हो और गीत गाता हो, और चाहे एक मूर्तिकार हो और मूर्ति बनाता हो, और चाहे एक वैज्ञानिक हो और खोज करता हो, चाहे एक अध्यापक हो, चाहे एक दुकानदार हो, चाहे एक चमार हो और जूते बनाता हो--जो व्यक्ति भी

अपने जीवन की समग्रता को आनंद की दृष्टि से देखने में सफल हो जाता है, उसे मैं धार्मिक मनुष्य कहता हूं। जो व्यक्ति भी अपने जीवन को आनंद के बिंदु से देखने में समर्थ हो जाता है, उसे मैं धार्मिक व्यक्ति कहता हूं। जो व्यक्ति भी हर घड़ी और हर स्थान पर मोक्ष में रहने में समर्थ हो जाता है, उसे मैं धार्मिक व्यक्ति कहता हूं।
वह व्यक्ति धार्मिक नहीं है जो मोक्ष की खोज करता है कहीं, कहीं दूर आकाश में, वह व्यक्ति धार्मिक नहीं है जो जन्म-मरण के पार मोक्ष की खोज करता है। वही व्यक्ति धार्मिक है जो अपने भीतर इसी घड़ी और अभी मोक्ष को पाने में समर्थ है। मोक्ष को पाने का अर्थ है कि उसके देखने की, जीवन को देखने की दृष्टि बदल गई है।
दो फकीर जापान में एक संध्या अपने झोपड़े पर वापस लौटे हैं। वर्षा के दिन आ गए हैं। और पूरे बादल आकाश में घिर गए हैं और आज नहीं कल पानी गिरेगा। वे दोनों बहुत दिन से यात्रा पर थे। और वर्षा के भय से वर्षा के पहले घर पहुंच जाएं, अपने झोपड़े पर भागे हुए आ रहे थे। लेकिन जैसे ही वे झोपड़े के पास पहुंचे, ठगे से रह गए। उनमें से एक तो बोलाः हे परमात्मा! इसीलिए तुम पर शक आ जाता है, यह क्या किया तुमने?
हवाओं ने उस झोपड़े के आधे छप्पर को उड़ा दिया।
उनमें से एक फकीर ने कहा कि इसी से तो शक आ जाता है तुम्हारे होने पर। गांव में पापियों के बड़े-बड़े महल खड़े हैं और यह गरीब फकीरों का झोपड़ा ही तुमको उड़ाने को मिला? अगर हवाओं को ही जोर-आजमाइश करनी थी तो किसी महल पर करनी थी? अगर तुम्हारा ही दिल चीजों को तोड़ने का हो गया था तो कोई बड़ा महल तोड़ देते, यह गरीबों के झोपड़े को तोड़ने में तुम्हें शर्म भी न आई? उसने अपने दूसरे फकीर से कहाः देखते हो, लेकिन दूसरे की तरफ देख कर वह हैरान हो गया।
वह दूसरा फकीर घुटने टेक कर हाथ जोड़े आकाश की तरफ बैठा है, उसकी आंखों
से आनंद के आंसू बहे जाते हैं। वह हैरान हुआ। उसने उसे हिलाया और पूछा कि यह क्या करते हो? उसने कहाः मैं परमात्मा को धन्यवाद देता हूं। बड़ी है उसकी कृपा और अनुकंपा, नहीं तो हवाओं का क्या भरोसा, पूरा झोपड़ा भी उड़ा ले जा सकती थीं। उन्होंने आधा छप्पर छोड़ दिया। आंधियों का कौन सा विश्वास, पूरे छप्पर को भी गिरा सकती थीं, लेकिन आधा छप्पर छोड़ दिया। तो बिना धन्यवाद दिए कैसे रहूं? उसकी कृपा, उसकी अनुकंपा बड़ी है।
और रात वे दोनों उसी झोपड़े में सोए। पहला तो रात भर नहीं सो सका, रात
भर उसे चिंता पकड़े रही। दूसरा बहुत गहरी नींद भी सोया और सुबह उठ कर उसने एक गीत लिखा। और उस गीत में उसने कहाः हे परमात्मा! मुझे पता ही नहीं था कि आधे छप्पर का आनंद कैसा होता है, अन्यथा हम तुम्हारी हवाओं को कष्ट न देते, हम खुद ही आधा छप्पर गिरा देते। रात ही मैंने देखा, जब भी आंख खुली, तो आधे छप्पर से आकाश के तारे भी दिखाई पड़े, चांद भी दिखाई पड़ा। और अब तो अदभुत हो जाएगा, वर्षा आने को है, आधे में हम सो भी जाएंगे, आधे में वर्षा की बूंदें गिरेंगी, उनका संगीत भी सुनेंगे, इसका हमें खयाल ही नहीं था। नहीं तो तुम्हारी हवाओं को कष्ट न देते, हम खुद ही आधा गिरा देते। दूसरा भी रात उसी झोपड़े के नीचे था, लेकिन रात भर क्रोध में और गुस्से में था, और रात भर चिंता में था। इन दोनों व्यक्तियों में दूसरे व्यक्ति को मैं धार्मिक कहता हूं, पहले व्यक्ति को धार्मिक नहीं।
जीवन को जो उसके आनंद और आलोक से भरे पहलू की ओर से देखने में समर्थ हो जाता है वह धार्मिक है, और तब, तब उसे कोई मोक्ष खोजना नहीं पड़ता; उसे मोक्ष मिल जाता है। और तब कहीं उसे दौड़ना नहीं पड़ता, वह जहां है वहीं, उसी जगह, उसी स्थिति, उसी दशा में वह उसे पा लेता है जिसे पाए बिना जीवन, जीवन कभी भी एक, एक सौंदर्य, जीवन कभी भी एक धन्यता नहीं हो सकता है।
धर्म से मेरा अर्थ हैः जीवन की आनंदपूर्ण दृष्टि को उपलब्ध कर लेना। विज्ञान से अर्थ हैः जो बाहर तुम्हारे चारों तरफ फैला हुआ जगत है, वह भी परमात्मा का है। वह जो पदार्थ है, वह भी परमात्मा का है। उसके भीतर जो छिपे हुए राज हैं, वे जो सीक्रेट्स हैं, वह जो मिस्टरी है, वह जो रहस्य है--उनको खोज लेना। उन रहस्यों को खोज कर जीवन बहुत समृद्ध हो सकता है। लेकिन जीवन

की अगर दृष्टि उपलब्ध न हो जो, जो चीजों से आनंद ले सकती है, तो नहीं, तो फिर और जीवन दुखी हो जाएगा, भीतर दुख होगा और बाहर ताकत होगी, और कुछ नहीं हो जाएगी।
इसलिए धर्म के जो प्रचलित नाम हैं उनसे नहीं, बल्कि धर्म की जो मौलिक क्रांति है मनुष्य के मन में, उसको विचार करना चाहिए, उसको खोजना चाहिए और देखना चाहिए। इससे नहीं कि आप रोज मंदिर जाते हैं इससे धार्मिक हैं। जिसको भी धोखा देना होता है धार्मिक होने का, वह रोज मंदिर जा सकता है। इसमें कोई बहुत कठिनाई नहीं है। इससे नहीं कि आप कैसे कपड़े पहनते हैं। हो सकता है आप लंगोटी लगा लें, इससे कोई धार्मिक होने का संबंध नहीं है। हो सकता है आप रोज सुबह उठ कर गीता पढ़ते हों, इससे भी, या कुरान पढ़ने से धार्मिक होने का संबंध नहीं है।
धार्मिक होने का संबंध है प्रतिक्षण जीवन को आप कैसा लेते हैं--एक आनंद की भांति या एक दुख की भांति। जीवन जैसा आपके सामने प्रकट होता है वह एक प्रेमपूर्ण आमंत्रण की भांति या एक बोझ की भांति। और अब तक जो तथाकथित धार्मिक हैं उसने जीवन को बोझ के ढंग से लिया है, वह कहता है कि जन्म-मृत्यु से छुटकारा चाहिए।
रवींद्रनाथ ने मरते वक्त अपने एक मित्र को कहाः एक ही प्रार्थना और करनी है परमात्मा से कि अगर तुम मुझे इस योग्य समझे कि मुझे फिर जीवन मिले, तो मुझे फिर जीवन देना, क्योंकि मैं धन्य हुआ तेरे जीवन को पाकर। और मैंने वह सब जाना जो प्रेमपूर्ण था और जो आनंदपूर्ण था। और अगर मैं न जान सका हूं तो उसमें भूल मेरी रही होगी, तेरी कोई भूल नहीं थी।
जीवन को जो इतना आनंद से लेगा वही धार्मिक है। लेकिन हम तो जानते हैं
उन लोगों को जो चेहरे उतार कर जीवन को लेते हैं, उनको हम धार्मिक कहते हैं-- उदास और गंभीर। नहीं, ये रुग्ण हैं, उदास और गंभीर व्यक्ति रुग्ण हैं। आनंदित और प्रफुल्लित और जिसके प्राण किसी गीत से गूंज रहे हों और किसी संगीत से।
चीन में तीन फकीर हुए। उनका नाम ही थ्री लाफिंग सेंट्स हो गया था, तीन हंसते हुए फकीर। वे जिस गांव में गए उस गांव में उन्होंने कोई उपदेश नहीं दिया; उस गांव के चौरस्ते पर खड़े होकर बस वे हंसने लगे और तीनों इतने जोर से हंसते और उनकी हंसी ऐसी मुक्त और ऐसी आनंदपूर्ण कि सारे गांव में धीरे- धीरे हंसी की लहर फैल जाती। और जितने दिन तक वे उस गांव में रहते उस गांव में लोग हंसते ही रहते, और उस हंसी में वे कुछ जान पाते।
जीवन को जो गंभीरता से लेता है वह जान नहीं पाता। जीवन को तो बच्चों जैसी सरलता से और आनंद से जो लेता है वही जान पाता है।
उनमें से एक फकीर मरा, तो गांव के लोगों ने कहा कि अब तो निश्चित ही उसके दो साथी उदास हो जाएंगे और दुखी हो जाएंगे। लेकिन वे दो साथी सुबह ही नाचते हुए गांव में निकले। और लोगों ने उनसे पूछा कि आज तुम दो ही हो और एक कहां? तो उन्होंने कहाः वह एक तो बहुत धन्यभागी है, वह हमसे पहले बड़ी यात्रा पर निकल गया। और हम उसको नाच कर और गीत गाकर विदा देने की तैयारी कर रहे हैं। क्योंकि जिसके साथ इतने आनंद के क्षण बिताए, उसे उदास और आंसू भरी आंखों से विदा देना मित्रता के प्रति घात होगा। और हम नाच कर और गीत गाकर तैयारी कर रहे हैं और हंस कर, हम उसे हंसते हुए विदा दे सकें।
और वह जो आदमी मर गया था, उसने सोचा कि जब मैं मर जाऊंगा--लोग मुझे बहुत प्रेम करते हैं, वे जब मुझे चिता पर चढ़ाएंगे तो बहुत दुखी हो जाएंगे, और यह शुभ न होगा कि उनके दुख में मैं विदा लूं। तो उसने अपने साथियों से कहा कि तुम मेरे वस्त्र मत उतारना, मैं जिन वस्त्रों में मरूं उन्हीं वस्त्रों में मुझे चिता पर चढ़ा देना। अंतिम उसकी इच्छा थी, तो वैसा ही किया गया। गांव भर उदास था। वे दो मित्र तो नाचते हुए, गीत गाते हुए मरघट तक गए। लेकिन गांव भर उदास था। लेकिन फिर जैसे ही उसकी लाश चिता पर रखी गई, धीरे- धीरे हंसी फैलने लगी और उस कब्र के, उस चिता के आस-पास इकट्ठे लोग हंसने लगे और नाचने लगे। क्या हुआ?

उस मरते हुए फकीर ने अपने कपड़ों में फूलझड़ियां और पटाखे छिपा रखे थे,
वे फूटने लगे चिता पर और लोग हंसने लगे। और उन्होंने कहाः वह मरते हुए भी हमें हंसा रहा है!
धार्मिक व्यक्ति वह है, जो आनंद से जीता है और आनंद से मरता है। और जो आदमी आनंद से जीने का रहस्य पा जाता है, मृत्यु भी उसे आनंद हो जाती है। क्योंकि मृत्यु उसे परमात्मा से मिलन का अर्थ ले लेती है। वह जीवन से विदाई नहीं होती, परम जीवन से मिलन हो जाता है।
धार्मिक व्यक्ति मैं उसे कहता हूं जो प्रतिक्षण, प्रतिक्षण आनंद में जीने की खोज में हो। लेकिन इन सारे लोगों को मैं धार्मिक नहीं कहता--जो वस्त्र बदल लेते हैं, घर बदल देते हैं, गांव छोड़ देते हैं, परिवार छोड़ देते हैं और किसी दूरगामी मोक्ष की पीड़ा को... किसी दूरगामी मोक्ष की कामना में पीड़ित और परेशान होते हैं। ये तो सब लोभी लोग हैं। इनकी तृप्ति इनके लोभ की तृप्ति इस संसार से भी नहीं होती, तो ये मोक्ष चाहते हैं।
ये तो अत्यंत कामी लोग हैं, इनकी तृप्ति संसार के क्षणभंगुर सुखों से नहीं होती, तो ये स्थायी सुख चाहते हैं। ये बिल्कुल ऐसा सुख चाहते हैं जो कभी खंडित न हो। ऐसा मोक्ष चाहते हैं जो कभी मिटे नहीं। इनकी चूंकि जीवन की छोटी-छोटी चीजों में इन्हें कोई खुशी नहीं है। ये सब परमात्मा को पाना चाहते हैं। उसी को पाकर ये खुश हो सकेंगे।
लेकिन मैं निवेदन करूं, जिसने जीवन के छोटे से रास्ते पर खिले हुए छोटे-छोटे फूलों में खुशी नहीं पाई, वह परमात्मा से मिल कर भी खुश नहीं हो सकेगा। और जिस व्यक्ति ने जीवन के क्षुद्रतम प्रवाह में छोटी-छोटी बूंदों में भी आनंद की पुलक नहीं देखी, वह अगर मोक्ष में भी पहुंच जाए तो आनंदित नहीं हो सकेगा। क्योंकि वह तो वही रहेगा, जो था। और उसके देखने की दृष्टि वही रहेगी। उसके देखने का कोण वही रहेगा। चीजों को समझने की वृत्ति वही रहेगी। उसे मोक्ष में बिठा देने पर भी वह मोक्ष से मुक्त होने की किसी साधना में लग जाएगा। जो मुक्त होने की ही कोशिश में लगा है वह मोक्ष में भी मुक्त होने की कोशिश में लग जाएगा।
धर्म का संबंध मुक्त होने से कम, जीवन को उसकी पूरी गहराई में जी लेने
से ज्यादा है। इस मुक्ति की आकांक्षा में जीवन को उसकी पूरी गहराई में जीने से हमें वंचित कर दिया है। और चूंकि धर्म के तल पर हमारा कोई जीवन नहीं है। फिर सीधा विज्ञान रह गया और शरीर का जीवन रह गया।
तो मैं निवेदन करता हूं, जिसे हम आमतौर से जीवन जानते हैं उससे बड़ा जीवन भी हमारे निकट है। और इसी जीवन में जो सुख को खोज रहा है, वह गलती में है। उसे थोड़ा भीतर अपने व्यक्तित्व को वैसे सृजन से वैसी सृजनशीलता से गुजारना होगा, जहां वह और बड़े आनंदों को देखने में समर्थ हो जाए। जहां पत्थर दिखाई पड़ रहा है वहां परमात्मा दिखाई पड़ सकता है, केवल देखने वाली आंखें चाहिए। और जहां कुछ भी नहीं दिखाई पड़ रहा, वहां सब कुछ दिखाई पड़ सकता है, केवल देखने वाला हृदय चाहिए। और देखने वाला हृदय...
जिस राबिया की मैंने बात कही, एक दिन उस राबिया को लोगों ने घर के बाहर देखा वह कुछ खोज रही है। कोई राहगीर निकलता था, उसने पूछा, क्या खोजती हो? उसने कहाः मेरी सुई खो गई है, उसे मैं खोजती हूं। राहगीर दयालु था। बूढ़ी औरत का साथ देने के लिए वह भी सुई खोजने लगा और दो-चार लोग निकले, वे भी साथ देने लगे। और तभी एक व्यक्ति ने खड़े होकर पूछा कि सुई है बहुत छोटी चीज, रास्ता है बहुत बड़ा, अंधेरा उतरता आ रहा है, तुम ठीक-ठीक बताओ सुई कहां खोई? नहीं तो बहुत मुश्किल है खोज लेना।
उस राबिया ने कहाः यह न पूछो तो अच्छा है। पहले भी जो लोग खोज रहे हैं उन्होंने भी नहीं पूछा, तुम भी क्यों पूछते हो? उसने कहा कि बड़ी गड़बड़ बात है, बाकी लोग भी रुक गए। उन्होंने कहा कि यह तो हमें खयाल में भी नहीं आया कि हम पहले यह पूछें कि सुई खोई कहां है?
उस राबिया ने कहाः सुई तो मेरी कोठरी के भीतर खोई है, लेकिन मैं हूं गरीब औरत तो मेरे पास दीया जलाने का कोई उपाय नहीं है। तो जब सुई मेरी गिर गई तो अंधकार होने लगा भीतर, तो मैं बाहर की झोपड़ी पर दरवाजे पर दहलान में

खोजने आ गई, वहां थोड़ी रोशनी थी सूरज की। फिर वह भी चली गई, तो अब मैं सड़क पर खोज रही हूं। क्योंकि जहां रोशनी नहीं, वहां खोजेंगे कैसे?
उन लोगों ने कहाः तुम बड़ी पागल औरत हो! और जब भी तुम करती हो कोई न कोई पागलपन करती हो। यह क्या पागलपन है? अगर सुई भीतर खोई है तो रोशनी भीतर ले जानी पड़ेगी, बजाय इसके कि जहां रोशनी है वहां खोजा जाए। कितना ही खोजें सुई नहीं पाई सकती।
वह राबिया खूब हंसने लगी, और उसने कहा कि यही समझाने को मैं सुई खोजने लगी, मेरी कोई सुई खोई भी नहीं है। मैं तो हर आदमी को देखती हूं, वह बाहर खोज रहा है। और कोई भी यह नहीं पूछता कि जिसे हम बाहर खोज रहे हैं, क्या वह बाहर खोया है?
नहीं, लेकिन आंखों की रोशनी बाहर खोजती है, हाथ बाहर फैलते हैं, कान बाहर सुनते हैं, सब हमारी इंद्रियां बाहर की तरफ रोशनी फेंकती हैं। इसलिए बाहर खोजते हैं, बिना इस बात को जाने कि उसे खोया कहां है।
समझदार व्यक्ति वह होगा जो सबसे पहले यह पूछ ले कि मैंने खोया कहां है? मैंने क्या खोया है? और अगर इसका भी उत्तर न मिले, तो भी यही उचित और विवेकपूर्ण होगा कि इसके पहले कि वह बड़ी पृथ्वी पर खोजने निकल जाए, वह कम से कम अपने भीतर पहले खोज ले। अगर वहां न पा सके, तो फिर बाहर खोजने निकल जाए।
लेकिन अनुभव यही है कि जिन्होंने भीतर खोजा उन्होंने पा लिया। एक भी व्यक्ति ने मनुष्य के पूरे इतिहास में यह नहीं कहा है कि मैंने भीतर खोजा और मुझे नहीं मिला। और एक भी व्यक्ति ने यह भी नहीं कहा है कि मैंने बाहर खोजा और मुझे मिल गया हो। बाहर की खोज निरपवाद रूप से असफल रही है; भीतर की खोज निरपवाद रूप से सफल रही है।
भीतर कौन है, इसकी खोज में उतरना धर्म है। भीतर क्या है, इसकी तरफ आंखें खोलना धर्म है। कैसे वह आंखें खुल सकती हैं, उसकी मैं कल की चर्चा में आपसे बात करूंगा। अभी तो मैंने आपसे ये दो बातें कहीं हैंः कैसे आंख खुल सकती है भीतर के सत्य के प्रति। कैसे वहां प्रकाश पहुंच सकता है, इसकी मैं कल आपसे बात करूं।
एक बात अंत में जरूर आपसे कह दूं, कि चाहे शास्त्र कुछ कहें, चाहे सदगुरु कुछ कहें, जब तक खुद की आंख न खुल जाए, तब तक धर्म का कोई अनुभव नहीं होता। विज्ञान के साथ एक सुविधा है, विज्ञान एक ट्रेडीशन है, एक परंपरा है। विज्ञान वैयक्तिक अनुभव नहीं है। बिजली जल रही है, हमें कुछ भी पता नहीं कि कैसे जल रही है। लेकिन हम बटन दबाते हैं और जल जाती है। कोई जानता होगा; लेकिन हम सबको इस बात को जानने की जरूरत नहीं होती। विज्ञान प्रत्येक व्यक्ति को जानने की बात नहीं है, प्रत्येक व्यक्ति उपयोग कर सकता है।
धर्म के साथ उलटी बात है। धर्म को प्रत्येक व्यक्ति को जानना होता है,
तो ही उपयोग कर सकता है, अन्यथा उपयोग नहीं कर सकता। धर्म बिल्कुल निजी, बिल्कुल इंडिविजुअल, बिल्कुल वैयक्तिक अनुभव है। जैसे प्रेम का अनुभव है, वैसे ही परमात्मा का अनुभव है--अत्यंत वैयक्तिक। किसी दूसरे के अनुभव से कुछ भी आंख नहीं खुलती, और किसी दूसरे के अनुभव से कुछ भी पता नहीं चलता। एक अंधे आदमी के सामने हम प्रकाश की बातें करें, उसे कुछ भी पता नहीं चलता। लेकिन आंख खुल जाए तो वह प्रकाश को जान लेता है। इसलिए धर्म अत्यंत व्यक्तिगत दर्शन है। खुद की आंख खुल जाए तो ही हम जान सकते हैं--तो ही, और कोई दूसरा उपाय नहीं। उधार और दूसरों से सीख कर धर्म के जगत में कुछ भी नहीं हो सकता।
इसलिए तो विज्ञान विद्यापीठों और विश्वविद्यालय में पढ़ाया जा सकता है। धर्म नहीं पढ़ाया जा सकता। पढ़ाने का कोई उपाय नहीं है। विज्ञान एक सामूहिक संपत्ति बन जाता है। धर्म निरंतर वैयक्तिक अनुभव है। और जब भी हम उसे सामूहिक संपत्ति बनाते हैं, तब हिंदू पैदा हो जाता है, मुसलमान पैदा हो जाता है, ईसाई--जो कि बीमारियां हैं, जो कि धर्म नहीं है। जब भी हम धर्म को सामूहिक बनाते हैं तब एक आर्गनाइजेशन खड़ा हो जाता है, जो कि खतरनाक सिद्ध होता है।

और स्मरण रखें, जब भी कोई आर्गनाइजेशन होता है तो शैतान सबसे पहले उस
पर कब्जा कर लेता है। शैतान हमेशा कोशिश में रहता है कि कहीं लोग इकट्ठे हो जाएं, तो वह कब्जा कर ले। और अगर लोग इकट्ठे न हों तो शैतान कोशिश करता है कि इकट्ठे कर लो।
एक बार शैतान को खबर दी, उसके मित्रों ने खबर दी। और उसके बहुत मित्र हैं सब तरफ--उसके अखबार वाले, और उसके पत्रकार, और उसकी न्यूज एजेंसीज हैं। उन्होंने एक दफे शैतान को खबर दी कि एक आदमी को सत्य उपलब्ध हुआ जा रहा है। शैतान अपने साथियों को लेकर भागा। रास्ते में ही उसके आकर और मित्रों ने खबर दी कि आप व्यर्थ जा रहे हैं, उसको तो सत्य उपलब्ध हो गया है। शैतान ने कहाः तब जल्दी जाओ और गांव में खबर कर दो--गांव-गांव में ढोल पीट कर खबर कर दो कि फलां आदमी को सत्य उपलब्ध हो गया है। ताकि लोग उसके आस-पास इकट्ठे हो जाएं। और लोगों में ऐसा जोश भरो कि वे संगठित हो जाएं। बस वे संगठित हुए कि सत्य मर जाएगा। क्योंकि सत्य तो बिल्कुल वैयक्तिक है। और जहां संगठन खड़ा हुआ वहां उपद्रव।
शैतान परेशान नहीं हुआ। उसने गांव में खबर कर दी, लोग इकट्ठे होने लगे, भीड़ लगने लगी और उन्होंने एक संगठन बना लिया। और संगठन के भीतर वह सत्य का दीया जला था, वह विलीन हो गया।
सभी संगठनों ने सत्य की हत्या की है। धर्म है बिल्कुल वैयक्तिक। उसका आर्गनाइजेशन से, समूह से, संगठन से कोई वास्ता नहीं है। उसका तो प्रत्येक व्यक्ति की, उसकी निजी चेतना में उतरने से वास्ता है। और वे आंखें कैसे उस सत्य की तरफ उठ जाएं, उसके लिए कल आपसे बात करूंगा।

मेरी इन बातों को इतनी शांति और प्रेम से सुना है, उससे बहुत-बहुत अनुगृहीत हूं। परमात्मा, विज्ञान ने तो सबको सहज ही खड़ा कर दिया है इसमें, वह धीरे-धीरे सभी को धर्म में भी खड़ा कर सके, इसकी प्रार्थना करता हूं।
सबके भीतर बैठे परमात्मा के लिए मेरे प्रणाम स्वीकार करें।

विज्ञान, धर्म और कला
तीसरा प्रवचन

सेवा स्वार्थ के ऊपर

मेरे प्रिय आत्मन्!
सर्विस अबॅव सेल्फ, सेवा स्वार्थ के ऊपर। इतना सीधा-सादा सिद्धांत मालूम पड़ता है जैसे दो और दो चार। लेकिन अक्सर जो बहुत सीधे-सादे सिद्धांत मालूम होते हैं, वे उतने सीधे-सादे होते नहीं हैं। जीवन इतना जटिल है और इतना रहस्यपूर्ण और इतना कांप्लेक्स कि इतने सीधे-सादे सत्यों में समाता नहीं है। दूसरी बात भी प्रारंभ में आपसे कह दूं और वह यह कि शायद ही कोई व्यक्ति इस बात को इनकार करने वाला मिलेगा। इस सिद्धांत को अस्वीकार करने वाला आदमी जमीन पर खोजना बहुत मुश्किल है। लेकिन अक्सर ऐसा होता है कि बहुत लोग जिस सिद्धांत को चुपचाप स्वीकार करते हैं उसके गलत होने की संभावना बढ़ जाती है। वक्त था, जमीन चपटी दिखाई पड़ती है--है नहीं। हजारों साल तक करोड़ों लोगों ने माना कि जमीन चपटी है। क्यों? हजारों साल तक आदमी ने समझा कि सूरज जमीन का चक्कर लगाता है--लगाता नहीं। अब हमें पता भी चल गया, तब भी सनराइज और सनसेट शब्द मिटने बहुत मुश्किल हैं। सूरज उगता है, सूरज डूबता है; इससे ज्यादा गलत और कोई बात नहीं होगी, लेकिन भाषा में चलेगी।
दूसरी जो बात आपसे कहना चाहता हूं वह यह कि जो बहुत ऑब्विअस सत्य मालूम होता है, जो बहुत प्रकट सत्य मालूम होता है, अक्सर स्थिति उससे ठीक उलटी होती है। और जिसे साधारणतः हम कभी इनकार नहीं करते, उसे हम चौबीस घंटे इनकार करते रहते हैं। इसीलिए इनकार करने की कोई जरूरत भी नहीं पड़ती। जिंदगी में उससे कोई बाधा पड़े तो हम इनकार भी करें। जिंदगी में उससे कोई बाधा नहीं पड़ती। जितने अच्छे सिद्धांत हैं उन्हें हम कभी चर्चा का विषय भी नहीं बनाते। क्योंकि जिंदगी उनके बिना चली जाती है।
निश्चित ही आपने तो सर्विस अबॅव सेल्फ, इस पर बहुत बार बातें सुनी होंगी। कॉमनसेंस, बिल्कुल साधारण बुद्धि की बात मालूम पड़ती है कि सेवा को हम स्वार्थ के ऊपर रखें। लेकिन कॉमनसेंस बहुत बार नॉनसेंस सिद्ध होता है। यह जब मैं आपसे कहूंगा तो कुछ बातें मेरे साथ सोचनी पड़ेंगी। पहली बात तो मैं आपसे यह कहना चाहूंगा कि स्वार्थ के ऊपर जगत में किसी भी चीज को रखना संभव नहीं है। इंपॉसिबिलिटी। सेल्फ के ऊपर जगत में कोई भी चीज रखनी संभव नहीं है। वह अस्वाभाविक है। वह असंभव है। और जब कभी आप रखते भी हैं, तब अगर थोड़े गहरे में झांकेंगे, तो पाएंगे आपने रखा नहीं है।
एक आदमी नदी में डूब रहा है। दस आदमी गुजरते हैं। आप अपनी जान जोखिम में डाल कर नदी में कूद पड़ते हैं और उस आदमी को बचा कर बाहर निकाल लाते हैं। निश्चित ही हम कहेंगे, सर्विस अबॅव सेल्फ। यहां तो स्वयं को खतरे में डाल कर उस आदमी को बचाया गया है। लेकिन मनोवैज्ञानिक कहते हैं कि सच्चाई बहुत दूसरी है। जब आप किसी आदमी को नदी में डूबते से बचाते हैं, तो उस आदमी से आपका कोई संबंध नहीं होता, उस आदमी को डूबते देखना आपको कठिन और दुखद होता है। अपने दुख को बचाने के लिए आप नदी में से किसी डूबते को बचाते हैं। वहां भी सेल्फ के बाहर आदमी जाता नहीं, भीतर ही होता है। आज तक कोई आदमी गया भी नहीं है। अगर भगत सिंह को ठीक लगता है मुल्क के लिए मर जाना, तो आप यह मत समझना कि भगत सिंह मुल्क के लिए मरते हैं। भगत सिंह अपने खयाल के लिए मरते हैं कि मुल्क को बचाना जरूरी है। दुनिया के सब शहीद अपने खयाल के लिए कुर्बानी देते हैं। उनका खयाल आपके हित में सिद्ध होता है, यह बिल्कुल दूसरी बात है। लेकिन उनका खयाल उनका आनंद है। इसलिए भगत सिंह जैसे व्यक्ति को सूली पर चढ़ते वक्त दुख नहीं है, वह आनंदित है, वह फुलफिल्ड है। उन्होंने जो चाहा था, वह किया। और उस सीमा तक किया है जहां स्वयं को मिटा डाला है। मिटा डालने की जोखिम उठाई है। लेकिन यह भी गहरे में स्वयं का ही आनंद है। यह भी गहरे में सेल्फ ही है। हां, यह बात दूसरी है कि सेल्फ का एस छोटा हो या कैपिटल लेटर्स में हो। इसके लिए थोड़ी आपसे बात करूंगा। लेकिन

यह भी स्वयं है। सेवा को आज तक पृथ्वी पर कोई आदमी स्वयं के ऊपर नहीं रख सका है।
यह जब मैं कहूंगा तो बड़ी अजीब सी बात लगेगी। क्योंकि हमने बड़े-बड़े सेवको के नाम सुन रखे हैं। हमारी पूरी कथाएं सेवकों के नाम से भरी हैं। लेकिन मैं आपसे यह कहना चाहता हूं कि यह सेवा का आनंद भी किसी के स्व का आनंद है। और जो आदमी स्व के ऊपर सेवा रखेगा, वह सेवा में कभी आनंदित नहीं हो सकता। सदा दुखी होगा। और तब वह सेवा से कुछ और चीजों की पूर्ति करना चाहेगा। यश कमाना चाहेगा, धन कमाना चाहेगा, कम से कम अखबार में नाम चाहेगा।
इसलिए सेवक जब सेवा करने जाता है तो फोटोग्राफर को साथ ले जाना नहीं भूलता। पता कर लेता है कि अखबार वाले आस-पास हैं या नहीं। और इस देश में तो अभी हमने देखा है कि सेवा करने वाले किस तरह से देश की छाती पर सवार हो गए हैं। अगर हम मनोविज्ञान की गहराइयों में उतरें, तो समझ लेना चाहिए कि जो आदमी आपके पैर दबाने से शुरू करेगा, आज नहीं कल आपकी गर्दन दबाने पर काम पूरा करेगा। क्योंकि किसी के भी मतलब की बात नहीं है कि आपके पैर दबाए। असल में स्वयं के बाहर जाना वैसा ही कठिन है जैसा अपने जूते के बंद को पकड़ कर खुद को उठाना कठिन ही नहीं, असंभव है। आप जो भी करेंगे वह स्व ही होगा, सेल्फ ही होगा। अगर लोग परमात्मा को भी खोजे हैं, तो स्वयं के लिए। और अगर लोगों ने मोक्ष भी चाहा है, तो स्वयं के लिए। और लोग अगर मिटे भी हैं, स्वयं को भी मिटाया है, तो भी स्वयं के लिए।
स्व के ऊपर कभी कोई आदमी गया नहीं। न कभी कोई आदमी जा सकता है। लेकिन इसका क्या मतलब है? क्या मैं यह कह रहा हूं कि सभी लोग एक जैसे स्वार्थी हैं? यह मैं नहीं कह रहा हूं। ऐसा स्व भी हो सकता है जो नरक की यात्रा करा दे, और ऐसा स्व भी हो सकता है, जो स्वर्ग की यात्रा पर ले जाए। लेकिन यह दोनों सेल्फ हैं। ऐसा स्व हो सकता है, जो रावण बना दे। ऐसा स्व हो सकता है जो राम बना दे। लेकिन ये दोनों स्व हैं। ऐसा स्व हो सकता है, जो जीवन को दुख और पीड़ा से भर दे; और ऐसा स्व हो सकता है जो जीवन को आनंद बना दे, संगीत से भर दे। लेकिन ये दोनों सेल्फ हैं। इनके सेल्फ होने में कोई फर्क नहीं है। और साथ ही यह बात भी मैं आपसे कह दूं कि जो आदमी अपने स्व को नरक की यात्रा पर ले जाता है, वह दूसरे को नरक पहुंचा पाए, न पहुंचा पाए; खुद को पहुंचाने में जरूर सफल हो जाता है। और यह भी आपसे कह दूं कि जो आदमी अपने स्व को स्वर्ग ले जाने की यात्रा पर निकलता है, वह अपने को तो स्वर्ग पहुंचाता ही है, उसकी सुगंध दूसरों को भी छूती है और स्वर्ग के रास्ते पर दीया बन जाती है।
यह भी आपसे मैं कहना चाहूंगा कि जिस आदमी के जीवन में स्व की पूर्ति नहीं हुई, उसके जीवन में सेवा कभी नहीं हो सकती। सर्विस अबॅव सेल्फ जैसी चीज नहीं है। बल्कि फुलफिल्ड सेल्फ बिकम सर्विस, जितना ही तृप्त हो जाता है स्वार्थ; उतना ओवरफ्लो होकर सर्विस बन जाता है, सेवा बन जाता है।
सेवा जो है, ओवरफ्लोइंग, आप वही दे सकेंगे दूसरे को, जो आपके पास जरूरत
से ज्यादा हो जाए। चाहे आनंद, चाहे प्रेम, चाहे धन, जो भी आप दे सकेंगे दूसरे को, वह ओवरफ्लोइंग होगी। और इसलिए ध्यान रहे, जब भी कोई ओवरफ्लोइंग से सेवा को उपलब्ध होता है, तो जो उससे सेवा ले लेता है, वह उसका ग्रेटिट्यूड मानता है। क्योंकि उसकी ओवरफ्लोइंग को झेलने के लिए कोई रास्ता चाहिए, कोई मार्ग चाहिए।
लेकिन जो आदमी कहता है, मैंने आपकी सेवा की, इसलिए आप मेरे प्रति ग्रेसफुल हों। यह आदमी, सेवा का इसे पता ही नहीं। सेवा करने वाला तो आपके प्रति... जिसने सेवा ली अनुगृहीत होगा। क्योंकि आपने उसकी ओवरफ्लोइंग के लिए रास्ता दिया। उसके भीतर कुछ भर गया था, जैसे आकाश में बादल भर जाते हैं, तो बरसना चाहते हैं। और जो जमीन उनकी बूंदों को पी जाती है, उसके प्रति अनुगृहीत होते हैं। और फूल जब पूरा हो जाता है, तो खिलता है और सुगंध उसकी फैलना चाहती है। और जो हवाएं उसकी सुगंध को दूर-दिगंत तक ले जाती हैं, उनका अनुगृहीत होता है। और दिया जब जलता है तो, प्रकाश फैलता है। यह दीया किसी को देता नहीं, यह दीये के पास ज्यादा होने से बिखरता है।

असल में फुलफिल सेल्फ, जिसका स्व भर जाता है वह सेवा में रूपांतरित होता है। और अगर स्व इतना भर जाए कि सेवा अनंत तक पहुंचने लगे, तो स्व छोटा एस न रह कर, बड़ा एस हो जाता है, कैपिटल एस हो जाता है। उस क्षण पर कोई ऋषि कह पाता है, अहं ब्रह्मास्मि! वह यह कह पाता है कि मैं ही ब्रह्म हूं! वह यह कह पाता है कि नाउ दि स्माल सेल्फ इ.ज दि सुप्रीम सेल्फ। अब वह यह कह पाता है कि मैं ही सब हूं।
ध्यान रहे, जब हम कहते हैं कि सेवा को ऊपर रखें स्वयं के, तब तक हम दूसरा दूसरा है, इसे मानते ही हैं। दि अदर इ.ज अदर। और जब तक दूसरा दूसरा है, तब तक दुश्मन है। तब तक मित्र हो नहीं सकता। दि अदरनेस इ.ज दि एनिमिटी। वह जो दूसरापन है, वही दुश्मनी है। जब तक मैं कहूंगा कि मैं सेवा करता हूं, तब तक कोई और भी है जिसकी मैं सेवा करता हूं। और कोई है जो सेवा करता है। असल में सेवा के महत्वपूर्ण क्षण में, कोई दूसरा नहीं रह जाता, तभी सेवा संभव हो पाती है।
एक मां सेवा कर पाती है अपने बेटे की। इसलिए नहीं कि बेटा दूसरा है। जिस दिन बेटा दूसरा हो जाता है उसी दिन मां कलह करती है, फिर सेवा नहीं करती। जब तक बेटा उसे अपना एक्सटेंशन मालूम होता है, लगता है मेरा ही फैलाव है, मेरे ही हाथ-पैर बड़े हो गए, मेरा ही शरीर और आगे विकसित हो गया है, यह मैंने ही फिर से जन्म लिया है, मैं ही हूं उसमें पुनर्जन्म होकर, मेरे लिए सिर्फ दर्पण की तरह वह बन गया--तब तक मां सेवा कर पाती है। तब तक मां सेवा दूसरे की नहीं कर रही है; अगर हम ठीक से कहें तो अपनी ही कर रही है। जिन्होंने भी सेवा की है अपनी ही की है। हां, उनका अपनापन बहुत बड़ा है। वह अपनापन इतना बड़ा है कि उसमें दूसरे खो जाते हैं और विलीन हो जाते हैं। जीसस का एक वचन है, वह आपने सुना होगा। ए लव दाई नेबर ए.ज दाई सेल्फ। अपने पड़ोसी को अपने जैसा प्रेम करो। लेकिन अपने जैसा अपने पड़ोसी को कोई तब तक प्रेम नहीं कर सकता, जब तक पड़ोसी मिट न जाए, और अपना ही शेष न रह जाए। जब तक नेबर मौजूद है, जब तक प्रेम अपने जैसा नहीं हो सकता। नो वन कैन लव हिज नेबर, ए.ज दाई सेल्फ, ए.ज वन्स ऑन सेल्फ। जब नेबर मिट जाए, बचे ही न, मैं ही वहां भी दिखाई पड़ने लगूं, तभी मैं सेवा कर सकता हूं, अपने जैसी।
लेकिन यह जो सिद्धांत कि हम सेवा को स्वार्थ के ऊपर रखें, एक और खतरे में ले गया। इसने सेवा को पैदा नहीं किया, सिर्फ पाखंड और हिपोक्रेसी को पैदा किया। हम रख तो नहीं सकते स्वयं के ऊपर सेवा को, लेकिन दिखला सकते हैं। रख तो नहीं सकते, लेकिन एक तरह की शक्ल बना सकते हैं कि रखी हमने। रख तो नहीं सकते, लेकिन धोखा दे सकते हैं, डिसेप्शन कर सकते हैं। और डिसेप्शन चला है।
दस हजार साल की मनुष्य-जाति की संस्कृति बड़ी धोखे की संस्कृति है। उसके बुनियादी धोखे के ढांचों में एक सिद्धांत यह भी काम करता रहा कि स्वार्थ के ऊपर रखो दूसरे को, सेवा को। लेकिन यह संभव ही नहीं, यह संभव नहीं है। यह मनुष्य की प्रकृति के ही लिए संभव नहीं है। यह असंभावना है। आप कैसे दूसरे को रखेंगे?
मैंने एक छोटी सी मजाक सुनी है। मैंने सुना है कि एक पिता अपने बेटे
को समझा रहा है कि दूसरे की सेवा करनी चाहिए। बेटा पूछता है, क्यों? उसके पिता ने कहाः परमात्मा ने तुम्हें पैदा ही इसलिए किया है कि तुम दूसरे की सेवा करो। वह पुराने जमाने का बेटा होता तो राजी हो जाता। वह नये जमाने का बेटा था। उसने कहा, यह तो मैं समझ गया कि मुझे परमात्मा ने दूसरों की सेवा के लिए पैदा किया, अब मैं यह और जानना चाहता हूं कि दूसरों को किसलिए पैदा किया? सिर्फ इसीलिए कि मैं उनकी सेवा करूं। या दूसरों को इसलिए पैदा किया है कि वे मेरी सेवा करें? और मुझे इसलिए पैदा किया है कि मैं दूसरों की सेवा करूं। तब परमात्मा का दिमाग बहुत कंफ्यूज्ड मालूम पड़ता है। उस बेटे ने कहा इससे तो बेहतर है, मैं अपनी कर लूं, और दूसरा अपनी कर ले। इस उपद्रव में, इतने जाल में डालने की जरूरत नहीं है। मैं कह रहा हूं कि यह मजाक है। लेकिन कई बार मजाक जिंदगी के बड़े सत्य होते हैं, और जिंदगी के बड़े सत्य बिल्कुल मजाक होते हैं।

ऐसा ही है। आप सोचें, तो आप नहीं पा सकेंगे कि आप किस भांति दूसरे को अपने से ऊपर रख सकते हैं, कोई उपाय नहीं है। वह साइकोलॉजिकली असंभव है। आप दूसरे को अपने से ऊपर रख नहीं सकते। हां, एक ही हालत में रख सकते हैं कि दूसरा दूसरा न रह जाए। लेकिन तब आप ही रह जाते हैं। तब दूसरा नहीं बचता। और सेवा जिसे हम कहते हैं, तो वह सेवा अगर दूसरे को ऊपर रखने की असंभव चेष्टा से पैदा हुई, तो वह सेवा ईगो सेंटर्ड हो जाएगी। वह अहंकार की पूर्ति करेगी। इसलिए सेवकों से ज्यादा अहंकारी आदमी, ईगोइस्ट आदमी खोजने मुश्किल हैं। सेवा भी इस दम्भ को, इस अहंकार को मजबूत करती है कि मैं सेवक हूं। सेवक को तो मिट जाना चाहिए। उसे पता भी नहीं होना चाहिए कि मैं हूं भी। उसे तो पता भी नहीं चलना चाहिए कि मैंने सेवा की। सर्विस दैट बिकम्स कांशस ऑफ हिमसेल्फ, सर्विस नहीं रह जाती। सेवा नहीं रह जाती। जो सेवा जाग कर कहने लगे कि मैं सेवा हूं, वह सेवा नहीं रह गई। और जो विनम्रता, जो ह्युमेलिटी कहने लगे कि मैं विनम्र हूं, वह अहंकार का ही एक रूप हो गया। जिंदगी बहुत जटिल है, यहां सेवा तभी संभव हो पाती है, जब हम दूसरे को अपने ऊपर रखने की कोशिश छोड़ दें। अपने को फैलाने की कोशिश करें। और मैं कह रहा हूं, दो उपाय हैं। एक उपाय तो यह है कि हम दूसरे की सेवा करें। और दूसरे की सेवा हम सिर्फ हिपोक्रेसी कर सकते हैं। हम सिर्फ पाखंड पैदा कर सकते हैं। इसलिए दुनिया में सेवा चल रही है और कोई दुखों का अंत नहीं हुआ। दुनिया में सेवा चल रही है और सेवा की जरूरतों का कोई अंत नहीं हुआ। दुनिया में सेवा चल रही है और दुनिया अपने दुखों में और गहरी होती चली जाती है।
बल्कि सच तो यह है, जितनी दुनिया में सेवा बढ़ती है, उतने उपद्रव बढ़ते चले जाते हैं।
राजनैतिक नेता भी सेवा करता है। धर्मगुरु भी सेवा करता है। शिक्षक भी सेवा करता है। सैनिक भी सेवा करता है। डाक्टर भी सेवा करता है। वकील भी सेवा करता है। सब सेवा कर रहे हैं, सब की। और आदमी की ऐसी हालत कर दी है कि वह कितने दिन जिंदा रहे इन सेवकों के बीच में, यह कहना बहुत मुश्किल है कि आदमी बच भी सकेगा इतने सेवकों के साथ। इतनी सर्विस चल रही है कि यह सुसाइडल हो गई है। इसके पीछे कुछ कारण हैं और एक बड़ा पाखंड पैदा हुआ। क्योंकि जब भी हम कोई असंभव चीज करने लगते हैं, तो हिपोक्रेसी पैदा होती है। असंभव को पैदा करने से हिपोक्रेसी पैदा होती है। जो हो सकता है वह करने से तो जीवन विकसित होता है। जो नहीं हो सकता उसका दिखावा करने से जीवन पाखंडी और झूठा होता चला जाता है। इसे मैं कुछ असंभव बातों में से एक मानता हूं। यह नहीं हो सकेगा।
संभव क्या हो सकता है? संभव बिल्कुल दूसरी बात हो सकती है। संभव यह नहीं है कि मैं दूसरे की सेवा करूं। संभव यह है कि मैं बड़ा होऊं, मैं फैलूं, मैं इतना फैलूं और इतना बड़ा हो जाऊं कि दूसरे के लिए जगह न रह जाए। दूसरा बचे न। दूसरे का उपाय न रहे। तब भी एक सेवा जीवन में आएगी, वही सेवा है। लेकिन वह सेवा छाया की तरह आएगी आपके पीछे; आपके आगे झुंड की तरह नहीं चलेगी। आप घोषणा करते हुए नहीं चलेंगे कि मैं सेवक हूं। वह छाया की तरह आएगी, उसकी पग ध्वनि भी सुनाई नहीं पड़ेगी।
मैंने सुना है, यूनान में एक फकीर ज्ञान को उपलब्ध हुआ। तो कहानी है
कि देवताओं ने आकर उससे कहा कि तुम कोई वरदान मांग लो। परमात्मा बहुत प्रसन्न हैं। और तुम जो चाहो करने को राजी हैं। उस फकीर ने कहाः लेकिन अब तो मुझे कोई चाह न बची। परमात्मा बड़ी देर से राजी हुआ। जब मेरी चाहें थीं, तब तुम आए नहीं। अब मेरी कोई चाह न बची, अब तुम आए हो, अब मैं क्या मांगूं? अब तुमने मुझे मुश्किल में डाल दिया। अब मेरे पास मांग ही नहीं बची, तो तुम वापस लौट जाओ और परमात्मा को कहना कि अब तो मांगने वाला भी नहीं बचा, मांग भी नहीं बची, बड़ी देर से मैसेंजर्स भेजे। थोड़ी जल्दी भेजते तो बहुत मांगें भी थीं, मांगने वाला भी था। लेकिन वे देवता नहीं माने।
जिस आदमी की मांग खत्म हो जाए, उसे दुनिया बहुत कुछ देना चाहती है, परमात्मा भी देना चाहता है। असल में भिखारियों को कभी कुछ नहीं मिलता, सिर्फ सम्राटों को ही मिलता है। जीसस का एक वचन हैः जिनके पास थोड़ा बहुत

है, उनसे और भी छीन लिया जाएगा। और जिनके पास बहुत है, उन्हें और दे दिया जाएगा। उलटा ही वचन है। लेकिन जिंदगी में बड़े गणित उलटे हैं।
देवता नहीं माने। और उस फकीर से कहाः कुछ तो मांगना ही पड़ेगा। उस फकीर
ने कहाः फिर तुम ही दे दो, जो तुम्हें सूझे। उन्होंने कहा कि तुम जिस आदमी को छुओगे, अगर वह बीमार है तो स्वस्थ हो जाएगा। और अगर मुर्दा है तो जिंदा हो जाएगा। तुम अगर फूल को छू दोगे तो कुम्हलाया फूल फिर से खिल जाएगा। उस फकीर ने कहाः लेकिन यह तो बड़ा खतरनाक मामला है, यह मेरी आंख के सामने ही होगा कि मेरे हाथ के छूने से वह मरीज ठीक होगा, तो मरीज तो ठीक हो जाएगा, मैं मरीज हो जाऊंगा। उन देवताओं ने कहाः मतलब नहीं समझे। उस फकीर ने कहाः मुझे तो दिखाई पड़ जाएगा कि मैंने मरीज को ठीक किया, मेरे द्वारा मरीज ठीक हो गया, तो मरीज की तो छोटी सी बीमारी मिटेगी और मुझे महा भयंकर बीमारी पकड़ लेगी--मैं की, ईगो की। मेरी कृपा करो, यह ऐसा वरदान मत दो। पर उन्होंने कहाः दिए हुए वरदान वापस नहीं लिए जा सकते। तो उस फकीर ने कहाः इस तरह से दो कि मुझे पता न चले, कि मुझसे कोई सेवा हुई। क्योंकि जो सेवा पता चल जाती है, वह जहर हो जाती है, पाय.जनस हो जाती है। तो देवता बड़ी मुश्किल में पड़े, फिर आखिर उन्होंने रास्ता खोज लिया। उन्होंने कहा कि तुम्हें जो वरदान दिया वह हम तुमसे लिए लेते हैं और तुम्हारी छाया को दिए देते हैं। तुम जहां से गुजरोगे, तुम्हारी छाया अगर कुम्हलाए फूल पर पड़ जाएगी तो फूल ठीक हो जाएगा। तुम्हारी छाया अगर मरीज पर पड़ जाएगी तो मरीज स्वस्थ हो जाएगा। तुम्हारी छाया अगर मुर्दे पर पड़ जाएगी तो मुर्दा जी जाएगा। उस फकीर ने कहा कि फिर ठीक है, मुझे एक वरदान और दे दो कि मेरी गर्दन पीछे की तरफ मुड़ना बंद हो जाए। अब मैं आगे की तरफ ही देखूं।
सेवा, सच में जिसे सर्विस कहें वह, वह अहंकार के ऊपर रखने से नहीं आती।
वह अहंकार को पोंछ डालने से आती है। मगर अहंकार को पोंछ डालने का क्या मतलब? क्या अहंकार को हम काट डालें? काटेंगे तो न काट पाएंगे। क्योंकि कौन काटेगा? किसे काटेगा? नहीं, अहंकार को मिटाने का काटना कोई रास्ता नहीं। बहुत लोग काटने में लग जाते हैं। धन छोड़ देते हैं, पद छोड़ देते हैं। महल छोड़ देते हैं, सब छोड़ कर नंगे खड़े हो जाते हैं। वह अहंकार बहुत कुशल है। -- अस्पष्ट.वह एक नंगेपन में ही कहता है कि मैंने सब छोड़ दिया। मुझसे बड़ा त्यागी और कोई भी नहीं है। वह वहां भी खड़ा हो जाता है। वह पीछा नहीं छोड़ता। आप अगर काटेंगे उसको, तो वह कहेगा मैं ही तो काट रहा हूं।
नहीं, अहंकार को मिटाने का एक ही रास्ता है। और वह रास्ता है कि अहंकार इतना बड़ा हो जाए कि उसके अतिरिक्त और कुछ शेष न रहे। वह फैलता जाए। उसमें धीरे-धीरे दूसरों की सीमाएं टूटती चली जाएं। धीरे-धीरे दूसरा मिटता चला जाए और मैं ही रह जाऊं। जिस दिन व्यक्ति अकेला ही रह जाता है, व्हेन दि सेल्फ इ.ज दि ओनली रियलिटी, जब कि सेल्फ ही रह जाता है, न कोई सर्विस रह जाती है, न दि अदर रह जाता है, दूसरा नहीं रह जाता। उस दिन, उस दिन उस स्व से सेवा ऐसे ही बहती है जैसे दीये से रोशनी बहती है, और फूलों से सुगंध बहती है, और आकाश के बादलों से वर्षा झरती है। फिर ऐसे ही बहती है।
फुलफिल सेल्फ बिकम सर्विस। टोटल सेल्फ बिकम सर्विस। सुप्रीम सेल्फ बिकम सर्विस। लेकिन यह सिद्धांत बड़ा समझने जैसा है। क्योंकि आदमी ने ऐसा ही अब तक माना है कि हम अपने ऊपर सेवा को रखें। हम क्या करेंगे? एक आदमी हजार रुपये कमाएगा, पांच रुपये में सेवा कर देगा। असल में यह आदमी हजार रुपये कमा कर सिर्फ हजार रुपये ही नहीं कमाना चाहता, पांच रुपये में सेवा का सर्टिफिकेट भी कमा लेता है। यह आदमी कुशल है। यह आदमी होशियार है। कहना चाहिए चालाक है, कनिंग। यह आदमी गणित जानता है, कैल्कुलेटिंग। यह आदमी कहता है कि पांच रुपये में सेवा मिलती हो तो उसको भी छोड़ना ठीक नहीं है। उसको भी खरीद लेता है। इस आदमी के, इस आदमी के मन में मैं ही केंद्र है। सेवा झंडे की तरह आगे चलेगी। और जहां सेवा झंडा बन जाती है, इट बिकम्स मिस्टीरियस, वहीं उपद्रव शुरू हो जाता है।
और सेवकों ने जितना उपद्रव किया, उतना किसी और ने नहीं किया। अगर एक दिन भर के लिए, चौबीस घंटे के लिए, दुनिया के सेवक विश्राम को उपलब्ध हो जाएं, हॉलिडे पर चले जाएं, तो आप पाएंगे दुनिया में वियतनाम बंद, क्योंकि

वह सेवा करने वाले करवा रहे थे। आप पाएंगे चीन में, चीन में हत्याएं बंद, क्योंकि वह सांस्कृतिक क्रांति करके जो चीन की सेवा कर रहे हैं, वह करवा रहे थे। आप पाएंगे हिंदू-मुस्लिम दंगा बंद, चौबीस घंटे के लिए। क्योंकि कोई मुसलमान धर्म की सेवा कर रहा है, कोई हिंदू धर्म की सेवा कर रहा है। कभी भगवान ऐसा करे कि चौबीस घंटे के लिए सेवकों को छुट्टी पर भेज दें, सिर्फ चौबीस घंटे के लिए छुट्टी हो जाए फिर आप दुबारा सेवकों को वापस न आने देंगे। आप कहेंगे माफ करिए। आपके बिना चौबीस घंटे इतनी शांति में बीते, कि अब दुबारा आप मत आइए।
मैंने सुना है, मार्क ट्वेन एक मजाक किया करता था। वह कहता था कि एक बार ऐसा हुआ कि सारी दुनिया के लोगों को खयाल तो बहुत दिनों से है कि चांद पर आदमी होंगे, लेकिन कोई उपाय न था। उपाय तो अब हुआ। मार्क ट्वेन के मर जाने के बाद हुआ। मार्क ट्वेन ने कहा कि आदमी बहुत दिन से सोचता था कि चांद पर जरूर आदमी होंगे, लेकिन संदेश कैसे भेजा जाए? बात कैसे की जाए? तो सारी दुनिया के लोगों ने एक दिन तय किया, मुकर्रर किया कि फलां दिन ठीक बारह बजे दोपहर सारी दुनिया के लोग जोर से बू की आवाज करेंगे एक साथ। एक मिनट के लिए सारी दुनिया बू की आवाज से भर जाए। तो इतनी सारी दुनिया चिल्लाएगी तो चांद तक आवाज चली जाएगी। अगर लोग होंगे तो कुछ न कुछ उत्तर जरूर देंगे। दिन आ गया। लोग रास्तों पर खड़े हो गए, छतों पर, पहाड़ों पर जहां जो खड़ा हो सकता था, सारी जमीन पर लोग खड़े हो गए। ठीक ऐन वक्त पर मंदिरों, गिरिजों के घंटे बजे, सारी दुनिया में बू की आवाज का वक्त आ गया। लेकिन एक मिनट के लिए एकदम सन्नाटा छा गया। किसी ने आवाज नहीं लगाई। क्योंकि हर आदमी ने सोचा कि इतना बड़ा मौका मैं चूकूं न, इतनी बड़ी आवाज मैं भी सुन लूं, मैं लगाने में लग गया तो मैं नहीं सुन पाऊंगा। और जब सारी दुनिया चिल्ला रही है, तो एक आदमी के न चिल्लाने से क्या फर्क पड़ेगा? यह बू की आवाज मैं भी तो सुन लूं, जिसको चांद के लोग सुनेंगे, कितनी भयंकर है? सारे लोगों ने यही सोचा। एक सेकेंड के लिए, एक मिनट के लिए सारी दुनिया में सन्नाटा हो गया। और पहली दफा आदमियों ने पाया कि हम व्यर्थ की बातें करके इतनी अपूर्व शांति को गंवा रहे हैं। लेकिन पता नहीं यह कहानी कितनी पुरानी है। क्योंकि आदमी फिर भूल गया, फिर किसी दिन बू की आवाज करने की जरूरत... ।
सेवकों को अगर चौबीस घंटे की छुट्टी दे दी जाए, तो आदमी को पहली दफा पता चलेगा कि उसके उपद्रवों का निन्यानवे प्रतिशत, सेवा से आ रहा है। असल में सेवा, जब कोई करने जाता है तो, उपद्रव होगा ही। सेवा होनी चाहिए, करने नहीं जाना चाहिए। सेवा निकलनी चाहिए। वह आपका कृत्य नहीं हो सकता। सर्विस कैन नॉट बी एन एक्ट, इट मस्ट बी लिविंग। वह जीवन होना चाहिए, वह कृत्य नहीं होगा।
और जो आदमी सेवा का एक कृत्य करेगा, वह दिन भर में पचास कृत्य सेवा को खंडित करने के लिए करेगा। लेकिन जो आदमी सेवा को जीएगा, वह आदमी सेवा के विपरीत कुछ भी नहीं कर सकेगा।
लेकिन सेवा जीवन कब होगी?
सेवा जीवन तब होगी, व्हेन सर्विस बिकम्स बी सेल्फ, जब कि सेवा ही स्व
हो जाएगी। या स्व ही सेवा हो जाएगा। उसके पहले जीवन नहीं बन सकती। हां, हम अपने जीवन को स्व बनाए रख सकते हैं। और हम कभी चौबीस घंटे में एकाध काम सेवा का कर सकते हैं।
मैंने एक कहानी सुनी है। एक स्कूल में एक पादरी ने जाकर बच्चों को समझाया कि कम से कम चौबीस घंटे में एक काम सेवा का जरूर करना चाहिए। यही परमात्मा के प्रति सबसे बड़ा कर्तव्य है। सात दिन बाद वह वापस आकर उसने पूछा उन बच्चों से, तुमने कोई सेवा का कार्य किया? तो एक बच्चे ने हाथ हिलाया। फिर दूसरे ने, फिर तीसरे ने, तीस बच्चों में तीन ने हाथ हिलाए। उस पादरी ने कहा, इतना भी बहुत है कि तीन लोग मान गए, क्योंकि पृथ्वी को अनंतकाल चलते हुए हो गया, इतने प्रतिशत भी कोई मानने को राजी नहीं होता सेवा की बात। मैं तुमसे पूछना चाहता हूं, तुमने सेवा क्या की? तो पहले लड़के ने कहा कि आपने बताया था, वैसी ही हमने सेवा की, बूढ़ी स्त्री को रास्ता पार करवाया।

उसने बताया था, कोई बूढ़ी स्त्री को रास्ता पार करवा दो, कोई डूबता हो बचा लो, कहीं आग लगी हो बुझाने दौड़ जाओ।
उसने कहाः बहुत अच्छा किया, शाबाश, भगवान की कृपा तुम्हारे ऊपर बरसेगी। फिर दूसरे से पूछा, उसने कहाः मैंने भी एक बूढ़ी औरत को रास्ता पार करवाया। तब उस पादरी को थोड़ा शक हुआ, लेकिन बूढ़ी औरतों की कोई कमी नहीं है, उसने सोचा कि हो सकता है इसे भी कोई बूढ़ी औरत मिल गई हो। रास्तों की भी कमी नहीं है।
उसने तीसरे से पूछा, उसने कहाः मैंने भी एक बूढ़ी औरत को रास्ता पार करवाया। तब जरा शक ज्यादा हुआ। उसने कहा कि तुम तीनों को तीन बुढ़ियां मिल गईं? उन्होंने कहाः नहीं, तीन बूढ़ियां नहीं थीं, बूढ़ी तो एक ही थी, हम तीनों ने मिल कर पार करवाया। तो उस पादरी ने कहा कि क्या बूढ़ी इतनी अशक्त थी कि तुम तीनों को सहयोग करना पड़ा पार करवाने के लिए? उन्होंने कहाः अशक्त! बूढ़ी बड़ी मजबूत थी, उस तरफ जाना ही न चाहती थी, हम बामुश्किल उस पार पहुंचा पाए। वह इस तरफ भागती थी, हमने उस पार किया। पर आपने कहा था कि कोई सेवा का काम करना चाहिए, तो हम करके आ गए।
सेवा का काम अगर कोई करने का तय कर ले, तब सेवा भी प्रोफेशन हो जाती है। तब वह भी एक धंधा हो जाती है। सेवा धंधा नहीं हो सकती। कोई आदमी सेवा का काम नहीं कर सकता। हां, कोई आदमी सेवा की जिंदगी जी सकता है। लेकिन यह जिंदगी भी तभी जी सकता है, जब दूसरा गिर जाए और मैं फैल जाए। मैं इतना बड़ा हो जाए कि कोई बचे ही न, जिसे मैं कह सकूं कि तुम्हारी सेवा कर रहा हूं। अपनी ही सेवा हो जाए। हम अपनी ही सेवा कर सकते हैं। वही सहज, वही स्वाभाविक है। हम अपने को बड़ा कर सकते हैं, वह भी सहज और स्वाभाविक है। यह मैं का बड़ा हो जाना ही, अंततः मैं का मिट जाना बन जाता है। मैं अगर इतना बड़ा हो जाए कि तू बाहर न बचे, तो फिर तू नहीं रहता। और जिस दिन तू नहीं रहता, उस दिन मैं भी बच नहीं सकता, क्योंकि वह रिलेटिड टर्म है। वह तू के साथ ही बचती है। वह मैं, तू के साथ ही गिर जाता है।
यह बात मैंने कही, यह बात मैंने इसीलिए कही... आपको अब थोड़ी और कठिनाई देना चाहूंगा। सर्विस अबॅव सेल्फ हो सके, इसीलिए मैंने यह बात कही। यह बात मैंने इसीलिए कही कि सेवा स्वयं के ऊपर हो सके। लेकिन कही तो पूरी खिलाफ में। कहा तो मैंने पूरा विरोध। कहा तो मैंने यह कि सेवा स्वयं के ऊपर हो नहीं सकती। हां, स्वयं ही इतना फैल जाए कि जीवन सेवा हो जाए। कहा तो मैंने पूरे समय विरोध में। लेकिन कहा पूरे समय पक्ष में और जिंदगी ऐसी ही है। यहां जरूरी नहीं है कि जो पक्ष में बोल रहे हों, वह पक्ष में बोल रहे हैं। और यहां जरूरी नहीं है कि जो विपक्ष में बोल रहे हैं, वह विपक्ष में बोल रहे हैं।
यहां बहुत बार जरूरत पड़ जाती है कि हमारे माने हुए सिद्धांतों को धक्का दिया जाए, तभी उनकी आत्मा और उनके प्राण हमारे समझ में आ पाते हैं। यहां जरूरत पड़ जाती है कि पुराने ढांचे को तोड़ा जाए, तभी उनके भीतर छिपा हुआ व्यक्तित्व प्रकट हो पाता है। सर्विस अबॅव सेल्फ वह हमारे लिए सूत्र रट गया। उसे हम जगह-जगह लिख कर टांग देंगे। उससे हमारे मस्तिष्क में कहीं कुछ भी नहीं होता। वह मर गया। उसे हमने इतनी बार सुन लिया कि अब उसमें कोई प्राण नहीं हैं।
महान सत्य भी बार-बार सुने जाने पर असत्य से बदतर हो जाते हैं। क्योंकि उनमें कोई दंश नहीं रह जाता। उनमें कोई कांटा नहीं रह जाता। उनमें कोई चुभन नहीं रह जाती। इसलिए बार-बार महासत्यों को भी तोड़ कर पुनः निर्मित करना होता है। उन्हें भी फिर से बिखेर कर अलग-अलग करके फिर से जमाना होता है।
मैंने वही कहा जो सर्विस अबॅव सेल्फ सूत्र लिखने वाले आदमी ने कहना चाहा होगा। लेकिन मैंने वह नहीं कहा जो आप समझते हैं। मैंने वही कहा जो इस सूत्र को निर्माण करने वाले की आकांक्षा, अभीप्सा, एंबीशन रही होगी।
लेकिन शब्द बड़े कमजोर हैं। और सत्यों को प्रकट नहीं कर पाते।

और जब भी कोई खास शब्द सत्यों के आस-पास जड़ जमा कर बैठ जाते हैं, तो धीरे-धीरे सत्य तो खो जाता है, शब्द ही हमारे हाथ में रह जाते हैं। वे हमारे हाथ में रह गए हैं। मैंने दूसरी तरफ से यात्रा की।
मैंने आपसे कहा, सर्विस पर जोर देना छोड़ दें। बहुत जोर दिया जा चुका, आदमी उससे फायदे में नहीं पहुंचा। अब तो सेल्फ को जोर दें। ऐसा नहीं है कि जो मैं कह रहा हूं वह कल असत्य नहीं हो जाएगा। अगर कुछ संस्थाएं बन जाएं और वहां तख्तियां लगा लें और वहां जो मैंने कहा वह लिख दें, तो थोड़े दिन में वे सत्य भी इतने ही पुराने और जराजीर्ण हो जाएंगे। उन पर भी धूल जम जाएगी। और हम सुनते-सुनते उनके आदी हो जाएंगे।
आदमी की सबसे बड़ी कठिनाई यही है कि वह हर चीज को पचा लेता है। सुनने का आदी हो जाता है। और जब एक बार आदी हो जाता है, तो फिर सो जाता है। फिर वह करवट लेकर आराम करने लगता है। और जरूरत इस बात की है कि आपकी करवट को बार-बार तोड़ा जाए।
तो अक्सर मेरे जैसे लोगों को यही काम करना पड़ता है कि मुझसे पहले जो आपको बाईं करवट कर गया, मुझे आकर आपको दाईंर्ं करवट करना पड़ता है। हालांकि लगता है कि मैं उलटा काम कर रहा हूं। जो बाईं कर गया था, मैं दायां कर रहा हूं। लेकिन जिसने आपको बायां किया था, उसने भी नींद तोड़नी चाही थी आपकी, और मैं भी आपकी ही नींद ही तोड़ रहा हूं दाईं करके। अब आप बाईं में आश्वस्त हो गए हैं और सो गए हैं।
मेरे पीछे कोई आएगा, हो सकता है वह फिर आपको बायां कर दे। आदमी को जिंदगी भर रिसफल करने की जरूरत है, वह बार-बार सो जाता है और अपनी नींद में फिर सपने देखने लगता है। हम सब अच्छे सत्यों का तकिया बना लेते हैं और आराम पर चले जाते हैं। सर्विस अबॅव सेल्फ हमारा एक तकिया है, जिस पर हम सिर रख कर सो गए हैं। सारे लोग मानते हैं।
और ध्यान रहे, जब सारे लोग किसी सत्य को मान लेते हैं, तो समझ लेना अब
उस सत्य में जगाने की सामर्थ्य नहीं रही, नहीं तो सारे लोग नहीं मान सकते। जब तक सत्य जगाता है तब तक सारे लोग कभी नहीं मानते। जब सत्य को भी वे तकिया बना कर सो जाते हैं, तब सारे लोग मान लेते हैं।
इसलिए जो बहुत ऑब्विअस ट्रस्ट हैं, वे अक्सर जो बहुत प्रकट में दिखाई पड़ता है कि सत्य है, वह किसी सत्य की मरी हुई लाश होती है। जिसने कभी यह कहा था कि स्वयं के ऊपर रखो सेवा को, उसका मतलब? उसका मतलब बहुत और रहा होगा। उसका यह मतलब नहीं रहा होगा जो हम लेते रहे हैं कि हम स्वयं के ऊपर थोड़े से सेवा के कार्य करते चले जाएं।
नहीं, उसका मतलब वही है जो मैंने कहा। जो मैंने कहा उसका वही मतलब कि सेवा हमारी जिंदगी बन जाए। सेवा हमारा सेल्फ बन जाए। हम सेवा हो जाएं। और जिस दिन सेवा आप हो जाएंगे, उस दिन आपको पता भी नहीं चलेगा कि आपने सेवा की है। अगर किसी मां को पूछें, तुमने अपने बेटे की कितनी सेवा की? तो बता नहीं पाएगी।
हां, यह जरूर बता पाएगी कि कौन-कौन सी सेवाएं नहीं कर पाई। बता सकेगी
कि ठीक कपड़े नहीं दे पाई। ठीक खाना नहीं दे पाई। ठीक शिक्षा नहीं दे पाई। बता पाएगी क्या-क्या नहीं कर पाई है। लेकिन फेहरिस्त नहीं बना सकेगी, जो कर पाई उसकी। लेकिन किसी संस्था के सेक्रेटरी को पूछें कि साल भर में आपने कितनी सेवाएं की हैं? तो जो उसने नहीं की हैं, वह भी फेहरिस्त में सब जुड़ी होती हैं।
संस्था का सेक्रेटरी सेवा करता है; मां से सेवा होती है। एक नर्स बता सकती है, उसने कितनी सेवा की है; एक मां नहीं बता सकती। और जिस दिन मां बता दे तो समझना कि उसने सिर्फ नर्स का काम किया है, मां के धोखे में रही।
ये थोड़ी सी बातें मैंने कहीं। सेवा के खिलाफ बहुत सी बातें कहीं, ताकि सेवा पैदा हो सके। सेवा के विरोध में कुछ बातें कहीं, ताकि आपकी जिंदगी में सेवा का फूल लग सके। लेकिन सेवक का कांटा मत लगा देना। सेवक का तो कांटा होता है; सेवा का फूल होता है। सेवक मत बन जाना। सेवक बने कि उपद्रव शुरू हो गया। जिंदगी सहज सेवा होनी चाहिए।

झरने बहते हैं, और नहीं कहते किसी से कि तुमने पानी पिया तो हमने बड़ी सेवा की। सूरज से रोशनी झरती है, नहीं कहता किसी से कि तुम पर बड़ी कृपा की, तुम्हारे आंगन में रोशनी भेजी। और परमात्मा अनंत-अनंत जीवन को रचता चला जाता है, कभी हमने उसे धन्यवाद भी नहीं दिया। और कभी वह हमारे द्वार पर धन्यवाद लेने आया भी नहीं। शायद इसी डर से वह सदा छिपा रहता है कि कहीं मिल जाए, तो हम धन्यवाद न दे दें।
इतना अनंत... लेकिन वह परमात्मा सेवक अगर होता तो; अब तक बोर हो गया होता, थक गया होता, घबड़ा गया होता, पागल हो गया होता। अब तक पागलखाने में इलाज हो रहा होता। लेकिन वह सेवक नहीं है, वह सेवा है।
अगर आप सेवक बनें तो मुश्किल में पड़ेंगे। फिर सेवक होने की चिंता और एंजायटी पकड़ेगी। लेकिन अगर सेवा आपकी जिंदगी हो गई, तो आप चिंता के बाहर हो जाएंगे। और तब ऐसा नहीं है कि सेवा करने के लिए कोई बूढ़ी औरत को ही रास्ता पार कराना पड़ता। तब ऐसा भी नहीं है कि धन देकर ही सेवा करनी पड़ती है। तब ऐसा भी नहीं है कि किसी बीमार के पैर दबा कर ही सेवा करनी पड़ती है। तब आंख की पलक का हिलना भी सेवा बन जाताहै। जब मिलना हो तो किसी की तरफ मुस्कुरा देना ही सेवा बन जाती है।
ब्लावट्स्की हिंदुस्तान आई। तो अपनी गाड़ी में जहां भी चलती थी, झोले में हाथ डालती, कुछ बाहर फेंकती रहती। तो जो भी उसको मिलता वह पूछता, आप यह क्या फेंक रही हैं? तो वह कहती, यह मौसमी फूलों के बीज हैं। तो लोग कहते, आप पागल हो गई हैं, चलती ट्रेन से मौसमी फूल के बीज फेंकना पागलपन है? आप दुबारा कब निकलेंगी इस रास्ते से? वह कहती है कि शायद ही कभी निकलूं, क्योंकि जिंदगी का तो कल का भी भरोसा नहीं। यही रास्ते पर दुबारा आने का कैसे पक्का हो सकता है। तो वह कहते कि फिर पागल हो, फिर ये बीज किसलिए फेंके? तो ब्लावट्स्की कहती, कोई तो इस रास्ते से कभी न कभी निकलता रहेगा। और अगर किसी भी आंख में इन फूलों के सौंदर्य की छवि बनी, और अगर किसी भी नाक पर इन फूलों की गंध की थिरक हुई, और अगर कोई भी इन फूलों को देख कर मुस्कुरा लिया, तो मैं अभी ही तृप्त हो गई।
सेवा कृत्य नहीं है; वह सहज जीवन है। श्वास-श्वास सेवा बन जाती है।
बुद्ध की आखिरी घड़ी थी, और उन्होंने मरते क्षण मित्रों को पूछा कि कुछ
और पूछना हो तो पूछ लो। चिकित्सकों ने कहा है कि अब मत पूछो, उनसे बोलते भी नहीं बनता। लेकिन बुद्ध ने कहाः कोई यह न कहे कि अभी मैं कुछ बोल सकता था और किसी का प्रश्न था और वह बिना पूछे रह गया, मुझ पर ऐसा आरोप मत लगवा देना। अभी मेरी श्वास चलती थी और कोई प्यासा आया और प्यासा लौट गया। लेकिन मित्रों ने कहाः हम सब पूछ लिए जीवन भर, अब आप विदा हों, अब हमें कुछ भी नहीं पूछना है। बुद्ध वृक्ष के पीछे चले गए, उन्होंने आंख बंद कर ली, वे समाधिस्थ हो गए, तब एक आदमी गांव से भागा हुआ आया।
उस गांव से बुद्ध कई बार निकले थे। सुभद्र नाम के उस आदमी को कई बार लोगों ने कहा था, बुद्ध आए हैं, जाओ सुन आओ। लेकिन सुभद्र ने कहाः फिर कभी आएंगे तब सुन लूंगा, अभी तो ग्राहक बहुत हैं और दुकान चलती है। फिर बुद्ध कई बार निकले लेकिन सुभद्र को दुकान से फुरसत न मिली। आज उसे पता चला कि बुद्ध की आखिरी घड़ी है, वे मरण-शय्या पर हैं। तो वह दुकान बंद करके भागा हुआ आया। उसने भिक्षुओं से कहाः बुद्ध कहां हैं? मुझे कुछ पूछना है। तो उन्होंने कहाः बहुत देर हो गई। अब नहीं हो सकता। अब तो बुद्ध जा चुके विश्राम में, अंतिम निर्वाण में लीन होने। अब तो उनकी बूंद सागर में गिरने को है, अब नहीं पूछा जा सकता। बुद्ध यह सुने और उठ कर वापस बाहर आ गए। और उन्होंने कहा कि तुम मेरे ऊपर इलजाम मत लगवा देना कि मैं जीवित था और कोई प्यासा आया और प्यासा लौट गया। क्या पूछना है सुभद्र?
श्वास-श्वास, आंख की पलक का झपना भी, हाथ का उठना-गिरना भी, राह पर चलना भी, एक सत्य का मुंह से निकलना भी, मौन भी, सभी कुछ सेवा बन जाता है।
सेवक भर आप मत बनना।
और यह, यह कैसे संभव होगा? तो मैंने एक सूत्र कहा: इस स्व को फैलाएं। फैलाना कहना ठीक नहीं है, भाषा की भूल है। गलती है हमारी कि हम समझ रहे हैं कि यह स्व मेरे शरीर तक सीमित है। वह दस करोड़ मील दूर जो सूरज है, अगर वह

बुझ जाए तो मैं यहां ठंडा हो जाऊंगा, आप वहां ठंडे हो जाएंगे, हमको पता भी नहीं चलेगा कि सूरज बुझ गया। क्योंकि यह पता चलने के लिए भी तो जिंदगी चाहिए। सूरज बुझा कि हम बुझे। दस करोड़ मील दूर जो सूरज है, वह भी मेरा स्व है। उसके बिना मैं एक क्षण जी नहीं सकता।
और वह जो दस करोड़ मील दूर सूरज है वह भी, और करोड़ों मील दूर जो सूरज है उससे रोशनी लेता है, गर्मी लेता है--तो जीता है। यह जगत का जीवन समूह जीवन है। यहां मैं से बड़ी कोई भ्रांति कोई इलुजन नहीं है। यहां मैं का खयाल ही सबसे बड़ा पागलपन है। यहां हर लहर अपने को समझ रही है, मैं हूं, और लगता भी है।
क्योंकि जब लहर नाचती है मौज में, तो वह कैसे मान ले कि पड़ोस की लहर अलग नहीं है। पड़ोस की लहर अलग मालूम पड़ती है। पड़ोस की लहर गिर जाती है और मैं नहीं गिरता। पड़ोस की लहर उठती है ऊंची और मैं नहीं उठ पाता। तो लहर कैसे मान ले कि यह पड़ोस में हजारों लहरें जो हैं, यह भी मैं हूं। लेकिन अगर लहर थोड़ा भीतर झांके, तो उस सागर को पाएगी जो सब लहरों का प्राण है।
इस "मैं" के थोड़ा हम भीतर झांकें, तो वह सागर दिखाई पड़ता है। यहां स्व-
पर सब मिट जाते हैं और वही रह जाता है जो है। दैट व्हीच इ.ज। और उसके अनुभव से जिस जीवन का जन्म होता है उस जीवन का नाम सेवा है। वह सेवक का कृत्य नहीं, वह धार्मिक व्यक्ति के जीवन का नाम है।
ये थोड़ी बातें मैंने कहीं। मानने की कोई जरूरत नहीं। मैं आपका कोई सेवक नहीं हूं कि आपको समझाऊं और आप मानें। यह मेरा आनंद है। मुझे अच्छा लगा, मैंने आपसे कहा। सोचना, ठीक लगे ठीक, गलत लगे गलत। अगर कोई बात ठीक लग जाए, सोच लें आप, मेरे कहने से नहीं। अगर आपके सोचने से कोई बात सत्य मालूम पड़े, तो वह आपकी जिंदगी को बदलने का कारण हो जाएगी। जो सत्य हमारे सत्य हैं, वे हमें बिना बदले नहीं छोड़ते। और अंत में जो भी मैंने कहा, वह इसीलिए कहा कि सर्विस अबॅव सेल्फ, सेवा स्व के ऊपर संभव हो सके।

मेरी बातों को इतने प्रेम और शांति से सुना, उससे बहुत अनुगृहीत हूं।
और अंत में सबके भीतर बैठे परमात्मा को प्रणाम करता हूं। मेरे प्रणाम स्वीकार करें।

विज्ञान, धर्म और कला
चौथा प्रवचन

निर्विचार होने की कला

मेरे प्रिय आत्मन्!
धर्म के संबंध में थोड़ी सी बातें कहने को मुझे कहा गया। लेकिन सबसे बड़ी कठिनाई यह है कि धर्म के संबंध में कुछ भी कहना संभव नहीं। धर्म को जाना तो जा सकता है, कहा नहीं जा सकता। इसलिए एक बहुत विरोधाभासी बात आपसे कहना चाहूंगा सबसे पहले। और वह यह कि जो भी कहा जा सकता है वह धर्म नहीं होता; और जो धर्म है वह कहा नहीं जा सकता है। जीवन में जितनी गहरी अनुभूतियां हैं, वे कोई भी कही नहीं जा सकतीं। जीवन में जो बहुत क्षुद्र है, उस संबंध में ही हम बातचीत कर पाते हैं। जो गहरा है, वह बात के बाहर छूट जाता है।
रवींद्रनाथ मर रहे थे, मृत्यु की शय्या पर थे। उन्होंने अपने जीवन में छह हजार गीत लिखे हैं। और समझा जाता है कि दुनिया में किसी कवि ने इतने अदभुत और इतने ज्यादा गीत कभी नहीं लिखे। अंग्रेजी कवि शेली को महाकवि कहा जाता है, उसके केवल दो हजार गीत हैं। और रवींद्रनाथ के छह हजार गीत हैं। तो एक व्यक्ति उनसे मिलने आया था, उसने रवींद्रनाथ को कहा कि आप तो जो भी जीवन में पाना था पा लिए हैं; जो गाना था, गा लिए हैं; जो कहना था, कह चुके हैं। आप तो बड़ी शांति से विदा ले सकते हैं। तो रवींद्रनाथ रोने लगे, और रवींद्रनाथ ने कहा कि गलत कह रहे हैं, जो मुझे कहना था, अभी कहां कह पाया। जो मुझे गाना था, अभी कहां गा पाया। अभी तो केवल साज बिठा पाया था और जाने का समय आ गया। जो कहना था, वह भीतर ही रह गया। और परमात्मा से इधर मैं रोज कह रहा हूं कि यह क्या मजाक है? अब जब कि मैं कुछ कहने की चेष्टा करने में सफल हो रहा था, तब मुझे विदा होना पड़ रहा है।
तो उस आदमी ने पूछाः जो आपने गाया, इतने गीत लिखे? रवींद्रनाथ ने कहाः गाने के पहले सोचता था कि कुछ कह पाऊंगा, गाने के बाद पता चला शब्द बाहर चले गए हैं, लेकिन अर्थ भीतर ही रह गया है। वह जो मैं कहना चाहता था, वह मेरे हृदय में ही रह गया।
करीब-करीब जिन्होंने भी सत्य को, सौंदर्य को, परमात्मा को जाना है, उन सबकी सबसे बड़ी कठिनाई यही है कि उसे कहना असंभव है। आदमी के पास जो भाषा है, बहुत कमजोर है। और आदमी की भाषा बाजार के काम में आ जाती है, कामचलाऊ जिंदगी के काम में आ जाती है। लेकिन जैसे ही किसी गहरे स्रोत को छूने की कोशिश की जाए, वैसे ही कठिन हो जाता है।
अगर हम किसी को प्रेम करते हों, तो प्रेम के क्षण में बोलना बंद हो जाता है। प्रेमी ने कितना ही सोचा हो कि यह कहूंगा, यह कहूंगा, जब वह प्रेमी के पास पहुंचे, प्रेयसी के पास पहुंचे, मित्र के पास पहुंचे, मां के पास पहुंचे--जिसे उसने प्रेम किया है, तो उसके पास जाकर मौन हो जाता है। शब्द काम नहीं पड़ते, चुप रह जाना पड़ता है।
यह बड़े आश्चर्य की बात है कि इस जगत में जो भी महत्वपूर्ण बातें हैं
वे चुप रह कर कही गई हैं, वे बोल कर नहीं कही गईं। साधारण से प्रेम में भी चुप रहना पड़ता है। क्योंकि प्रेम का अनुभव भी इतना गहरा है कि शब्दों में ढालना कठिन हो जाता है। तो परमात्मा का अनुभव तो बहुत गहरा है। उसे शब्दों में ढालने का तो कोई उपाय ही नहीं है।
चीन में एक बहुत अदभुत संत हुआ है, लाओत्सु। अस्सी वर्ष का हो गया था,
तब तक उसने कुछ लिखा नहीं था। लोग कहते थे कि अपना अनुभव लिख जाओ। तो लाओत्सु हंस कर टाल देता था। वह कहता था कि अभी मेरी तैयारी पूरी नहीं हुई। फिर तो उसके अंतिम क्षण आ गए। और लोगों ने कहाः अब तो लिख कर छोड़ ही जाओ, क्योंकि तुम्हारा अनुभव कहीं खो न जाए।
तो लाओत्सु ने कहा कि कैसे कहूं, जिंदगी भर कोशिश की। जब भी कहने की कोशिश करता हूं, तो जो कहना चाहता हूं वह पीछे ही छूट जाता है। और जो बिल्कुल नहीं कहना चाहा था, वह शब्दों से निकल जाता है। लेकिन लोग नहीं माने तो उसने एक किताब लिखी। उस किताब का नाम हैः ताओ तेहकिंग। उस किताब

में पहली बात ही उसने यह लिखी कि सबसे पहले मैं यह निवेदन कर दूं कि जो भी मैं कहूंगा, उसे पकड़ कर मत बैठ जाना। क्योंकि जो मैं कहना चाहता हूं, वह मैं कह ही नहीं पाऊंगा।
उसने पहली ही भूमिका में यह बात कही कि जैसे मैं चांद को अंगुली से बताऊं और कोई मेरी अंगुली पकड़ ले और समझे कि यही चांद है, ऐसी ही भूल शब्दों के साथ हो जाती है। शब्द इशारा कर सकते हैं, सत्य को कह नहीं पाते। लेकिन हम शब्दों को पकड़ लेते हैं। जैसे मैंने अंगुली बताई और मेरी अंगुली को कोई पकड़ ले और समझ ले कि यही चांद है।
अंगुली चांद नहीं है। और जहां चांद है वहां से अंगुली का कोई संबंध नहीं है। और अगर चांद को देखना हो, तो अंगुली को भूल जाना पड़ेगा। लेकिन अंगुलियां पकड़ ली जाती हैं। हिंदू है, मुसलमान है, ईसाई है, सिक्ख--ये सब चांद को छोड़ कर अंगुली पकड़े हुए लोगों के नाम हैं। किसी ने नानक की अंगुली पकड़ ली है, तो वह सिख है; और किसी ने कृष्ण की अंगुली पकड़ ली है, तो वह हिंदू है; और किसी ने क्राइस्ट की अंगुली पकड़ ली है, तो वह ईसाई है। लेकिन चांद तो एक है, अंगुलियां बहुत हो सकती हैं। चाहे क्राइस्ट की अंगुली उठे, चाहे नानक की, और चाहे कृष्ण की, और चाहे बुद्ध की, चाहे महावीर की। अंगुलियां हजार हो सकती हैं, लाख हो सकती हैं, लेकिन चांद एक है।
धर्म एक है। लेकिन धर्म एक दिखाई नहीं पड़ता। बहुत धर्म दिखाई पड़ते हैं। इसलिए मैं कहता हूं, अंगुलियां पकड़ ली गई हैं इसलिए बहुत धर्म हैं। अगर चांद देखा जाए, तो एक ही धर्म रह जाएगा; बहुत धर्म नहीं रह जाएंगे। सत्य बहुत हो भी नहीं सकते; असत्य बहुत हो सकते हैं। अगर मैं असत्य बोलूं तो बहुत विकल्प हैं, बहुत ऑल्टरनेटिव हैं। लेकिन अगर मैं सत्य बोलूं तो कोई विकल्प नहीं है। सत्य एक ही होता है, असत्य बहुत हो सकते हैं। और धर्म तो परम सत्य है। वह जो अल्टीमेट ट्रूथ है, धर्म का उससे संबंध है। इसलिए बहुत धर्म नहीं हो सकते।
तो धर्म के संबंध में पहली बात तो मैं यह कहना चाहूंगा कि धर्म के संबंध में कुछ भी कहा नहीं जा सकता, इशारे किए जा सकते हैं। और खतरा यह है कि इशारे पकड़ न लिए जाएं, अन्यथा भूल हो जाती है। इशारे छोड़ने योग्य हैं। इसलिए जिस आदमी को धर्म तक जाना हो उसे, शास्त्र छोड़ने पड़ते हैं, क्योंकि शास्त्र इशारे हैं। और जिसे धर्म तक जाना हो, उसे गुरु छोड़ने पड़ते हैं, क्योंकि गुरु इशारे हैं। और जिसे धर्म तक जाना हो, उसे संप्रदाय छोड़ने पड़ते हैं, क्योंकि सब संप्रदाय इशारे हैं। धर्म तक जिसे जाना हो, उसे सब इशारे छोड़ देने पड़ते हैं। और आंख वहां उठानी पड़ती है, जहां चांद है। वहां कोई इशारा नहीं है।
तो पहली बात तो यह ठीक से समझ लेनी जरूरी है कि आदमी इशारों को पकड़े हुए है। इशारों ने बहुत उपद्रव पैदा कर दिया है। इशारों की वजह से हम लड़ रहे हैं। और जितना हम लड़ते हैं उतना ही जीवन में धर्म का आना मुश्किल हो जाता है। लड़ने वाले चित्त में धर्म का आगमन नहीं हो सकता।
धर्म तो उस चित्त में उतरता है, परमात्मा तो उस द्वार पर आता है, जहां
सब संघर्ष बंद हो गया, जहां सन्नाटा है, जहां शांति है। लेकिन हिंदू के दरवाजे पर शांति नहीं हो सकती। मुसलमान के दरवाजे पर शांति नहीं हो सकती। वहां झगड़ा जारी रहेगा।
अभी मैं अहमदाबाद था। मुझसे पहले खान अब्दुल गफ्फार खान वहां थे। वहां दंगा हो गया था। तो खान अब्दुल गफ्फार खान ने वहां लोगों को समझाया, मुसलमानों को कहा, तुम्हें सच्चा मुसलमान होना चाहिए। हिंदुओं को कहा कि तुम्हें सच्चा हिंदू होना चाहिए। उनके पीछे जयप्रकाश वहां थे, तो उन्होंने लोगों से कहा कि मैं हिंदू हूं और मुझे हिंदू होने पर गौरव है। पीछे मैं वहां गया, तो मुझे बहुत हैरानी की बातें मालूम पड़ीं। मैंने लोगों से कहाः कच्चे मुसलमान इतनी मुसीबत डालते हैं, कच्चे हिंदू इतनी मुसीबत डालते हैं, अगर सच्चे और पक्के हिंदू और पक्के मुसलमान हो जाएं तो मुसीबत हजार गुनी बढ़ जाएगी, कम होने वाली नहीं है।
नहीं, सवाल मुसलमान के पक्के मुसलमान होने का नहीं है, सवाल पक्का हिंदू होने का नहीं है। सवाल हिंदू के हिंदू मिट जाने का है, मुसलमान के

मुसलमान मिट जाने का है। पीछे हिंदू-मुसलमान मिट जाने के बाद जो बाकी रह जाएगा, वह धार्मिक आदमी हो सकता है। पक्का आदमी नहीं। पक्का हिंदू नहीं, पक्का मुसलमान नहीं, ये पक्की खोलें मिट जानी चाहिए। और भीतर जो, जो आदमी है सीधा और साफ, जिसके ऊपर कोई लेबल नहीं है, जो हिंदू और मुसलमान में बंटा हुआ नहीं है, अब वह आदमी धार्मिक हो सकता है।
अगर परमात्मा से किसी को मिलने जाना हो, तो हिंदू की हैसियत से वहां कोई नहीं जा सकता, वहां मुसलमान की हैसियत से कोई नहीं जा सकता। क्योंकि मैंने कहा, ये इशारे हैं। और इशारों को जो पकड़ लेगा वह चांद तक नहीं जा सकता। लेकिन हमें बड़ी भूल चलती है, बड़ी भ्रांति चलती है। और हमारी सारी कोशिश जिंदगी में यह होती है कि हम पक्के हिंदू हो जाएं कि पक्के मुसलमान हो जाएं।
लेकिन पक्के हिंदू और पक्के मुसलमान होने का कोई सवाल नहीं है। धार्मिक होने से हिंदू-मुसलमान होने का कोई संबंध नहीं है। धार्मिक होना एक अलग ही डाइमेन्शन है। एक अलग ही आयाम है। एक अलग ही यात्रा है। उस यात्रा पर जब कोई निकलता है, तो सब मंदिर, सब मस्जिद, सब गिरजे, सब गुरुद्वारे, सब उस एक के ही मंदिर और मस्जिद हो जाते हैं। लेकिन हमारी बड़ी तकलीफ है, हमारी बड़ी कठिनाई यह है कि जब भी दुनिया में ऐसे धर्म को कोई पाता है, और जब वह हमसे कहने आता है, तभी कुछ भूल हो जाती है।
एक मुसलमान फकीर था, फरीद। वह यात्रा पर निकला हुआ था। कबीर का आश्रम रास्ते में पड़ता था। तो फरीद के साथियों ने कहा, अच्छा होगा कि कबीर के आश्रम में दो दिन हम मेहमान हो जाएं। तुम दोनों की बातें होंगी, तो हमें बहुत आनंद होगा। फरीद ने कहाः रुकेंगे जरूर, लेकिन बातें शायद ही हों, क्योंकि बात क्या होगी। कबीर को भी लोगों ने कहा उनके आश्रम के कि फरीद निकलने वाला है, अच्छा हो कि हम रोक लें उसे, मेहमान बना लें, दो दिन यहां रुकें, आप दोनों की बातें होंगी तो हमारे ऊपर अमृत की वर्षा हो जाएगी। कबीर बहुत हंसने लगे, उन्होंने कहाः बातें शायद ही हों। लेकिन शिष्यों की समझ में न आया। फरीद को रोक लिया। फरीद दो दिन वहां रुका। कबीर और फरीद मिले, गले मिले, रोए भी, हंसे भी, साथ भी बैठे, दो दिन बीत गए, लेकिन बोले नहीं।
दो दिन में तो शिष्य घबड़ा गए। फरीद के शिष्य भी घबड़ा गए और कबीर के शिष्य भी घबड़ा गए। दो दिन में तो बहुत ऊब पैदा हो गई। और दो दिन बाद जब विदा किया, तो जैसे ही कबीर और फरीद अलग हुए, कबीर के शिष्यों ने कबीर को पकड़ लिया, फरीद के साथियों ने फरीद को पकड़ लिया और कहा कि यह क्या किया, चुप क्यों रहे? तो कबीर ने कहाः परमात्मा को कहने का तो उपाय नहीं है। अगर फरीद न जानता होता, तो हम कह कर भी समझाने की कोशिश करते। लेकिन वह भी जानता है, इसलिए कहने की कोई भी जरूरत नहीं है। फरीद से कहा तो फरीद ने कहाः जो बोलता वह नासमझ होता, क्योंकि उस दुनिया में बोलने का उपाय नहीं है। वहां तो केवल वही प्रवेश करते हैं जो चुप हो जाते हैं। लेकिन फरीद के शिष्यों ने कहा, आप हमसे तो बोलते हैं।
तो फरीद ने कहाः मजबूरी में बोलता हूं। इस आशा में बोलता हूं कि किसी दिन बोलना सुन कर तुम थक जाओगे, थक जाओगे और बोलना भी छोड़ दोगे। बातचीत सुनते-सुनते, शब्द सुनते-सुनते मौन हो जाओगे, इसलिए बोलता हूं। क्योंकि तुम नहीं जानते, तुम शब्द भी नहीं समझ पाते तो मौन कैसे समझ पाओगे। लेकिन कबीर जानते हैं, उनसे बोलने का कोई भी अर्थ नहीं है।
आज तक इस पृथ्वी पर जिन्होंने भी जाना है, जो जाना है, उसे नहीं कहा जा सका। लेकिन इशारे उन्होंने बताने की कोशिश की है। उन्होंने कुछ इशारे किए हैं, वह इशारों से बड़ी गलती हो गई है। क्योंकि इशारों से हम वही समझ सकते हैं, जो हम जानते हैं। अगर गीता आप पढ़ेंगे, तो आप वही समझ पाएंगे गीता में, वह नहीं जो कृष्ण ने कहा है, वह जो आप समझ सकते हैं। अगर आप नानक की वाणी पढ़ेंगे, तो आप वह नहीं समझ पाएंगे जो नानक ने कहा है, क्योंकि उसे समझने के लिए जो नानक ने कहा है, नानक की भाव-दशा में होना जरूरी है। आप वही समझ पाएंगे जो आप समझ सकते हैं।

इसीलिए तो इतना विवाद चलता है, गीता पर हजार टीकाएं, हजार आदमी हजार मतलब निकालते हैं कि गीता में यह मतलब है, गीता में यह मतलब है। वे विवाद भी करते हैं कि तुम गलत हो और हमारा मतलब सही है। अब कृष्ण का दिमाग खराब नहीं था कि उनकी एक ही बात में हजार मतलब हों। कृष्ण का दिमाग तो बहुत साफ था। उन्होंने तो जो कहा है उसका मतलब एक ही है, लेकिन वह मतलब कृष्ण को पता होगा। टीका करने वाले को, कमेंटेटर को उसका कुछ पता नहीं है। वह तो अपना मतलब डाल रहा है। जब हम कोई किताब पढ़ते हैं, तो हम उसमें से मतलब निकालते नहीं, उसमें से शब्द लेते हैं, अर्थ अपना डालते हैं। मीनिंग सदा हमारा होता है। शब्द किताब के होते हैं, अर्थ हमारा होता है।
बुद्ध एक रात बोल रहे थे। वे जब भी बोलते थे तो बोलने के अंत में, उनके भिक्षु, उनके संन्यासी उनके साथ होते थे, उनसे वह कहते थे, अब बात पूरी हो गई। अब तुम असली काम में लग जाओ। यह रोज की बात थी। तो बुद्ध के भिक्षु जानते थे कि असली काम क्या है। जब बुद्ध बोल चुकते, तो असली काम का मतलब था कि अब प्रार्थना में, ध्यान में लीन हो जाओ, समाधि में डूब जाओ। उस रात एक चोर भी आया हुआ था, जब बुद्ध बोल चुके और, उन्होंने कहा कि अब तुम रात के असली काम में लग जाओ। उस चोर ने कहा बहुत रात हो गई, मैं जाऊं, चोरी पर निकलूं। उस रात एक वेश्या भी सुनने आई थी। जब बुद्ध ने कहा, अब रात के असली काम में लग जाओ, तो भिक्षु समाधि के लिए चले गए, वेश्या अपनी दुकान खोलने चली गई। बुद्ध ने एक ही बात कही थी। चोर ने अपना मतलब लिया, वेश्या ने अपना मतलब लिया, भिक्षुओं ने अपना मतलब लिया। आप भी वहां होते, मैं भी वहां होता, हम भी अपना मतलब लेते। मतलब सदा हमारे हैं।
जो सारा उपद्रव पैदा हो गया है वह इसलिए पैदा हो गया है कि शास्त्र में शब्द हैं, अर्थ हम अपने डाल देते हैं। इसलिए शास्त्र से कोई कभी सत्य तक नहीं पहुंच पाता। शास्त्र पकड़ कर हम अपने ही आस-पास घूमते रह जाते हैं। अगर सत्य तक किसी को जाना है, तो उसे अपने अर्थ डालने की प्रक्रिया बंद कर देनी पड़ेगी। चीजें जैसी हैं उन्हें वैसा ही देखना पड़ेगा। कुछ अर्थ मत डालें।
अगर आप एक क्षण को भी जगत को पूरी आंख खोल कर देख लें और कोई अर्थ न डालें, तो हम परमात्मा को अभी और यहां भी देख ले सकते हैं। लेकिन हम नहीं देख पाते। कोई आ रहा है, तो मैं कहता हूं कि मेरी पत्नी आ रही है। मैंने अर्थ डाल दिया। मैं कहता हूं, मेरा मित्र आ रहा है, मैंने अर्थ डाल दिया। मैं कहता हूं, मेरा शत्रु आ रहा है, मैंने अर्थ डाल दिया। अगर हम हमारे चारों तरफ जो हो रहा है, उसमें कोई अर्थ न डालें, और जैसा है, जो है, उसको वैसा ही जान लें, तो बड़े हैरानी की घटना घट जाती है।
जब कोई व्यक्ति अपनी तरफ से कोई अर्थ नहीं डालता, तब जो दिखाई पड़ता है,
वह परमात्मा है। तब एक वृक्ष में भी परमात्मा दिखाई पड़ जाएगा। तब एक फूल में भी, तब सड़क के किनारे पड़े हुए पत्थर में भी। लेकिन हमें वह नहीं दिखाई पड़ता। हम अर्थ डालने के लिए आदी हो गए हैं। इसलिए हम अगर परमात्मा को भी खोजने जाते हैं, तो हम एक मूर्ति बना लेते हैं और अपना अर्थ डाल देते हैं कि यह रहा परमात्मा। मूर्ति क्या है, हमें मतलब नहीं है। हम अपना अर्थ डाल देते हैं कि यह रहा परमात्मा। वहां भी हम अपने ही अर्थ डालते रहते हैं। वहां भी जो है उसे हम नहीं देखते।
मैंने सुना है, जापान में एक फकीर हुआ है। वह एक मंदिर में ठहरा हुआ था। बौद्ध मंदिर था। रात सर्द थी। और बहुत सर्दी लग रही थी उस फकीर को। वह अंदर उठ कर गया, उसने देखा, भगवान बुद्ध की तीन मूर्तियां, लकड़ी की मूर्तियां रखी हैं। वह एक मूर्ति उठा लाया, आग जला कर तापने लगा। पुजारी को मंदिर में आग जली हुई मालूम पड़ी, पुजारी भागा हुआ आया। उसने कहाः यह क्या कर रहे हो? मंदिर में आग। लेकिन आग ही नहीं थी, वहां तो भगवान जल रहे थे। तब तो वह पुजारी पागल हो गया। लेकिन वह मूर्ति तो राख हो चुकी थी। उस पुजारी ने कहाः यह तुमने क्या किया? तुम आदमी पागल तो नहीं हो? तुमने भगवान की मूर्ति जला डाली? तो उस फकीर ने पास में पड़ी हुई लकड़ी उठा कर उस राख को कुरेदा। उस पुरोहित ने पूछाः यह क्या कर रहे हो? तो उसने कहाः मैं भगवान की अस्थियां खोज रहा हूं। तो उस पुजारी ने कहाः तुम निपट पागल हो।

लकड़ी की मूर्ति में कहीं अस्थियां होती हैं? तो उस फकीर ने कहाः फिर रात बहुत सर्द है और दो मूर्तियां और पीछे बाकी हैं, तुम वह भी उठा लाओ, उनको भी जला कर हम ताप लें। क्योंकि तुम खुद ही कहते हो कि लकड़ी की मूर्ति में कहीं अस्थियां होती हैं, तो तुम जानते तो हो कि लकड़ी की मूर्ति है--और मानते हो कि भगवान! जानते हो कि लकड़ी है, मानते हो कि भगवान है। वह मानना तुम्हारा डाला हुआ है।
पुजारी ने तो उस फकीर को मंदिर के बाहर निकाल दिया। सुबह जब द्वार खोला, तो वह फकीर जो रात मंदिर में भगवान की मूर्ति को जला कर ताप गया था, वह सामने मील का पत्थर लगा है, उस मील के पत्थर पर दो फूल रखे हाथ जोड़े बैठा हुआ है। तब तो उस पुजारी ने कहाः यह आदमी निश्चित ही पागल है। उसने जाकर हिलाया और कहाः यह क्या कर रहे हो? भगवान की मूर्ति को तो जला डाला और इस साधारण से मील के पत्थर को हाथ जोड़ कर बैठे हो? तो उस फकीर ने कहाः मैं यही जांचने के लिए रात तुम्हारी मूर्ति में आग लगा दिया था कि भगवान तुम्हें दिखाई पड़ा है? और यही जांचने के लिए अब भी मैं पत्थर के सामने हाथ जोड़ कर बैठा हूं, तुम्हें भगवान दिखाई नहीं पड़ रहा है?
अगर भगवान दिखाई पड़ेगा तो तभी जब हम अपने मीनिंग जिंदगी के ऊपर इंपोज
न करें, जिंदगी के ऊपर थोपें न।
हमने सब मतलब थोप दिए हैं। हम जिंदगी में वही देख रहे हैं जो हमें देखना है। हम वह नहीं देख रहे हैं जो है। नास्तिक देख लेता है कि भगवान नहीं है, वह भी एक अर्थ थोप रहा है। आस्तिक देख लेता है कि भगवान है, वह भी एक अर्थ थोप रहा है। धार्मिक आदमी बिल्कुल तीसरे तरह का आदमी है, जो कोई अर्थ नहीं थोपता, जो कहता है कि मैं अपनी तरफ से जिंदगी में कुछ देखने न जाऊंगा। मैं खाली खड़ा हो जाऊंगा और जिंदगी जैसी है, उसको वैसा ही जान लूंगा।
जो व्यक्ति जिंदगी जैसी है, उसको वैसा ही जानने को तैयार है, वह तत्काल धर्म के सत्य को जानने में समर्थ हो जाता है। लेकिन बहुत कठिन है। हमने इतने धोखे दिए हैं, हमने सब चीजों को, सब चीजों को जैसी हैं, वैसा जानने से बदल दिया है। अब मैं देखता हूं एक आदमी मंदिर में मूर्ति के सामने हाथ जोड़े खड़ा है, वह कहता है यह मैं प्रार्थना कर रहा हूं। और अगर हम उसका हृदय फाड़ सकें, तो उसके हृदय के भीतर प्रार्थना बिल्कुल न मिलेगी। हो सकता है भय मिल जाए, फियर मिल जाए। और घुटने टेकने का कोई संबंध प्रार्थना से है भी नहीं। भयभीत आदमी घुटने टेके हुए है, हाथ जोड़े हुए है। भय है भीतर, लेकिन वह कह रहा है कि प्रार्थना है। भय के ऊपर प्रार्थना का अर्थ थोप रहा है।
हमने सब चीजें बदल दी हैं, हमने सब चीजों पर नये नाम लगा दिए हैं। गुलाब का जो फूल है, वह गुलाब का फूल नहीं है। वह गुलाब के फूल को कुछ भी पता नहीं है कि मैं गुलाब का फूल हूं। लेकिन हमने एक शब्द थोप दिया है कि यह रहा गुलाब का फूल। बस इस शब्द के साथ हम जी रहे हैं। गुलाब के फूल में जो छिपा है, उसे हमने कभी भी नहीं देखा। जिंदगी में जो छिपा है, उससे हम बच गए, चूक गए। उससे हम चूकते ही रहेंगे, क्योंकि हम कुछ देखने की कोशिश करते रहेंगे।
मैंने एक घटना सुनी है।
मैंने सुना है, एक संन्यासी एक गांव में बोलने गया था। वह उस गांव के लोगों को समझा रहा है। थोड़े से लोग सुनने आए हैं। कुछ स्त्रियां भी आई हैं। एक स्त्री के साथ उसका बेटा, छोटा बेटा भी आया है। उस बेटे ने बीच में खड़े होकर अपनी मां से कहा कि मुझे पेशाब लगी है। तो सारे लोग हंसने लगे और उस बेटे की तरफ देखने लगे। सभा समाप्त हो जाने पर संन्यासी ने उस स्त्री को अपने पास बुलाया और कहा कि अपने बेटे को समझा दो, अगर कभी भीड़ में, समूह में, समाज में ऐसा हो भी तो सीधा नहीं कह देना चाहिए कि पेशाब लगी है। कुछ और कह सकता है। तो उस स्त्री ने पूछा कि क्या कहे? तो संन्यासी ने कहा कि कोई भी कोड बना लेना चाहिए। जैसे कि बच्चा कह सकता है कि मां मुझे गाना गाना है। तो तुम समझ जाओगी और बाकी कोई नहीं समझ पाएगा। बात खत्म हो गई,

मां ने अपने बेटे को सिखा दिया कि जब भी पेशाब लगे तो कहना कि गाना गाना है।
साल भर बाद वह संन्यासी उस स्त्री के घर मेहमान हुआ, उस स्त्री को पड़ोस में कहीं शादी थी, वह वहां गई और अपने बेटे को संन्यासी के पास सुला गई कि आप थोड़ा ध्यान रख लेना। कोई बारह बजे होंगे, रात उस बेटे ने संन्यासी को हिलाया और उसने कहाः स्वामी जी मुझे गाना गाना है। तो उन स्वामी जी ने कहा कि आधी रात को कोई गाना गाया जाता है? चुपचाप सो जाओ। लड़का थोड़ी देर चुप रहा, उसने फिर कहा कि नहीं स्वामी जी, चुपचाप नहीं सोया जा सकता, गाना गाना ही पड़ेगा। उस स्वामी ने कहाः कैसा पागल लड़का है, आधी रात को कोई गाना गाता है, सुबह गा लेना। उस लड़के ने कहाः सुबह फिर से गाएंगे, लेकिन अभी भी गाना है। स्वामी ने कहा कि कहां की मुसीबत यह स्त्री मेरे पास छोड़ गई। मैं दिन भर का थका-मांदा हूं, मुझे सोना है और तुझे गाना गाना है। चुपचाप सो जाओ, गड़बड़ मत करो। लेकिन वह लड़का कैसे चुपचाप सो सकता है। उसने थोड़ी देर फिर स्वामी जी को कहा कि नहीं स्वामी जी, चुपचाप सोना असंभव है, गाना गाना ही पड़ेगा। तो स्वामी जी ने कहा कि नहीं मानते हो तो धीरे-धीरे कान में गुनगुना दो।
हमने जिंदगी में भी जो जैसा है उसको वैसा न जान कर कोड बनाए हुए हैं।
हम कुछ और कह रहे हैं, हमने पूरी जिंदगी को फॉल्सीफाई किया हुआ है। यह जो जिंदगी का तथ्य है, जिंदगी का जो सत्य है, उसे हमने फॉल्सीफाई किया हुआ है, हम कुछ-कुछ नाम दे रहे हैं। और नाम दे-दे कर हमने सब मुसीबत खड़ी कर ली है। नाम देने की वजह से जो है वह दिखाई नहीं पड़ता। जो नहीं है वह पकड़ में आता है। है तो परमात्मा। काश हम नाम देने की प्रक्रिया से "दि टेक्निक ऑफ नेमिंग" उससे अगर हम बच सकें, तो परमात्मा हमें तत्काल दिखाई पड़ जाए। लेकिन बिना नाम दिए हम नहीं रह सकते। फूल होगा, तो हम कहेंगे, गुलाब है। आदमी होगा, तो हम कहेंगे, हिंदू है, मुसलमान है। किताब होगी, तो हम कहेंगे, पवित्र है, अपवित्र है। हम बिना नाम दिए जिंदगी को देखने को राजी नहीं हैं। और इसलिए परमात्मा चूंकि अनाम है, नेमलेस है, हमसे चूक जाता है। क्योंकि हम बिना नाम दिए कुछ देख ही नहीं सकते।
हम तो परमात्मा को भी नाम दे दिए हैं। कोई कहता है, उसका नाम राम है। राम दशरथ के बेटे का नाम था; परमात्मा का नाम नहीं है। राम बहुत प्यारे आदमी थे, लेकिन उनका नाम परमात्मा का नाम नहीं है। कोई कहता है, उसका नाम अल्लाह है। कोई कहता है, उसी का नाम कुछ और है--ओम है, ब्रह्म है, ईश्वर है, हजार नाम हमने दे दिए हैं। हम परमात्मा, जिसका हमें पता भी नहीं है, उसको भी नाम दे दिए हैं। और एक आदमी बैठ कर राम-राम जपता है और वह सोचता है कि परमात्मा मिल जाएगा। और जिसका कोई नाम नहीं है वह राम-राम जपने से कैसे मिल जाएगा? वह कभी नहीं मिलेगा। हां, इस राम-राम जपने में जिंदगी खराब हो सकती है। समय व्यतीत हो सकता है।
मैं अभी एक गांव में गया था। तो उस गांव में एक मंदिर बनाया है। उस मंदिर में हजारों किताबें रखी हैं, और एक-एक किताब में लाखों बार राम-राम लिखा हुआ है। और उस मंदिर में एक ही काम है--कोई सौ आदमी दिन-रात बैठ कर राम-राम लिखते रहते हैं। और उस मंदिर के भक्त सारे हिंदुस्तान में हैं। वे जगह-जगह से पोथियां भर-भर कर राम-राम, राम-राम लिख कर उस मंदिर को भेजते रहते हैं। वहां एक लाइब्रेरी खड़ी हो रही है। उस मंदिर को जो सम्हालते हैं, उन्होंने मुझे कहा, आपको पता है, अरबों नाम आ चुके हैं। किताबें भर गई हैं, अब हमारे पास जगह नहीं है। अब हमें नया मंदिर बनाना पड़ेगा। इतना धर्म का प्रचार हो रहा है कि लोग राम-राम लिख-लिख कर भेज रहे हैं। मैंने कहाः धर्म का प्रचार हो रहा है कि पागलपन का प्रचार हो रहा है? ये किताबें इतनी बच्चों के काम आ सकती थीं। ये किताबें खराब हो गईं। लेकिन राम-राम दोहराने वाला सोच रहा है, मैं परमात्मा को पा लूंगा!
परमात्मा का कोई भी नाम नहीं है। राम-राम दोहराने से तो मिलेगा ही नहीं, हमें जिंदगी में जो नाम देने की आदत पड़ गई है उसे भी छोड़ देना पड़ेगा। हमें बिना नाम के चीजों को देखना पड़ेगा।

इसका थोड़ा प्रयोग करेंगे, तो बहुत नया अनुभव होगा। कभी बगीचे से निकलें और फूल को नाम न दें, बस खड़े हो जाएं फूल के पास। मन तो कहेगा कि चमेली है; मन तो कहेगा, गुलाब है; मन तो कहेगा, जूही है, लेकिन मन को कहना कि नाम देना ही नहीं, क्योंकि जूही को कुछ पता ही नहीं कि उसका नाम क्या है। जूही का कोई भी नाम नहीं है, गुलाब का भी कोई नाम नहीं है, सूरज का कोई नाम है? चांद-तारों का कोई नाम है? हम भी बिना नाम के पैदा हुए हैं। लेकिन हमने अपने को भी नाम दिया हुआ है, और उसी दिन से धोखा शुरू हो गया।
एक आदमी पैदा होता है, हम कहते हैं, तुम्हारा नाम "राम" हुआ। अब वह जिंदगी भर यही समझेगा कि मैं राम हूं। और अगर कोई राम को गाली दे देगा, तो लड़ने को खड़ा हो जाएगा। लेकिन नाम कोई आदमी लेकर पैदा होता है? हम सब बिना नाम के पैदा होते हैं। जिंदगी अनाम है। सत्य का कोई नाम नहीं। लेकिन हमारे मन की आदत नाम देने की है। बिना नाम के हम मानने को राजी नहीं हैं। अगर एक आदमी हमें मिल जाए और वह कहे कि मेरा कोई नाम नहीं है, तो हम कहेंगे, तुम्हारा दिमाग खराब है। लेकिन वह ठीक कह रहा है, दिमाग हमारा खराब है। नाम किसका है?
मेरे एक मित्र हैं, वे ट्रेन से गिर पड़े। डाक्टर हैं, सिर में चोट लग
गई और सब भूल गए, अपना नाम भी भूल गए। अभी मैं उन्हें देखने गया, तो मुझे पहचाने नहीं। मैंने उनसे कहा कि पहचाने नहीं आप, उन्होंने कहाः आपको कैसे पहचानें, अपने को पहचानना मुश्किल हो गया, मैं कौन हूं यही मुझे पता नहीं। उनके पिता ने मुझे कान में कहा कि आप कुछ भी कहें, अरेउनका दिमाग खराब हो गया है। मैंने उनके पिता से कहा कि आपको पता है कि आप कौन हैं? लड़के को कह रहे हैं दिमाग खराब हो गया है। आपको पता है आप कौन हैं? उन्होंने कहाः मुझे पता है, मुझे मेरा नाम पता है, उसको उसका नाम भी पता नहीं रहा। गिरने से सब खराब हो गया है।
लेकिन नाम हम हैं? नाम हम नहीं हैं। लेकिन हमने सब तरफ नाम दे दिए हैं,
और आदमी खो गया है--शब्दों में, नामों में। अगर आदमी को ऊपर उठना हो इस सबके तो उसे नाम देने की आदत छोड़नी पड़े। चीजों को देखने की आदत शुरू करनी चाहिए, नाम देने की आदत बंद करनी चाहिए।
अगर एक घंटे भी चौबीस घंटे में हम बिना नाम दिए जी सकें, तो जिंदगी में
एक नया द्वार खुल जाएगा, जहां से परमात्मा प्रवेश होता है। क्योंकि उसका कोई नाम नहीं है। अगर एक घंटे भी हम रह सकें कि नाम नहीं देंगे, शब्द नहीं बनाएंगे, एक घंटे भी अगर हम बिना सोचे रह सकें... क्योंकि ध्यान रहे, जब हम नाम न देंगे, शब्द न बनाएंगे, तो विचार बंद हो जाएगा। विचार की प्रक्रिया नाम देने की प्रक्रिया है। विचार टूट जाएगा, समाप्त हो जाएगा। और जहां विचार बंद होता है, समाप्त होता है, वहीं से वह द्वार खुलता है जो परमात्मा का द्वार है। निर्विचार में उसका द्वार खुलता है। थॉटलेसनेस में, जहां कोई विचार नहीं है, वहां वह भीतर चला आता है।
लेकिन हम तो विचार से भरे हुए हैं। हम चौबीस घंटे विचार में डूबे हुए हैं--शब्द और शब्द और शब्द। हमारे मस्तिष्क में शब्द ही शब्द घूम रहे हैं। अगर हम एक दरवाजा बंद करके एक कोने में बैठ जाएं और हमारे मन में जो शब्द घूम रहे हैं उन्हें एक कागज पर लिख लें, तो हम अपने सगे मित्र को भी बताने को राजी न होंगे वह कागज। क्योंकि वह कागज देख कर हमें लगेगा, क्या मैं पागल हूं, यह सब मेरे दिमाग में घूम रहा है। दिमाग में मक्खियों की तरह शब्द चक्कर लगा रहे हैं। दिमाग पूरे समय शब्दों से भरा हुआ है। वह कभी खाली नहीं हो रहा है। और शब्द जब तक भरे रहेंगे तब तक, तब तक वह नहीं आ सकेगा जो शब्दों के बाहर है।
इसलिए दूसरी बात धर्म के संबंध में आपसे मैं यह कहना चाहता हूं कि निर्विचार होने की कला सीखनी पड़ेगी, तो ही हम धर्म से संबंधित हो सकते हैं। मौन होने की, टु बी साइलेंट। सब तरफ से चुप होने की कला सीखनी पड़ेगी। भीतर भी, बाहर भी। उस सन्नाटे में ही उसके पैरों की आवाज सुनाई पड़ती है। लेकिन हम तो इतने शोरगुल से भरे हैं कि अगर बैंड-बाजे बजाता हुआ भी परमात्मा हमारे घर के पास से निकले, तो शायद ही हमें सुनाई पड़ेगा। और उसके

कदमों की कोई चाप नहीं बनती, ध्वनि नहीं आती, वह चुपचाप आता है। वह इतने चुपचाप आता है कि हमें पता नहीं चलता। हम अपने से भरे हैं।
रवींद्रनाथ ने एक गीत लिखा है। लिखा है रवींद्रनाथ ने कि एक मंदिर था
और उस मंदिर के बड़े पुजारी को एक रात स्वप्न आया। मंदिर में सौ पुजारी थे। बड़ा मंदिर था, करोड़ों-अरबों की संपत्ति थी। हजारों भक्त थे, लाखों भक्त थे। बड़े पुजारी को स्वप्न आया कि कल भगवान मंदिर में आने वाला है। पहले तो पुजारी ने भरोसा न किया।
यह बड़े मजे की बात है कि मंदिर में जाने वाले जितना भरोसा भगवान का करते हैं, उतना वह मंदिर में जो पुजारी खड़ा है, वह भी नहीं करता। क्योंकि उसे तो दुकान का सारा हाल मालूम होता है। यह सब जाल उसका ही खड़ा किया हुआ है, वह भलीभांति जानता है कि कोई भगवान वगैरह नहीं है। पुजारियों से ज्यादा नास्तिक आदमी खोजना बहुत मुश्किल है। वह सिर्फ ट्रेड, उनके लिए तो धंधा है। वह धंधा पूरा कर रहे हैं। उस धंधे का वह पूरा का पूरा सूत्र समझ गए हैं कि वह कैसे चलता है। लेकिन उन्हें, उन्हें परमात्मा से कोई मतलब नहीं है। उन्हें किसी और बात से मतलब है, वे वह पूरा कर रहे हैं।
पुजारी को विश्वास न आया। पुजारी ने कहाः सपना ही मालूम होता है, भगवान कभी नहीं आए। लेकिन दूसरे पुजारियों को बड़े पुजारी ने बताया कि मैंने एक सपना देखा है। दूसरे पुजारियों ने कहाः सपना सच भी हो सकता है। क्योंकि जिंदगी बड़ी अजीब है, इसमें जिसको हम सच कहते हैं वह सपना हो जाता है, तो कभी सपने भी सच हो सकते हैं। तो प्रतीक्षा करनी चाहिए, अगर भगवान कहीं आ न जाए। बड़े पुजारी ने कहाः पागल हो गए हो, मैं वर्षों से इस मंदिर में पूजा करता हूं, वह कभी नहीं आया। पूजा करने वालों को तो मैंने आते-जाते देखा, लेकिन पूजा लेने वाले को मैंने कभी आते नहीं देखा। सपना ही है। लेकिन फिर भी दूसरे पुजारियों ने कहा कि सपना ही हो तो भी हर्ज क्या है, तैयारी तो हम कर लें। अगर न आया तो कोई हर्ज नहीं। और अगर आ गया और हम तैयार न हुए, तो बड़ी मुश्किल हो जाएगी। यह सोच कर, यह सोच कर कि शायद कहीं आ ही न जाए, उन्होंने मंदिर की तैयारी की, मंदिर को साफ-सुथरा किया, दीप जलाए, भोज बनाया, भगवान के लिए सब तैयारियां कीं।
रोज भी वे भोग लगाते थे भगवान के लिए। लेकिन वह भोग अंततः उन्हीं को
लग जाता था। इसलिए उस भोग की तैयारी की बात और थी, आज उनको बड़ा शक भी मालूम हो रहा था कि हम यह क्या पागलपन कर रहे हैं, कौन आएगा भोग लेने? फूल किसके लिए लगा रहे हैं, दीये किसके लिए जला रहे हैं? लेकिन सिर्फ पोलिटिकली, रिलिजियसली नहीं। राजनैतिक ढंग से कि कहीं आ ही न जाए, इंतजाम कर लेना जरूरी है, उन्होंने इंतजाम कर लिया। सांझ हो गई, वह नहीं आया। वे बार-बार बाहर जाकर देख आए, वह नहीं आया। क्योंकि जिसे हमें जाकर देखना पड़े बाहर, वह नहीं आएगा। क्योंकि वह आता है भीतर से। वे बाहर देख आए, बार-बार सीढ़ियों पर झांक कर देख आए, फिर उन्होंने कहा कि नहीं आया। नहीं आया।
बड़े पुजारी ने कहाः पागलो, मैंने सुबह ही कहा था, अब जो भोग हमने बनाया
वह हम भोजन कर लें। अब हम सो जाएं। हम दिन भर के व्यर्थ थक गए। सपनों में आने की कोई जरूरत नहीं है। भगवान कभी नहीं आता है। उन्होंने भोजन कर लिया। वे दिन भर के थके-मांदे प्रतीक्षा करते थे, सो गए।
आधी रात गए द्वार पर जैसे कोई रथ आकर रुका। रथ के चक्कों की आवाज। तो किसी पुजारी की नींद टूट गई, और उसने कहा कि मालूम होता है उसका रथ आ गया। लेकिन दूसरे पुजारियों ने कहाः चुप रहो नासमझ। दिन भर परेशान किया, अब बातें बंद करो। रथ नहीं है यह बादलों की गड़गड़ाहट। सो जाओ। दिन भर खराब किया, अब रात खराब मत करो। वे सो गए। फिर कोई सीढ़ियां चढ़ा, पैरों की आवाज आई। फिर किसी पुजारी ने आधी नींद में टूट कर कहा कि मालूम होता है कोई सीढ़ियां चढ़ रहा है। दूसरों ने कहा कि चुप भी रहो, कोई सीढ़ियां नहीं चढ़ता। दिन भर कोई सीढ़िया नहीं चढ़ा, रात कौन सीढ़ियां चढ़ेगा। कोई नहीं है, भ्रम हुआ है तुम्हें। कामना की है मन में कि आएगा, आएगा, इसलिए भ्रम हो रहा है। सो जाओ। फिर किसी ने द्वार पर दस्तक दी, फिर कोई बोला कि कोई द्वार पर दस्तक देता है। बड़े पुजारी ने कहाः नासमझो, सोने दोगे कि नहीं सोने दोगे। हवा के झोंके हैं किवाड़ों को खड़खड़ाते हैं। कोई नहीं है, हवा धक्के मारती है। रात

गुजर गई। वे लोग सुबह उठे, तो द्वार तक रथ के आने के चिह्न थे। सीढ़ियों पर किसी के पैरों के कदम थे। द्वार तो किसी ने थपथपाया था। तब वे सब रोने लगे। वे सब रोने लगे कि अवसर चूक गया।
यह गीत जब मैंने पढ़ा, तो मुझे लगा कि कहीं ऐसा तो नहीं है कि हम सबको भी ऐसा ही अवसर चूक जाता हो। जब किसी के पद-चिह्न सुनाई पड़े, तो उन्होंने कहा भ्रम होगा। और जब रथ के चाक की आवाज आई, तो उन्होंने कहा बादलों की गड़गड़ाहट है। और जब किसी ने द्वार थपथपाया, तो उन्होंने कहा हवा के झोंके होंगे। उन्होंने विचार कर लिया वहीं सोए-सोए। वे उठ कर न गए वहां तक, उन्होंने शब्द बना लिए, उन्होंने देखा नहीं जाकर कि क्या है। उन्होंने नाम दे दिए, शब्द दे दिए, विचार कर लिया और चुपचाप अपनी जगह पर रहे। हम जिंदगी भर यही कर रहे हैं। ऐसा नहीं है कि परमात्मा किसी रात किसी मंदिर पर आता है, हम सबके मंदिर पर रोज ही उसका आना होता है, प्रतिपल उसका आना होता है। लेकिन हम शब्द देकर चूक जाते हैं।
एक फकीर थे, साईं बाबा। उनके पास एक हिंदू संन्यासी भी आता था। लेकिन साईं तो रहते थे मस्जिद में। और कुछ पक्का न था कि वे हिंदू हैं कि मुसलमान। असल में संतों का कोई पक्का नहीं हो सकता, सिर्फ असंतों का पक्का हो सकता है कि वे हिंदू हैं या मुसलमान। संत का क्या पक्का? मस्जिद में रहते थे। तो वह जो हिंदू संन्यासी उनका शिष्य हो गया था, वह तो मस्जिद में नहीं रुक सकता था। तो गांव के बाहर एक मंदिर में रुकता था। लेकिन प्रेम इतना था साईं के प्रति कि वह रोज भोजन बना कर पहले साईं को कराता और फिर जाकर भोजन करता। तीन-चार मील धूप में चल कर उसे आना पड़ता। तो साईं ने एक दिन उससे कहा कि तू इतनी दूर क्यों आता है, मैं वहीं आ जाऊंगा, दोपहरी बहुत धूप होती है। मैं खुद ही कल आ जाऊंगा। तो उस हिंदू संन्यासी ने... मेरा सौभाग्य। इससे बड़ा और क्या होगा सौभाग्य मेरा कि आप मेरे झोपड़े पर आ जाएंगे। तो कल मैं प्रतीक्षा करूंगा। साईंर्ं ने कहाः प्रतीक्षा तू करना, लेकिन पहचान भी लेगा कि नहीं? उस संन्यासी ने कहाः मैं और आपको न पहचानूं? पहचान लूंगा। वे साईं हंसने लगे, उन्होंने कहाः पहले भी मैं आया हूं, लेकिन तू पहचानता नहीं। उस संन्यासी ने कहाः कल मैं आंख भी न झपकूंगा, कहीं भूल-चूक न हो जाए। पहचान लूंगा, आपकी प्रतीक्षा करूंगा।
बारह बज गए, खाने का समय हो गया, लेकिन जिसको आना था वे तो नहीं आए। एक
बज गया। फिर वह हिंदू संन्यासी परेशान हुआ। फिर वह थाली लेकर भागा मस्जिद की तरफ। जाकर थाली साईंर् के सामने रखी और कहा कि आप आए नहीं। तो वह साईंर्ं हंसने लगे, उन्होंने कहाः मैं आया था, लेकिन तू फिर नहीं पहचाना। उसने कहाः लेकिन कोई भी नहीं आया, सिर्फ एक कुत्ता जरूर वहां आया था। वह थाली में मुंह मारता था तो मैंने रोक दिया। मैंने कहाः कुत्ते हट। तो साईंर्ं ने कहाः वही मैं था। कल फिर आऊंगा, लेकिन पहचानेगा कि नहीं?
अब कुत्ते को कैसे वह मान लेता? कुत्ता शब्द ने बाधा दे दी। जैसे ही दिखाई पड़ा कुत्ता, उसने कहा, कुत्ता आ गया। कुत्ता आ गया, तो परमात्मा रुक गया। कुत्ते में भी परमात्मा है। लेकिन कुत्ता शब्द बाधा डाल देगा। दूसरे दिन उसने कहा कि अब चाहे कुत्ता आ जाए तो मैं स्वीकार कर लूंगा। लेकिन कुत्ता नहीं आया।
क्योंकि जिंदगी का कोई भरोसा नहीं है, जिंदगी रोज बदलती जाती है।
एक भिखमंगा आया, लेकिन कोढ़ी था, तो उसने दूर से कहा, दूर रह, भोजन को अपवित्र मत कर देना। फिर दो बज गए। फिर वह भागा हुआ मस्जिद गया, उसने साईं को कहाः आप आए नहीं? आज तो मैं बहुत राह देखता रहा। साईं ने कहाः आया तो आज भी, लेकिन आज कोढ़ था मेरे ऊपर। तब तो वह हिंदू संन्यासी रोने लगा। उसने कहाः तब तो बड़ी मुसीबत हो गई। फिर मैं आपको कैसे पहचान पाऊंगा? तो साईंर्ं ने उसे कहा कि तू शब्द दे देता है, इससे कठिनाई हो जाती है, वहीं अटकाव हो जाता है। तूने कल कह दिया, यह कुत्ता है, फिर मुश्किल हो गई बात। तूने आज कह दिया, यह भिखमंगा कोढ़ी है, बात मुश्किल हो गई। तू शब्द मत दे, तो मैं तुझे दिखाई पड़ सकता हूं। लेकिन हम सब शब्द देने के आदी हैं, इसलिए परमात्मा हमें दिखाई नहीं पड़ सकता है।

परमात्मा को शब्द दिए बिना ही जानना पड़ेगा। अगर धर्म के सीक्रेट को, अगर धर्म के राज को, रहस्य को किसी को भी जानना हो, तो उसे शब्द देने की जो हमारी गलत आदत पड़ गई है, उस आदत को तोड़ देना पड़ेगा। निशब्द होने की संभावना, शून्य होने की संभावना, शांत होने की संभावना विकसित करनी पड़ेगी। और तब ऐसा नहीं है कि किसी स्वर्ग में जाकर परमात्मा मिलेगा, तब वह कुत्ते में भी मिल जाएगा, भिखारी में भी मिल जाएगा, सड़क के किनारे पत्थर में भी मिल जाएगा, पड़ोस में जो आपके बैठा है उसमें भी मिल जाएगा, भीतर झांकेंगे तो स्वयं में भी मिल जाएगा।
परमात्मा का अर्थ हैः अस्तित्व। परमात्मा का अर्थ हैः वह जो है, दैट व्हीच इ.ज। परमात्मा का अर्थ हैः दि टोटेलिटी। परमात्मा कोई व्यक्ति नहीं है। परमात्मा समग्र अस्तित्व के जोड़ का नाम है। हम सबका जोड़। अगर कोई ग्रेंड टोटल हो सके, आखिरी जोड़, जहां हम सब जुड़ गए हों, तो उस जोड़ का नाम परमात्मा है। इसलिए उसे खोजने कोई हिमालय जाने की जरूरत नहीं है। और उसे खोजने कोई मक्का और काबा जाने की जरूरत नहीं है। उसे खोजने कोई काशी सहयोगी न होगी। उसे खोजना हो तो हमारे देखने का ढंग बदलना पड़ेगा।
हमारा देखने का ढंग अभी शब्दों से घिरा है, विचारों से घिरा है। उसे अगर देखना हो, तो हमें एक ऐसा देखने का ढंग खोजना पड़ेगा, ऐसी आंख जो शब्द और विचार के बाहर देखती है। जो सिर्फ देखती है, सोचती नहीं। और ऐसी तीसरी आंख ही धर्म के अनुभव में ले जाने का मार्ग बन जाती है।
तो अंतिम यह बात आपको कह दूं कि यह तीसरी आंख जो सिर्फ देखती है, सोचती नहीं, जस्ट सीइंग। लेकिन हमने देखना बंद कर दिया है। हम देखते हैं, उसके पहले सोचना शुरू कर देते हैं। जब भी हम देखते हैं, सोचना साथ में आ जाता है। हम बिना सोचे देख ही नहीं सकते।
तो फिर हमारे भीतर धार्मिक आंख भी पैदा नहीं हो सकती। बिना सोचे देखने की क्षमता विकसित करनी पड़ेगी। वही है दृष्टि, वही है दर्शन। लेकिन हम सोचने में लग जाते हैं। हम प्रत्येक चीज पर सोचते हैं। हम बिना सोचे कुछ भी कभी नहीं देखे। आप खयाल करेंगे तो बहुत हैरान हो जाएंगे। आपने कभी कुछ बिना सोचे नहीं देखा। रात आकाश में चांद हो तो आपने बिना सोचे नहीं देखा। रात का सन्नाटा हो तो आपने बिना सोचे नहीं देखा। ये तो दूर की चीजें हैं। अगर आप पति हैं तो आपने अपनी पत्नी की आंख में भी बिना सोचे नहीं देखा। अगर आप बाप हैं तो अपने बेटे की आंख को भी आपने बिना सोचे नहीं देखा। अगर आप बिना सोचे कुछ भी देखने में समर्थ हो जाएं एक क्षण को भी, तो जैसे एक झटके से द्वार खुल जाएगा। पत्नी विदा हो जाएगी और परमात्मा आ जाएगा। बेटा विदा हो जाएगा और परमात्मा आ जाएगा। वृक्ष विदा हो जाएगा और परमात्मा आ जाएगा। दीवाल खो जाएगी और परमात्मा आ जाएगा। एक क्षण को भी अगर यह बिजली कौंध जाए हमारे भीतर कि हम बिना सोचे देख पाएं, यह हो सकता है, यह हमारे खयाल में नहीं है।
जब बच्चा पहली दफा पैदा होता है, तो सोचता नहीं, सिर्फ देखता है। अगर उसके सामने आप कोई लाल रंग की चीज ले जाते हैं, तो वह ऐसा नहीं सोच पाता कि यह लाल रंग है, क्योंकि इसका तो उसे कुछ पता नहीं। वह सिर्फ देखता है। वह यह भी नहीं जानता कि यह गुनगुना है, गुड़िया है, वह यह भी शब्द नहीं जानता, वह सिर्फ देखता है।
जीसस से किसी ने पूछा था कि तुम्हारे परमात्मा को कौन देख सकेगा? तो जीसस ने कहाः जिनके पास बच्चों जैसी आंख हो। तो जीसस ने कहाः जो बच्चों जैसे सरल हैं, वही देख पाएंगे।
मैं नहीं समझता कि बच्चों जैसे सरल होने का मतलब हमारे खयाल में आ गया हो। बच्चे की एक ही खूबी है, जो बूढ़े के पास नहीं रह जाती। बच्चा बिना सोचे देख पा सकता है, बूढ़ा बिना सोचे देख ही नहीं पा सकता। बच्चे और बूढ़े में एक ही बुनियादी फर्क है। बच्चे का जो परसेप्शन है, उसका जो दर्शन है वह शुद्ध है, उसमें कोई शब्द बाधा नहीं डालता। वह सिर्फ देखता है। इसलिए बच्चे की दुनिया के आनंद का हिसाब लगाना मुश्किल है।
सभी बच्चे परमात्मा के निकट होते हैं, हमसे ज्यादा। फिर हम उनको व्यवस्था दे-दे कर परमात्मा से दूर करते चले जाते हैं। बूढ़ा आदमी बहुत दूर

पहुंच जाता है परमात्मा के। सभी बच्चे परमात्मा के निकट होते हैं। और उनके निकट होने की जो कला है वह सिर्फ इतनी है कि वे सीधा देख पाते हैं। इमिजिएट, बीच में कोई शब्द नहीं होता। उस तरफ जो दिखाई पड़ रहा है वह होता है, इस तरफ वे होते हैं, बीच में कोई शब्द नहीं होता। बीच में कोई बाधा नहीं होती। आंखें खुली और साफ होती हैं।
धार्मिक आदमी उसे कहता हूं मैं, जिसने बाद में बच्चे की आंखें फिर से
पा लीं। जिसने बच्चे जैसा इनोसेंट, निर्दोष चित्त फिर से पा लिया।
यह हो सकता है, इसमें कठिनाई नहीं है। सिवाय आदत के और कोई कठिनाई नहीं है। हमारी एक आदत है, और हम आदत के गुलाम हैं।
मेरे एक मित्र प्रिवी कौंसिल में वकील थे। एक बड़े वकील थे। उनकी आदत
थी कि जब भी वे कोई मुकदमा लड़ते, और कहीं आर्ग्युमेंट उलझ जाता, तो वह अपने कोट की बटन घुमाने लगते। वह आदत हो गई थी। जैसे ही वे कोट की पहली बटन घुमाते, उनके मन में तर्क की गति तीव्र हो जाती, वे सोच पाते। जब भी मुश्किल में होते, वे बटन घुमाते।
हममें से भी अगर कोई चिंता हो जाए, तो कोई सिर खुजलाएगा, कोई दाढ़ी पर हाथ लगाएगा, कोई कुछ और करेगा और, और राहत मिलेगी।
प्रिवी कौंसिल में एक बड़ा मुकदमा था। एक हिंदुस्तानी रियासत का मुकदमा था। और वे उस रियासत के मुकदमे में लड़ रहे थे। करोड़ों का मामला था। विरोधी वकील बहुत दिन से यह देख रहा था कि जब भी वे बटन पर हाथ रखते हैं, तब बहुत ढंग से आर्ग्यू कर पाते हैं, तब वे ठीक से तर्क कर पाते हैं। उसने उनके ड्राइवर को, शोफर को मिला लिया और कहा कि कल जब तुम अदालत में आओ, तो पहली बटन को तोड़ लाना। वह कोट तो ड्राइवर उठा कर लाता था कोर्ट तक। तुम पहली बटन तोड़ देना। उसे कुछ पैसे दे दिए होंगे। उसने वह बटन तोड़ दी। वह मेरे मित्र अपने कोट को डाल कर अदालत में खड़े हो गए और उन्होंने जिरह शुरू कर दी, और जब उलझन का मामला आया, हाथ कोट के बटन पर गया, और जैसे सब खो गया। उन्होंने मुझे कहा कि जिंदगी में पहली दफा मेरा सिर घूम गया, मुझे सब चीजें घूमती मालूम पड़ीं, मैं फौरन कुर्सी पर बैठ गया। मेरे दिमाग से सारी दलीलें ही खो गईं, वह बटन क्या खो गई, सब गड़बड़ हो गया। वह पहली दफा हारे, और हारने का कारण था, वह एक छोटी सी बटन।
लेकिन हम सोच भी नहीं सकते कि कोट की बटन से किसी अदालत में मुकदमे के जीतने का क्या संबंध? आदत। आपने शायद सुना भी न होगा, क्योंकि इतिहासज्ञ बहुत कीमती बातें छोड़ जाते हैं और व्यर्थ की बातें लिख देते हैं। नेपोलियन नेलसन से हारा, तो आपको पता भी न होगा कि क्यों हारा? एक बहुत अजीब बात से हारा। नेपोलियन नेलसन से हारा ही नहीं।
नेपोलियन छह महीने का छोटा बच्चा था, तो एक जंगली बिल्ली उसकी छाती पर
चढ़ गई थी। उसकी आया कहीं पास में गई थी, बिल्ली चढ़ गई छाती पर, आया आई, बिल्ली तो अलग कर दी, लेकिन छाती पर बिल्ली के चढ़ने से नेपोलियन घबड़ा गया। फिर वह बाद की जिंदगी में शेरों से लड़ सकता था, लेकिन बिल्ली को देख कर कंप जाता। वह छह महीने में जो अनकांशस तक, अचेतन तक बिल्ली बैठ गई छाती पर, बिल्ली को देख कर नेपोलियन छह महीने का हो जाता। उससे ज्यादा उसकी हिम्मत न रह जाती। वह युद्ध में तोप के सामने सीना लगा सकता था, लेकिन बिल्ली का पंजा बहुत खतरनाक चीज थी। जिस दिन वह हारा, नेल्सन सत्तर बिल्लियां अपनी फौज के सामने बांध कर ले गया था। दुश्मन जो जीता, वह बिल्लियां बांध कर ले गया था। क्योंकि यह किसी तरह पता चल गया था कि वह बिल्ली से डरता है। और जब नेपोलियन ने बिल्लियां देखीं, तो उसने अपने पड़ोस के सेनापति को कहा कि तुम सम्हालो, मेरा होश खो गया, अब मेरी ताकत नहीं है लड़ने की, मेरे हाथ-पैर कंपते हैं। यह इस पर मेरा कोई काबू नहीं है। यह बिल्ली कैसे ले आया है नेलसन? आज जीत मुश्किल है। नेपोलियन पहली दफा हारा। आखिरी हार और पहली हार थी वह। लेकिन हम कहेंगे, बिल्ली को देख कर हार जाना सिर्फ आदत की बात है। मनुष्य के मन पर भी शब्द की आदत है। सिर्फ आदत की बात है। हम परमात्मा
को खो रहे हैं, एक गलत आदत की वजह से कि हमारे पास थॉटलेस विजन नहीं है। हमारे पास विचार रहित दर्शन और दृष्टि नहीं है। विचार रहित दर्शन का नाम ही ध्यान है, मेडिटेशन है। अगर विचार रहित हम देख पाएं, तो हमें परमात्मा

अभी और यहीं दिखाई पड़ सकता है। धर्म को खोजने कहीं दूर जाने की जरूरत नहीं है। धर्म को खोजने अगर जाना हो तो अपने मन की गलत आदत को समझने और उससे ऊपर उठ जाने की बात है। परमात्मा को हमने खोया नहीं है। मन की गलत आदत के कारण एक जाल पैदा हो गया है और हम उसमें खो गए। ऐसा लगता है कि हम खो गए।
एक छोटी सी कहानी और अपनी बात मैं पूरी करूंगा।
मैंने सुना है कि एक बहुत बड़ा महाकवि एक रात नाव पर बजरे में यात्रा
कर रहा था। उसने एक मोमबत्ती जला रखी थी। और मोमबत्ती के प्रकाश में एक किताब पढ़ रहा था। वह किताब एस्थेटिक्स पर थी, सौंदर्यशास्त्र पर थी। वह आधी रात तक किताब पढ़ता रहा। थक गया, ऊब गया, किताब बंद करके फूंक मार कर मोमबत्ती बुझा दी। जैसे ही उसने मोमबत्ती बुझाई, वह दंग रह गया। जब तक मोमबत्ती जल रही थी, तो उसे पता ही नहीं था कि बाहर पूर्णिमा की रात है। पूरा चांद बाहर आकाश में है। और झील पर, चारों तरफ सौंदर्य बरस रहा है। उसे पता ही नहीं था। वह अपनी किताब, किताब में खोया था।
अब किताबों में सौंदर्य नहीं होता। वह अपनी किताब में खोया था, लेकिन सौंदर्य शास्त्र पर किताबें होती हैं। और सौंदर्य किताबों में नहीं होता।
सौंदर्य कहीं बाहर बरस रहा है, चारों तरफ फैल रहा है। लेकिन वह किताब में डूबा हुआ था। और मोमबत्ती जल रही थी, तो मोमबत्ती के कारण चांद का प्रकाश भीतर भी नहीं आ रहा था। खिड़कियों के बाहर ठहर गया था। जैसे ही मोमबत्ती बुझी, खिड़कियों से, द्वार से, दरवाजे से, रंध्र-रंध्र से, छेद-छेद से चांद भीतर आकर नाचने लगा। वह कवि तो चौंक गया। वह कवि भी नाचने लगा। उस कवि ने अपनी डायरी में लिखा है कि मैं भी कैसा पागल हूं, सौंदर्य चारों तरफ मौजूद था, लेकिन मैं एक किताब में उसे खोज रहा था। सौंदर्य चारों तरफ बरस रहा था। और मैं शब्दों में खोज रहा था। सौंदर्य चारों तरफ जल रहा था, खिल रहा था, और मैं एक धीमी सी मोमबत्ती जलाए हुए, उसको रोके हुए था।
जिस दिन परमात्मा का आपको पता चलेगा, उस दिन आपको यह भी पता चलेगा, परमात्मा चारों तरफ बरस रहा है। लेकिन आप शब्दों की किताब में, विचारों की किताब में, कहीं उलझे हुए हैं और अपने अहंकार की मोमबत्ती को जला कर बैठे हैं। उस अहंकार की एक छोटी सी रोशनी भी--पीली है रोशनी, गंदी है, धुआं देती है।
लेकिन उस पीली रोशनी में, अहंकार की, परमात्मा की, चांद की रोशनी-- जिसमें धुआं भी नहीं, पीलापन भी नहीं, गंदगी भी नहीं, जो सदा ताजी है, कभी बासी नहीं होती--वह परमात्मा की रोशनी बाहर खड़ी राह देख रही है। कब आप अपनी मोमबत्ती बुझाते हैं। लेकिन हम अपनी मोमबत्ती को और सम्हाले जा रहे हैं। उसको और बढ़ाए जा रहे हैं कि कहीं मोमबत्ती न बुझ जाए। और हम अपनी किताब में और डूबे जा रहे हैं।
ज्ञान किताबों में नहीं है। धर्म का ज्ञान किताबों में नहीं है। विज्ञान का ज्ञान किताबों में है। इसलिए विज्ञान लाइब्रेरी में मिल सकता है, लेबोरेटरी में मिल सकता है, युनिवर्सिटी में मिल सकता है। धर्म की कोई लाइब्रेरी नहीं, कोई लेबोरेटरी नहीं, कोई युनिवर्सिटी नहीं। वह कहीं भी नहीं मिल सकता। क्योंकि वह किताब में नहीं है। इसलिए हम सब चीजों की शिक्षा दे सकते हैं--एग्रीकल्चर पढ़ा सकते हैं, केमिस्ट्री पढ़.ा सकते हैं, फिजिक्स पढ़ा सकते हैं, फिलासफी पढ़ा सकते हैं, सिर्फ रिलीजन नहीं पढ़ाया जा सकता।
धर्म नहीं पढ़ाया जा सकता। क्योंकि धर्म तो चारों तरफ मौजूद है। उसको जानने के लिए तो हमें अपने मन की आदत को, कंडिशनिंग को, मन का जो हमारा ढंग है, उसको बदल देना पड़ेगा। खयाल आ जाए, तो बदल देना कठिन नहीं है। जब फूल के पास से गुजरें, तो कृपा करके दो क्षण कोई नाम न लें, सिर्फ उसको देखें--जो है। और तब फूल अचानक नया हो जाएगा। और उसकी पंखुड़ियां परमात्मा की पंखुड़ियां हो जाएंगी। और जब रात आकाश की तरफ देखें, तो तारों को नाम न दें, तारा भी मत कहें, सिर्फ देखें, जस्ट सीइंग। और तब तारों से इतनी शांति बरसने लगेगी, जो परमात्मा की है। और जब किसी आदमी के चेहरे में झांकें, तो नाम मत दें, हिंदू-मुसलमान मत कहें, जाति न दें, कुछ नाम न दें, सिर्फ आंख

में झांके। अगर एक आदमी की आंख में भी चुपचाप आप झांकने में समर्थ हो जाएं, तो आपने परमात्मा की आंख में झांक लिया। उसके बाद भूलना मुश्किल हो जाएगा कि जो देखा है वह कौन था।
इसलिए धर्म मेरे लिए एक अनुभव है, एक एक्सपीरिएंस। उसे आप करें तो ही जान सकते हैं। उसे कोई बता नहीं सकता। उसे बताने का कोई उपाय कभी नहीं रहा। लेकिन फिर मैं क्या कर रहा हूं घंटे भर से? अगर उसे बताया नहीं जा सकता, तो मैं घंटे भर आपको क्यों कुछ कह रहा हूं? उसे बताया नहीं जा सकता, लेकिन उसकी तरफ प्यास जगाई जा सकती है। मैं आपको सरोवर पर नहीं पहुंचा सकता, लेकिन सरोवर है, इसकी गवाही दे सकता हूं। मैं आपको पानी तक नहीं ले जा सकता, लेकिन आपके भीतर प्यास है, उसे उकसा सकता हूं।
दुनिया के सारे श्रेष्ठ पुरुषों ने, कृष्ण हों, क्राइस्ट, नानक, बुद्ध--सत्य नहीं दिया, सिर्फ सत्य की प्यास जगाई है। परमात्मा नहीं दिया, सिर्फ परमात्मा की प्यास जगाई है। और अगर प्यास जग जाए, तो आप खुद ही उस सरोवर पर पहुंच जाएंगे। क्योंकि वह सरोवर दूर नहीं है, आपके घर के ठीक पीछे है। जरा गर्दन मुड़ाएं और पीछे देखें और वह सरोवर है।
लेकिन प्यास ही न हो तो हम गर्दन क्यों मुड़ाएं। प्यास हो तो गर्दन भी मुड़ जाए। प्यास हो तो सरोवर को भी खोजें, प्यास ही न हो तो। लेकिन प्यास है, हमने उस प्यास को भी झूठे नाम दे दिए हैं। एक आदमी चाहता है कि मैं सबसे ऊंचे पद पर पहुंच जाऊं। यह झूठा नाम दे दिया उसने। वह कितने ही बड़े पद पर पहुंच जाए, कुछ भी न होगा, प्यास जारी रहेगी। क्योंकि एक ही पद है जो सब प्यास मिटा दे वह परमात्मा का पद है। उसके पहले कोई प्यास नहीं मिटेगी। एक आदमी कहता है कि मैं बहुत धन इकट्ठा कर लूं।
अमरीका में एक अरबपति मरा, एण्ड्रू कारनेगी। उसके पास मरते वक्त कोई
दस अरब रुपयों की संपत्ति थी। किसी मित्र ने उससे कहा कि तुम तो तृप्त हो गए होओगे। तुम तो बहुत छोड़ जा रहे हो। एण्ड्रू कारनेगी ने क्रोध से देखा और उसने कहाः क्या खाक छोड़े जा रहा हूं, केवल दस अरब रुपये, मेरा इरादा सौ अरब रुपये कमाने का था।
उसने ऐसे कहा जैसे दस नये पैसे। लेकिन क्या सौ अरब रुपये उसके पास होते, तो कोई फर्क पड़ जाता? कोई भी फर्क न पड़ता। इच्छा और आगे चली जाती, वह कहती, हजार अरब रुपये चाहिए, करोड़ अरब रुपये चाहिए। वह इच्छा आगे बढ़ जाती। लेकिन क्या करोड़ अरब रुपये मिल जाते तो बात पूरी हो जाती?
नहीं, हमारे प्राण किसी ऐसी संपत्ति के लिए लालायित हैं जो अनंत है।
और हम, हम कुछ गलत खोज रहे हैं। परमात्मा को पाकर ही धन की दौड़ मिटती है, उसके पहले नहीं मिट सकती, क्योंकि वह परम धन है। उसके बाद फिर किसी संपदा की कोई जरूरत नहीं रह जाती। पद की दौड़ भी उसे पाकर मिटती है, क्योंकि वह परम पद है। असल में परमात्मा को पाकर पाने की सारी दौड़ मिट जाती है। लेकिन हमें पता ही नहीं है, हमने प्यास को भी गलत नाम दे दिए हैं, कोई आदमी कहता है, मुझे धन पाना है। असल में वह यह कह रहा है कि मैं निर्धन होने से राजी नहीं हूं।
लेकिन क्या आपको पता है? कितना ही धन पा लें तो भी निर्धन रह जाएंगे।
धन पाने से कोई निर्धनता नहीं मिटती। इधर धन इकट्ठा हो जाता है, उधर भीतर निर्धन आदमी निर्धन ही बना रहता है। और कई दफा तो ऐसा होता है कि गरीब आदमी कम निर्धन होता है, अमीर आदमी ज्यादा निर्धन होता है। उसकी गरीबी और भी गहरी हो जाती है।
बड़े पद पाने से क्या फर्क पड़ जाएगा, कुर्सियां ऊंची हो जाएंगी, और ऊंची हो जाएंगी, क्या फर्क पड़ जाएगा? कुर्सियां दिल्ली तक पहुंच जाएंगी, क्या फर्क पड़ जाएगा? कुर्सी के पैर बड़े होते जाएंगे। बचकानी बात है, चाइल्डिस्ट! छोटे बच्चे अपने बाप के पास कुर्सी पर खड़े हो जाते हैं और कहते हैं, देखा, आपसे बड़ा हो गया हूं। बाप हंस कर चुप रह जाता है। कुर्सियों पर खड़े हुए लोग भी यह कहते हैं, देखा, आपसे बड़े हो गए हैं। कुर्सी पर खड़े हो गए हैं। मिनिस्टर हो गया हूं, राष्ट्रपति हो गया हूं। यह हो गया हूं, वह हो गया हूं। वह कुर्सी पर चढ़े हुए बच्चें हैं जो पास-पड़ोस के

लोगों से कह रहे हैं कि हम बड़े हो गए हैं। लेकिन उनके भीतर कुछ फर्क नहीं पड़ा, वही, सब वही क्षुद्रता, वही दीनता, वही, वही तकलीफ।
परमात्मा को पाए बिना आदमी शांत नहीं होता। नहीं हो सकता। लेकिन हमने अपनी परमात्मा की खोज को भी डाइवर्ट किया हुआ है। बहुत से नये-नये डाइवर्सन्स दिए हुए हैं। और न मालूम क्या-क्या नाम दिए हुए हैं। इतना ही किया जा सकता है कि आपकी सारी इच्छाओं को उनके सही रूप में बताया जा सके। आदमी की गहरी इच्छा न तो धन की है, न पद की। आदमी की गहरी इच्छा परमात्मा की है। और जिस दिन आपको दिखाई पड़ जाएगा कि मेरी इच्छा परमात्मा की है, उसी दिन आपकी जिंदगी में एक क्रांति हो जाती है। आपके भीतर धार्मिक आदमी का जन्म शुरू हो जाता है। और जिस दिन आपको यह समझ में आ जाएगा कि मैं शब्दों के जाल में उलझ गया हूं, तो शब्दों का जाल अगर तोड़ा जा सके, तो शब्दों के बाहर उठते ही आदमी सत्य की दुनिया में पहुंच जाता है।
जहां कोई शब्द नहीं है, वहां सत्य है। जहां परम मौन है, वहां सत्य है। जहां सत चित्त है, वहां प्रभु का मंदिर है।
ये थोड़ी सी बातें मैंने कहीं, मेरी बातों को मत पकड़ लेना। क्योंकि बातों को पकड़ने से ही बहुत नुकसान हो गया है। बातों को मत पकड़ लेना, इशारों को मत पकड़ लेना। जिस तरफ मैंने इशारा उठाया, जिस तरफ अंगुली उठाई, वह मुझे भूल जाना, मेरे शब्द भूल जाना। उस चांद की तरफ आंख उठाना जो कि वहां है। सदा आपकी प्रतीक्षा कर रहा है। और जिस दिन उस चांद पर आप पहुंच जाते हैं उसी दिन हमारे जीवन में धन्यता की वर्षा हो जाती है--अमृत की, जीवन की। धर्म के अतिरिक्त कोई आनंद नहीं है। और धर्म के अतिरिक्त कोई शांति नहीं है। और धर्म के अतिरिक्त कोई अमृत नहीं है। बाकी सब हम जहर पीए चले जा रहे हैं।

मेरी बातों को इतनी शांति और प्रेम से सुना, उससे बहुत अनुगृहीत हूं।
और अंत में सबके भीतर बैठे परमात्मा को प्रणाम करता हूं। मेरे प्रणाम स्वीकार करें।

विज्ञान, धर्म और कला
पांचवां प्रवचन

प्रेम और अपरिग्रह

अगर किसी भवन में आग लगी हो और उसके भीतर बैठ कर हम विचार करते हों, तो विचार करने में जैसा संकोच होगा, वैसा आज के मनुष्य और आज की मनुष्यता के सामने कुछ विचार रखने में संकोच होना चाहिए। मनुष्य बहुत संकट में है। और शायद विचार करने की उतनी बात नहीं, जितनी कुछ करने की बात है। जैसे हम सारे लोग एक बड़े आग से लगे हुए भवन के बीच घिर गए हैं। और यदि कुछ बहुत शीघ्र नहीं किया जा सका, तो शायद मनुष्य के बचने की कोई संभावना नहीं रह जाएगी। यही कारण है कि जहां धर्म का सवाल उठता हो, तो मैं ईश्वर की, आत्मा की, स्वर्ग की और नरक की बातें करना अर्थहीन मानता हूं।
आज धर्म के लिए सर्वाधिक विचारणीय मनुष्य है। और मनुष्य के बाद कुछ
और विचारणीय हो सकता है? न ईश्वर, न आत्मा, न मोक्ष, मनुष्य आज सर्वाधिक विचारणीय है। मनुष्य, इतना संकट और समस्या कभी भी नहीं बना था पूरे मनुष्य के इतिहास में। जैसी मनुष्य की स्थिति आज है, वैसी कभी न थी। और हममें से बहुत लोगों को शायद दिखाई न पड़ता हो, क्योंकि समस्याएं देखने के लिए भी आंखें चाहिए। समाधान तो अंधे भी याद कर लेते हैं, समस्याएं देखने के लिए बहुत आंख की जरूरत है।
और इस समय दुनिया में बहुत कम लोग हैं जिन्हें समस्याएं दिखाई पड़ती हों। ऐसे बहुत लोग हैं जो समाधान देने को तैयार हैं। समाधान सभी को स्मरण हो गए हैं। लेकिन यह भी स्मरण रहे कि बीते कल के समाधान आज के काम नहीं आते हैं। और यह भी स्मरण रहे कि समय जैसे बदलता है वैसे समाधान को नित-नूतन हो जाना पड़ता है। समाधान के प्राण चाहे कितने ही प्राचीन हों, लेकिन उसकी सब रूप-रेखाएं नवीन हो जाती हैं।
हमारी आज की दशा और संकट में बड़े से बड़ा दुख यह है कि समाधान पुराने हैं, समस्याएं नई हैं। और समाधान सभी लोगों को स्मरण हो गए हैं, और समस्याएं देखने की आंखे बहुत कम लोगों में हैं। क्या है समस्या आज मनुष्य के सामने, वह भी ठीक से दिखाई नहीं पड़ रहा है।
कुछ लोग समझते हैं समस्याएं राजनैतिक हैं, इसलिए कोई राजनैतिक हल खोज लेने से सारी दिक्कत समाप्त हो जाएगी। वे गलत सोचते हैं। मनुष्य की समस्याएं मूलतः राजनैतिक नहीं हैं। कुछ लोग सोचते हों आर्थिक समस्याएं हैं, वह हल हो जाएंगी, तो मनुष्य का जीवन शांति से भर जाएगा। वे भी भ्रांति में हैं। मात्र अर्थ की कितनी ही उपलब्धि, संपत्ति और संपदा की कितनी ही सुविधा मनुष्य के चित्त से दुख को और पीड़ा को और संताप को विसर्जित नहीं करती हैं।
मनुष्य की मूल समस्या कहीं न कहीं आध्यात्मिक है। कहीं बहुत गहरे में मनुष्य के आत्यंतिक अंतःस्तल से संबंधित है। और उसे देखने के लिए जैसी गहरी आंख चाहिए, वैसी गहरी आंख का अभाव है। हम बहुत छिछला और ऊपर देखते हैं और गहरे प्रवेश नहीं करते। शायद यही कारण हो कि हम गहरे देखना नहीं चाहते हैं। क्योंकि गहरा देखना साहस का काम है। और गहरे देखने के लिए साहस ही नहीं बल्कि यह संभावना भी स्वीकार कर लेनी चाहिए कि हो सकता है समस्या ऐसी हो कि उसका समाधान भी न हो सके। यह संभावना स्वीकार करके ही कोई व्यक्ति मनुष्य के भीतर गहरे देख सकता है।
छिछली बुद्धि तत्काल बिना समस्या को देखे समाधान को स्वीकार कर लेती है। क्योंकि न तो साहस होता है और न यह स्वीकार करने की हिम्मत होती है। कि हो सकता है समस्या ऐसी हो कि उसका कोई समाधान ही न हो। इस डर से कि कहीं ऐसी अबूझ स्थिति खड़ी न हो जाए। हम पुराने रटे हुए समाधानों को दोहराते चले जाते हैं। इससे मनुष्य की विवेक की शक्ति तो हमेशा अतीत से उधार ली हुई होती है और समस्याएं वर्तमान की होती हैं; जिनमें कोई मेल नहीं बैठ पाता। जो लोग अतीत के आधार पर चिंतन करते हैं, वे कभी वर्तमान के किसी उलझन को सुलझाने में समर्थ नहीं हो सकते।

अगर समस्याएं आज हैं, तो आज ही हमारा सध्यविवेक जाग्रत होना चाहिए। अगर मुसीबत इस समय खड़ी है तो इसी समय हमारे भीतर उस मुसीबत के मुकाबले के लिए विवेक का जागरण होना चाहिए। अतीत के विचार काम नहीं देंगे। और परंपरा से उपलब्ध हुए समाधान सहयोगी नहीं हो सकते हैं, यह प्राथमिक रूप से आपसे कहूं। क्योंकि आज सबसे ज्यादा उलझन और सबसे ज्यादा कठिनाई इसी बात में हो गई है।
आपसे कोई भी पूछे, आपको शास्त्र स्मरण हैं--आपको गीता, कुरान और बाइबिल याद हो गए हैं। और तत्क्षण आप उन याद की हुई बातों में से कुछ बातें समाधान के लिए सामने रख देते हैं, वे बातें काम नहीं देंगी।
जैसे प्रतिक्षण जीवन नया होता जाता है, वैसे प्रतिक्षण सत्य भी नये- नये रूपों में प्रकट होता है। वैसे ही सत्य भी अपने रूपांतर कर लेता है। और यह अगर नये सत्य का आविर्भाव आपके भीतर न हो सके, तो संकट मनुष्य का टाला नहीं जा सकेगा।
मैं यह नहीं कह रहा हूं कि सत्य नया है या पुराना है। सत्य तो शाश्वत
है और सनातन है। लेकिन प्रत्येक युग में सत्य की अभिव्यक्ति, उसका प्रकाशन, उस युग की मनोस्थिति में सदा नये रूप से होता है।
मैं यह कह रहा हूं कि जिस तरह प्रत्येक व्यक्ति को अपना जीवन खुद पाना होता है, मां-बाप का जीवन, बीती हुई पीढ़ियों का जीवन किसी को नहीं मिलता, अपनी श्वास खुद लेनी पड़ती है, कोई दूसरा मनुष्य मेरे लिए श्वास नहीं ले सकता। वैसे ही मेरे सत्य का आविष्कार मुझे ही करना होगा। कोई दूसरा मनुष्य, महावीर या बुद्ध, या कृष्ण, या क्राइस्ट मेरे लिए श्वास नहीं ले सकते, मेरे लिए सत्य भी नहीं बन सकते हैं। जिस क्षण मैं आविष्कार करूंगा अपने सत्य को, यह निश्चित है कि वह सत्य वही होगा, जो कृष्ण का है, क्राइस्ट का है, बुद्ध का और महावीर का है। लेकिन उनसे मैं उसे उधार नहीं ले सकता। उसे आविर्भाव तो मुझे स्वयं में करना होगा। जब वह जागेगा और मैं जानूंगा, तो वह केवल मेरे सत्य के साक्षी और गवाह हो जाएंगे।
कृष्ण और क्राइस्ट केवल मेरे भीतर उठे हुए सत्य के गवाह हो सकते हैं, साक्षी हो सकते हैं; वह मुझे सत्य देने वाले नहीं हो सकते हैं। इस जगत में कोई मनुष्य किसी दूसरे मनुष्य को न कभी सत्य दिया है, और न कभी दे सकेगा। और यह शुभ भी है। अगर कोई दूसरा सत्य को दे सके, तो दूसरा सत्य को छीन भी ले सकता है। दूसरे के दिए गए सत्यों का कोई मूल्य नहीं। सत्य को तो अपने ही प्राणों की ऊर्जा से, अपने ही निर्वाण से उपलब्ध करना होगा।
और इसलिए भी यह मैं आपसे कहूं कि सत्य कोई ऐसी चीज नहीं है कि हमसे दूर हो, कि हम उसे पा लें, वह तो स्वयं का ही निखार और परिष्कार है। वह तो स्वयं के ही प्राणों की अंतिम परिष्कृति है।
अंतिम रूप से जब स्वयं के प्राण परिपूर्ण रूप से शुद्ध हो जाते हैं तो
उस शुद्धतम प्राणों की दशा में जो अनुभूति होती है, उसका नाम सत्य है। सत्य कहीं कोई बाहर कोई उपलब्धि नहीं बन सकती। सत्य कोई अचीवमेंट नहीं है कि हम उसे बाहर कहीं पा लें। सत्य तो आत्म-परिष्कार है।
इसलिए मैं आपसे कहूं: युग की, मनुष्य की, आज की जो संकट की दशा है, उस संकट की दशा में सबसे महत्वपूर्ण विचारणीय बात यह है कि हमारे सत्य तो उधार लिए हुए हैं और समस्याएं हमारी हैं। सत्य तो कृष्ण, क्राइस्ट और महावीर के दिए हुए हों और समस्याएं हमारी हों; उन दोनों के बीच सामंजस्य नहीं होगा। औषधियां पुरानी हैं, और बीमारियां नई हैं। और उन दोनों के बीच कोई मेल नहीं बैठता।
इसलिए मनुष्य आज एक बड़ी आंतरिक अड़चन में पड़ गया है। इसका ही कारण है-- इतने मंदिर हैं, इतने मस्जिद हैं, इतने पंथ हैं, इतने संप्रदाय हैं, इतनी चर्चा है धर्मों की, लेकिन जमीन पर धर्म खोजे से भी नहीं मिलेगा। इतनी विचारणा है, इतना प्रकाशन है, इतना साहित्य है, इतने उपदेश हैं; लेकिन धर्म कहीं भी खोजे से नहीं मिलता। उसके पीछे कारण यही है, धर्म कभी उपदेश, विचार, ग्रंथों, शास्त्रों, मंदिरों-मस्जिदों में नहीं होता। वह तो प्रत्येक व्यक्ति को अपनी निजी सत्ता में आविष्कार करना होता है। और जब वहां पाया जाता है तो सब जगह दिखाई पड़ने लगता है।

एक ऐसे रास्ते पर जहां सूरज ही सूरज हों, लेकिन मेरे भीतर अंधेरा हो, मेरे लिए वह सारा रास्ता अंधेरा हो जाएगा। और एक ऐसे रास्ते पर जहां घनी अमावस हो और सब अंधकार हो, लेकिन मेरे भीतर एक दीया जलता हो, वह सारा रास्ता कितना ही लंबा हो, मेरे लिए प्रकाशित हो जाएगा। जगत में अंधकार होगा, अगर मनुष्य की निजी सत्ता में अंधकार हो; और जगत में प्रकाश होगा, अगर मनुष्य की निजी सत्ता में प्रकाश हो।
बहुत दिन हुए एक साधु अपने घर आए हुए एक मेहमान साधु को नदी पर नौका- विहार के लिए ले गया था। रात थी। वे दोनों नौका में बैठे। जैसे ही वे नौका में बैठे, उस साधु ने जिसका आश्रम था, और दूसरा साधु जिसका मेहमान था, पतवार अपने हाथ में ली। उस मेहमान ने कहाः क्षमा करें, कोई किसी दूसरे की पतवार अपने हाथ में नहीं ले सकता। मेरी पतवार मुझे दे दें।
यह एक घटना घटी, पतवार दे दी गई।
कुछ दिनों बाद जब वह दूसरा मेहमान विदा होता था, रात का अंधकार था, उसने कहाः रात अंधेरी है और मैं कैसे जाऊं? रास्ता अंधेरा है और सुनसान है, कोई साथ भी नहीं। उस मेजबान साधु ने कहाः मैं तुम्हें थोड़ी दूर तक पहुंचा दूंगा। और मैं तुम्हें दीया जला देता हूं, उस दीये को ले जाएं, रास्ता प्रकाशित हो जाएगा। दीया जला कर उसने विदा होते अतिथि के हाथ में दिया। सीढ़ियां भी वे आश्रम की उतर नहीं पाए थे कि जिसने दीया जला कर दिया था, उसी ने सीढ़ियां उतरने के पहले ही फूंक कर दीये को बुझा दिया। वह अतिथि बुझे हुए दीये को हाथ में रख कर बोलाः यह क्या करते हैं? उस साधु ने कहाः जब तुम्हारी नाव की पतवार कोई दूसरा नहीं चला सकता, तो तुम्हारे लिए प्रकाश का दीया कोई दूसरा कैसे जला सकता है? और जब नाव की पतवार तुम्हीं चलाओगे, तो इस अंधकार में तुम्हारा संगी और साथी कौन हो सकता है? वहां भी अकेले ही यात्रा करनी होगी।
सत्य की यात्रा निपट अकेली है। वहां न कोई संगी है, न कोई साथी है।
जहां संग है और साथ है, उसी का नाम संसार है। और जहां कोई संग और साथ नहीं है, उसी का नाम धर्म है।
धर्म की यात्रा निपट अकेली है।
इस भ्रांति में कोई न रहे कि कोई भी वहां सहयोगी और साथी हो सकता है।
उस जगत में कोई सहयोगी और साथी नहीं हो सकता। और इसलिए धर्म परम पुरुषार्थ है। क्योंकि जिनका परम पुरुषार्थ होगा, वे ही केवल अकेले जाने को राजी हो सकते हैं। अज्ञात-सत्य के लोक में, अज्ञात-आत्म के लोक में, केवल वे ही प्रवेश कर सकते हैं जिन्हें अकेले सागर पर निकल जाने की क्षमता हो। और एक ऐसे सागर पर जिसका कोई कूल-किनारा पता नहीं। एक ऐसे सागर पर जिसका कोई अंत पता नहीं। अकेली यात्रा, परम साहस, परम पुरुषार्थ को मांगती है।
सत्य की खोज में, धर्म की खोज में मनुष्य को कोई साथ और सहयोग नहीं मिल सकता। न शास्त्र का, न शास्ताओं का। लेकिन हम जब भी धर्म में उत्सुक होते हैं, तो भूल से हम धर्म में नहीं धर्मग्रंथों में उत्सुक हो जाते हैं। धर्म और धर्मग्रंथों में भेद है। और जब हम धर्म में उत्सुक होते हैं, तो धर्म में नहीं संप्रदायों में उत्सुक हो जाते हैं। जब कि धर्म में और संप्रदायों में भेद है। और जब हम धर्म में उत्सुक होते हैं, तो धर्म में नहीं धर्मगुरुओं में उत्सुक हो जाते हैं। जब कि धर्म में और धर्मगुरुओं में भेद है।
न तो धर्मशास्त्र धर्म है, न संप्रदाय धर्म है। और न शास्ता और गुरु धर्म है। धर्म तो निजी सत्ता में उपलब्ध होता है। शास्त्र भी बाहर है, संप्रदाय भी बाहर है, धर्मगुरु भी बाहर है। जो बाहर है, उनसे भीतर के जगत में किसी बात का आविष्कार नहीं हो सकता। जो बाहर हैं, उन्हें बाहर ही जानना होगा। और जो भीतर है, उसे भीतर जान कर उसमें प्रतिष्ठा करनी होगी, तब व्यक्ति को धर्म का बोध होता है। और वैसा बोध परम क्रांति है। वैसा बोध व्यक्ति के सारे व्यक्तित्व को, सारी जीवन दिशा को, सबको परिवर्तित कर देता है।
कैसे हम उस धर्म को अनुभव कर सकते हैं जिसकी मैं बात कर रहा हूं? जो शास्त्रों में, शास्ताओं में, संप्रदायों में नहीं मिलेगा, उस धर्म को हम

कैसे उपलब्ध कर सकते हैं? उसके संबंध में थोड़ी सी बात आपसे मेरा कहने का मन है। और यह भी मैं आपको कह दूं, अगर वैसा बोध उपलब्ध हो जाए, तो मनुष्य का संकट टल सकता है। अगर थोड़े से लोगों को भी वैसा बोध उपलब्ध हो जाए, तो हमारे युग को दृष्टि और आंखें मिल सकती हैं। और शायद हम सारी मनुष्यता को बचाने में समर्थ हो सकते हैं।
मनुष्य ने उस तरह के धर्म से सारे संबंध छोड़ दिए। लोग आपसे कहेंगे कि
इस संबंध छोड़ने के पीछे उन नास्तिकों, वैज्ञानिकों का हाथ है, जिन्होंने कहा कि ईश्वर नहीं है; जिन्होंने कहा, आत्मा नहीं है; जिन्होंने कहा, मोक्ष नहीं है। जिन्होंने सब इनकार कर दिया और कहा, केवल पदार्थ की, केवल मैटर की सत्ता है। धर्मगुरु, धर्म-पुरोहित, धर्म-उपदेशक आपसे कहेंगे, इन नास्तिकों ने, इन वैज्ञानिकों ने इन जड़वादी लोगों ने इस भौतिकवाद ने धर्म से मनुष्य को दूर हटा दिया है। यह बात बिल्कुल ही गलत है।
यह बात वैसे ही गलत है जैसे मैं अपने घर में अंधकार देख कर कहूं कि मेरे घर में तो दीये जलते थे, लेकिन अंधकार आया और उसने दीये बुझा दिए। यह बात उतनी ही गलत है, जैसे मैं कहूं कि मेरे घर में तो दीये जलते थे, प्रकाश ही प्रकाश था, लेकिन अंधकार आया और उसने मेरे दीये बुझा दिए।
कोई अंधकार दीये नहीं बुझा सकता। और कोई भौतिकवाद, कोई जड़वाद धर्म को नहीं मिटा सकता। धर्म बड़ी प्रज्ज्वलित शिखा है, सनातन शिखा है। उसे बुझाना जड़वाद के सामर्थ्य के बाहर है। सच इससे बिल्कुल विपरीत है। सच यह है जब दीये बुझ जाते हैं, तो अंधकार प्रवेश कर जाता है। सच यह है, जब धर्म शिथिल हो जाता है, तो जड़वाद प्रविष्ट हो जाता है।
जो लोग आपसे कहते हैं, भौतिकवाद के कारण धर्म शून्य हुआ है, वे गलत कहते हैं। सच यह है कि धर्म शून्य हुआ है इसलिए भौतिकवाद प्रबल हो सका है। बिल्कुल ही विपरीत बात है। और यह मैं इसलिए आपसे कहता हूं कि जो यह कहते हैं कि जड़वाद के कारण धर्म शिथिल हुआ, वह जड़वाद की शक्ति को धर्म से बड़ा समझते हैं। और अगर जड़वाद के कारण धर्म शिथिल हुआ है, तो जड़वाद तो निरंतर विकसित हो रहा है, धर्म का आगे क्या होगा?
अगर यह सच है कि जड़वाद के कारण धर्म शिथिल हुआ है, तो आगे यह भी सच हो जाएगा कि जड़वाद के कारण धर्म विनष्ट ही हो जाए। क्योंकि वह तो निरंतर विकसित हो रहा है। जड़ के संबंध में हमारी खोज निरंतर बड़ी से बड़ी होती जाती है। बुद्धि हमारी ज्यादा वैज्ञानिक से वैज्ञानिक होती जाती है। सोचने के ढंग हमारे पदार्थ के विश्लेषण के आधार पर आधृत होते चले जाते हैं, तो फिर धर्म क्या होगा?
मैं ऐसा नहीं देखता। धर्म की शक्ति विधायक है। उस विधायक शक्ति को कोई नास्तिकता, कोई भौतिकता नष्ट नहीं करती। उलटा हुआ है। लेकिन तथाकथित धर्मों के अनुयायी और उनके उपदेष्टा इस आत्मग्लानि को छिपाने के लिए-- उनके कारण धर्म पतित हुआ है--सारा दोष जड़वादियों पर और वैज्ञानिकों पर फेंक देते हैं। धर्म का संबंध मनुष्य से विच्छिन्न होने का कारण तथाकथित धार्मिक लोग हैं। धर्म के नाम पर जो भी चल रहा है। उस सबने धर्म के पतन के आधार रखे हैं। धर्म के नाम पर जो भी प्रचारित किया जा रहा है और विचारित किया जाता है, उसने धर्म की जड़ों को भूमि से अलग कर दिया है।
ऐसे धर्म को जो दिखाई पड़ रहा है चारों तरफ, कोई विवेकशील व्यक्ति स्वीकार नहीं कर सकेगा। ऐसे धर्म के नाम पर बहुत कलंक हैं। ऐसे धर्म के नाम पर सबसे बड़ा कलंक तो यह है कि जो धर्म मनुष्य को परमात्मा से जोड़ने का दावा करता है, वह धर्म मनुष्य को मनुष्य से ही तोड़ देता है। और जो मनुष्य को मनुष्य से तोड़ता हो, वह मनुष्य को परमात्मा से जोड़ने का सेतु नहीं बन सकता है।
क्योंकि परमात्मा कहां होगा? परमात्मा कोई व्यक्ति नहीं है कि कहीं आकाश में बैठा हो, परमात्मा तो समस्त में व्याप्त चैतन्य का नाम है। और जो धर्म एक चेतना को दूसरी चेतना के बीच दीवालें खड़ी करता हो, वह धर्म समग्रीभूत चेतना से एक नहीं कर सकता।
अभी मैं पीछे कल कलकत्ता था। किसी ने मुझसे वहां पूछा कि मैं किस धर्म
का हूं? मैंने कहाः जब भी कोई कहता है, किस धर्म का, तभी वह धर्म की बात

नहीं कर रहा है। और जो व्यक्ति धार्मिक है, वह केवल धार्मिक होगा। और किसी धर्म के होने का उसे कोई रास्ता, कोई उपाय नहीं है। धर्म और धर्म के बीच दीवाल नहीं हो सकती। असल में दो धर्म नहीं हो सकते। और जहां भी दो धर्म दिखाई पड़ते हों, वहां जरूर अधर्म किसी न किसी रूप में धर्म के नाम से खड़ा है। यह, यह माना जा सकता है, यह समझा जा सकता है।
सत्य के दो रूप नहीं हैं, सत्य के कोई, कोई पचास, पचास भेद और प्रकार नहीं हैं। सत्य तो एक है, धर्म भी एक है। लेकिन धर्म के नाम से यह जो अनेकता है, ये जो संप्रदाय हैं, उनके पीछे चलती हुई जो परंपरा है, उसकी स्थिति इतनी गलित, कुष्ठ की भांति हो गई है, वह इतनी सड़-गल गई है कि उसके कारण विवेकशील लोग, विचारशील लोग अगर धर्म के विपक्ष में खड़े हो जाएं तो इसमें कोई आश्चर्य मानने की बात नहीं है। इन धर्मों की तथाकथित रूप-रेखाओं ने, इनके पतन ने मनुष्य को धर्म से वियुक्त किया है। धर्म से वापस मनुष्य संयुक्त हो सके, तो उसके संकट का समाधान मिल जाएगा। उसके संकट का समाधान मिल सकता है।
जो भी मनुष्य धर्म से वियुक्त होगा, अनिवार्यरूपेण उसके जीवन में अशांति और संताप घर कर जाएंगे। धर्म मनुष्य की आंतरिक स्वास्थ्य की व्यवस्था है। धर्म मनुष्य की कोई अंधविश्वास, कोई श्रद्धा नहीं, वरन मनुष्य की आंतरिक स्वास्थ्य की व्यवस्था है। जो मनुष्य जितना धर्म से संयुक्त होगा, उतना अंतस्तल में स्वस्थ होता है। और स्वस्थ होने का अर्थ है शांति। स्वस्थ होने का अर्थ है सौंदर्य। स्वस्थ होने का अर्थ है शिवत्व। स्वस्थ होने का अर्थ है आनंद।
और जब आनंद और शांति और स्वास्थ्य भीतर इकट्ठे होते हैं, तो उस समन्वय में ही, उस शांति की स्थिति में ही मनुष्य की आंखें जड़ के ऊपर परमात्मा को देखने में समर्थ हो पाती हैं।
अशांत जो है, वह पदार्थ से गहरे नहीं देख सकता। शांत जो है, उसकी आंखें पदार्थ से परमात्मा तक प्रविष्ट हो जाती हैं। जब मुझसे कोई पूछता है, ईश्वर है? जब मुझसे कोई पूछता है कि आत्मा है? उससे मैं यह नहीं कहता कि आत्मा है या ईश्वर है, उससे मैं यही कहता हूं, तुम्हारे पास परमात्मा को या आत्मा को देखने की आंख है? या आंख नहीं है? सवाल हमेशा आंख का है।
और जितना अशांत मनुष्य होगा, जितने उसके भीतर कंपन होंगे, जितने तनाव होंगे, जितना उसके चित्त के भीतर द्वंद्व और कांफ्लिक्ट होगी, उतनी ही उसकी आंखें धुंधली हो जाती हैं। द्वंद्व धुएं की भांति आंखों को ढांक लेता है। जितना भीतर द्वंद्व होगा, जितना तनाव, टेंशन होगा, जितनी अशांति होगी, उतनी ही आंखें धुएं से भर जाएंगी, और निकट देखना भी मुश्किल हो जाएगा। हम अपने निकट भी देखने में असमर्थ हो गए हैं। हम अपने भीतर इतने उलझे और व्यस्त हैं कि आंख खोलने का सवाल ही नहीं।
मैंने एक आदमी के बाबत सुना है, बात तो झूठ ही होगी। लेकिन जिसने कही है, बड़े सोच कर कही होगी। मैंने सुना है, एक आदमी मर गया, मरने के बाद उसे पता चला कि वह जीवित था। क्योंकि जीवन में जीवन को जानने की फुरसत उसे नहीं मिली। सुना है, एक आदमी मर गया, मरने के बाद उसे पता चला कि वह जीवित था। क्योंकि जीवन में उसे इस जीवन को जानने का अवकाश नहीं मिला। इतना व्यस्त था, इतना घिरा था कि यह स्मरण भी उसे नहीं आया कि मैं जीवित हूं। यह तो जब वह मर गया, और मरने की शांति ने सब तनाव विलीन कर दिए, उस अंधकार में, उस शांति में उसे पता चला कि यह क्या हुआ? इतने दिन मैं जीवित रहा और मुझे कुछ खयाल भी न था।
हममें से अधिक लोग नहीं जान पाते कि जीवित हैं। हममें से अधिक लोग नहीं जान पाते आस-पास क्या है? हम सबकी आंखें अपने आंतरिक कलह, वह जो इनर कांफ्लिक्ट है, वह जो निरंतर द्वंद्व है भीतर, उसके कारण बंद हैं। और उस बंद होने के कारण, पदार्थ के अतिरिक्त हमें कुछ भी दिखाई नहीं पड़ सकता। पदार्थ स्थूलतम सत्ता है, इसलिए अंधे भी उससे टकरा जाते हैं तो उन्हें पता चल जाता है कि पदार्थ है। लेकिन जितनी सूक्ष्म सत्ता हो, उतनी ही सूक्ष्म दृष्टि चाहिए। और जितने सूक्ष्म प्रवेश करना हो सत्ता में, उतना ही सूक्ष्म स्वयं हो जाना चाहिए, तभी उतने ही दूर तक गति हो सकती है। एक अंधा

भी निकलेगा तो दीवाल से टकरा जाएगा। दीवाल को देखने के लिए आंखें नहीं चाहिए। टकरा जाना काफी है।
मैं आपको स्मरण दिलाऊं, दुनिया में पदार्थ मालूम होता है क्योंकि पदार्थ को जानने के लिए कोई अंतर्दृष्टि नहीं चाहिए, टकरा जाना काफी है। हम केवल उन चीजों को जान पाते हैं जिनसे हम टकराते हैं। शेष सारी सत्ता हमसे अनजान, अपरिचित रह जाती है। क्योंकि शेष सत्ता को जानने के लिए आंख चाहिए, टकराना काफी नहीं है।
पदार्थ का बोध होता है, क्योंकि पदार्थ का स्पर्श होता है। पदार्थ का बोध होता है, क्योंकि हमारी इंद्रियां उससे टकराती हैं। और उनकी टक्कर से हमें, हमें प्रतीत होता है कि कुछ है। लेकिन जहां टक्कर नहीं होती, वहां हमें लगता है कुछ भी नहीं है। जब कि सच यह है कि जहां हम नहीं टकरा रहे हैं वहीं वह है, जिसका होना अर्थपूर्ण है। और जहां हम टकरा रहे हैं वह कोई वास्तविक होना नहीं है।
लेकिन उतनी सूक्ष्म दृष्टि के लिए भीतर शांति और धुएं का हट जाना जरूरी है। क्या है धुआं? और क्या है अशांति? और कैसे वह हट सकती है? उसके तीन सूत्रों के संबंध में मैं आपसे बात करूं। उन तीन सूत्रों पर अगर जीवन, जीवनढाला जाए तो मनुष्य को सूक्ष्म में प्रवेश की आंख मिल जाती है। धुआं हटता है, आंख खुलती है और कुछ बातें देखने में सामर्थ्य मिलती है जो हमें सहज दिखाई नहीं पड़ती।
परमात्मा या आत्मा किन्हीं मनुष्यों का कोई विचार नहीं है, कोई लॉजिकल कनक्लूजन नहीं है कि कुछ लोगों ने सोचा और उन्होंने कहा ईश्वर है। जैसा कि लोग कहते हैं, ईश्वरवादियों से पूछिए, तथाकथित ईश्वरवादियों से पूछिए, तो वे इस तरह बात करेंगे जैसे ईश्वर कोई, कोई आर्ग्युमेंट से, कोई तर्कों से पहुंची गई निष्पत्ति है। वह बताएंगे दुनिया है, इसलिए इसका बनाने वाला होना चाहिए। वह बनाने वाला ईश्वर है। इस तरह गणित के ढंग से वह ईश्वर को रखते हैं, जो लोग ईश्वर के होने के लिए तर्क देते हैं, समझ लेना उन्हें ईश्वर के होने का कोई भी पता नहीं।
ईश्वर के होने का प्रश्न, तर्क का प्रश्न नहीं है। ईश्वर के होने का प्रश्न किसी अनुभूति का प्रश्न है। अगर मनुष्य के भीतर कोई सूक्ष्म संवेदना का केंद्र सक्रिय हो जाए, कोई सेंसेटिविटी, कोई रिसेप्टिविटी, कोई ग्राहकता सूक्ष्म रूप से सक्रिय हो जाए, तो इस जगत में जहां अभी केवल स्थूल पदार्थ दिखाई पड़ता है वहीं सूक्ष्म शक्ति का संचरण अनुभव होने लगता है। सारे जगत में सूक्ष्म शक्ति के संचरण का जो अनुभव है, उस अनुभूति का नाम ईश्वर है। उस सूक्ष्म शक्ति के अनुभव के लिए जरूरी है कि आंख धुएं से मुक्त हो, द्वंद्व से मुक्त हो, संघर्ष से मुक्त हो; आंख तनाव से मुक्त हो। अगर भीतर परिपूर्ण शांति हो झील की भांति, जिस पर कोई लहरें नहीं हैं, तो इस सारे जगत के रहस्य खुल जाते हैं।
इसलिए प्रश्न जगत के रहस्यों का नहीं, प्रश्न व्यक्ति के भीतर, मनुष्य के भीतर परिपूर्ण शांति की ग्राहकता का है। वह जो साइलेंट रिसेप्टिविटी है, वह जो परिपूर्ण शांत ग्राहकता है उसका है। वह है तो जगत नया हो जाता है। वह है तो जीवन दूसरा हो जाता है। वह है तो एक क्रांति फलित होती है। वह शांत ग्राहकता, वह साइलेंट रिसेप्टिविटी कैसे पैदा हो, उसके छोटे से तीन सूत्रों पर आपसे मैं बात करना चाहता हूं। वे तीन सूत्र समस्त धर्मों के केंद्रीयभूत सार-सूत्र हैं।
पहला सूत्र हैः प्रेम।
जिन लोगों ने कभी भी जीवन को जाना है या कभी भी कोई जब जीवन को जानेगा,
तो एक बहुत कीमती बहुमूल्य सूत्र उसे दिखाई पड़ेगा। और वह यह कि अगर मैं सारे जगत को प्रेम कर सकूं, तो जगत से मेरे सारे द्वंद्व, मेरे सारे संघर्ष विलीन हो जाएंगे। दूसरे व्यक्ति से मेरे संघर्ष की शुरुआत वहां है जहां दूसरे व्यक्ति से मेरा प्रेम कम पड़ जाता है। जब भी हम जगत से प्रेम के अलावा किसी दूसरी चीज से संबंधित होते हैं, तभी जगत एक उपद्रव, तभी जगत एक संघर्ष और कलह का रूप ले लेता है। जब भी मैं प्रेम के अतिरिक्त किसी और मार्ग से किसी भी व्यक्ति से संबंधित हो जाऊंगा, तभी मेरे भीतर वे संबंध

अनेक प्रकार के द्वंद्व, अनेक प्रकार के उत्ताप, अनेक प्रकार की कलह को, अनेक प्रकार के मानसिक संघर्ष और तनाव को पैदा करेंगे। मनुष्य के भीतर घृणा से ज्यादा, हिंसा से ज्यादा, क्रोध से ज्यादा और कोई चीज द्वंद्व और धुएं को पैदा नहीं करती।
जिन लोगों को सत्य को जानना हो, जिन लोगों को निज सत्ता को अनुभव करना हो, या जिन्हें पदार्थ के पार के अदृश्य लोक की अनुभूति में प्रतिष्ठित होना हो, उनके लिए प्रेम के अतिरिक्त और कोई मार्ग नहीं है।
प्रेम का अर्थ हैः जगत से शांति के, अकलह के संबंध से जुड़ जाना। केवल प्रेम है जो मुक्त करता है। साधारणतः हम सोचते हैं कि प्रेम बांधता है। जो बांधता है, वह प्रेम नहीं है। जो बांध दे, वह राग है। और मैं आपको कहूं, राग घृणा का ही रूप है। घृणा का विरोध नहीं है। और इसलिए अक्सर राग घृणा में परिणित हो सकता है।
जरा सी स्थितियां बदल जाएं, तो जिससे आपका राग था, जिसे आप प्रेम समझते थे, वही राग घृणा में परिणित हो सकता है। जरा सी परिस्थितियां बदल जाएं, तो जिसे आप समझते थे, मैं प्रेम करता हूं, उसी के प्राण लेने के ग्राहक हो सकते हैं। जो राग जरा सी विपरीत स्थिति में घृणा बन जाता है, जानना चाहिए, उस राग की पतली पर्त के नीचे सदा ही घृणा मौजूद रहती है। वह पतली पर्त फट जाए, तो घृणा प्रकट हो जाती है। राग घृणा का ही रूप है। प्रेम बड़ी दूसरी बात है। प्रेम का अर्थ हैः ऐसा संबंध, समस्त जगत के प्रति ऐसा संबंध, या किसी के भी प्रति ऐसा संबंध, जिसके घृणा में परिणित होने की कोई संभावना न हो।
गौतम बुद्ध के ऊपर एक दिन सुबह एक व्यक्ति ने आकर थूक दिया। वह क्रोध में था, बुद्ध पर गुस्से में था। उनके विचार उसे प्रीतिकर नहीं लग रहे थे। और उनकी बड़ी क्रांति दृष्टि उसे बहुत बेचैन और परेशान कर रही थी। उसने गुस्से में आकर बुद्ध के ऊपर थूक दिया। बुद्ध ने उस थूक को अपनी चादर से पोंछा और उस व्यक्ति से कहाः तुम्हें कुछ और कहना है? वह व्यक्ति बोलाः क्या आप सोचते हैं मैंने थूक कर कुछ कहा है? बुद्ध ने कहाः निश्चित ही तुमने कुछ कहा है। शायद तुम इतने क्रोध में थे कि शब्द कहने में उस क्रोध को असमर्थ रहे होंगे, इसलिए तुमने थूक कर कहा है। लेकिन तुमने कुछ कहा, वह मैं समझ गया। और कुछ कहना है? वह व्यक्ति हतप्रभ हुआ होगा। उस दिन चुपचाप वापस लौट गया।
दूसरे दिन बुद्ध से क्षमा मांगने आया और उसने कहा कि मुझे क्षमा करें। बुद्ध ने कहाः क्यों क्षमा मांगते हो? उस व्यक्ति ने जो कहा, वह विचारणीय है। उस व्यक्ति ने कहाः इसलिए कि मुझे सदा आपका प्रेम उपलब्ध हुआ है। और कल जब मैं लौटा तो मुझे लगा, अब शायद आपसे मुझे प्रेम संभव नहीं रह जाएगा। आप मुझे अब प्रेम आगे नहीं दे सकेंगे। सदा जो प्रेम उपलब्ध रहा है, वह समाप्त कर लिया मैंने अपने हाथ से। बुद्ध हंसने लगे और उन्होंने कहाः क्या तुम सोचते हो, मैं तुम्हें इसलिए प्रेम करता था कि तुम मेरे ऊपर नहीं थूकते थे? बुद्ध ने कहाः क्या तुम सोचते हो, मैं तुम्हें इसलिए प्रेम करता था कि तुम मेरे ऊपर नहीं थूकते थे? इसलिए प्रेम अगर करता होता, तो प्रेम टूट सकता था।
स्मरण रखें, जिस प्रेम में कारण है वह किसी भी दिन घृणा में परिणित हो सकता है। जिस प्रेम में शर्त है, वह प्रेम घृणा में किसी भी दिन परिवर्तित हो सकता है। जिस प्रेम के पीछे कारण हैं, वह प्रेम कभी होगा, कभी नहीं भी हो सकता है। इसलिए जिस प्रेम में कारण हैं, उसे मैं राग कहूंगा; जो प्रेम अकारण है, वही केवल प्रेम है; जिसके पीछे कोई शर्त, कोई कंडीशन, कोई कारण नहीं है।
तो बुद्ध ने उसे कहा कि मैं तुम्हें अब भी प्रेम करूंगा, क्योंकि मैं प्रेम करने को विवश हूं। मैं कुछ और कर ही नहीं सकता। यह मत सोचना कि तुम्हारे कारण तुम्हें प्रेम करता था। मैं अपने कारण ही प्रेम करता हूं। मैं प्रेम करने को विवश हूं, कुछ और करने का उपाय नहीं है। तुम्हारा कुछ भी करना, अच्छा या बुरा, शुभ या अशुभ, मेरे हित में या अहित में, मेरे प्रेम को परिवर्तित नहीं कर सकता। तुम मेरे प्रेम को बदलने में समर्थ नहीं हो सकते

हो। क्यों? क्योंकि तुम्हारे किसी भी कारण से मैंने तुम्हें प्रेम नहीं किया।
प्रेम मुझसे वैसे ही है, जैसे दीये से प्रकाश गिरता है। दुश्मन निकलता है पास से या मित्र निकलता है, इससे भेद नहीं पड़ता। भला आदमी निकलता है या बुरा आदमी निकलता है, इससे भेद नहीं पड़ता। अपना निकलता है या पराया निकलता है, इससे भेद नहीं पड़ता। दीये का प्रकाश तो जो भी निकलता है, उस पर गिरता है। और अगर कोई भी न निकले और निर्जन कक्ष हो तो भी, तो भी दीये का प्रकाश गिरता है।
बुद्ध ने कहाः प्रेम मैं उसे कहता हूं, जो गिरे, बिना इस विचार के कि किस पर गिरता है। बिना इस विचार के कि किस कारण से गिरता है। बिना इस विचार के कि कोई मौजूद है या मौजूद नहीं है। समस्त जगत के प्रति मंगल की भावना प्रकाश की भांति गिरती रहे, वह उसका परिणाम होता है, उसका परिणाम होता है। ऐसा व्यक्ति इस जगत के प्रति द्वंद्व से मुक्त हो जाता है। और जो व्यक्ति जगत के प्रति द्वंद्व से मुक्त हो, उसके भीतर मन के सारे द्वंद्व क्षीण होने लगते हैं। वह जो धुआं पैदा होता है, वह विलीन होने लगता है।
दुनिया के जिन सतपुरुषों ने प्रेम या अहिंसा, या करुणा, या दया की बातें कही हैं, इस खयाल में न रहें कि वे कोई सामाजिक नैतिकता की बातें हैं। वह सब साधना के केंद्रीय अंग हैं। क्योंकि प्रेम के अतिरिक्त कोई मनुष्य कभी शांत नहीं हो सकता। प्रेम के अतिरिक्त कोई मनुष्य भीतर उस स्थिति को पैदा नहीं कर सकता कि परमात्मा को जानने में समर्थ हो जाए। इसलिए क्राइस्ट ने कहा है कि अगर कोई मुझसे जोर ही देकर पूछे कि परमात्मा की मैं क्या परिभाषा करूं? तो मैं कहूंगा, प्रेम परमात्मा है। लव इ.ज गॉड। यह छोटा सा सूत्र बहुमूल्य है। अगर महावीर से कोई.जोर देकर पूछता है, कि क्या है, धर्म? तो महावीर कहते अहिंसा धर्म है। अहिंसा का कोई और अर्थ नहीं है। अगर बुद्ध से कोई पूछता, क्या है धर्म? तो बुद्ध कहते थे मैत्री धर्म है। यह मैत्री, अहिंसा या प्रेम, सब पर्यायवाची हैं। इनमें कोई भेद नहीं है।
जिस व्यक्ति को परमात्मा को अनुभव करना हो, उसे पहली सीढ़ी अपने भीतर प्रेम की चढ़नी होगी। परमात्मा तर्क से नहीं, प्रेम के इस विकास से अनुभव में आएगा। विचार से नहीं, प्रेम से अनुभव में आएगा। प्रेम को विकसित करना होगा।
तो पहला सूत्र हैः प्रेम का प्रसार।
अकारण, अहेतुक, बिना किसी शर्त के सारे जगत के प्रति प्रेम का संचरण। उठते-बैठते, सोते-जागते, किसी की मौजूदगी में, किसी की गैर मौजूदगी में, पक्षी हों या पौधे हों, वृक्ष हों या आकाश के तारे हों, सबकी तरफ दृष्टि से निरंतर प्रेम के अतिरिक्त और कुछ भी न फेंकना।

मैडम ब्लावट्स्की के बाबत मैंने सुना है। रूस के एक छोटे से गांव से
वह निकलती थी। किसी ने उनसे एक बात पूछी। फिर बाद में वह तिब्बत के किसी गांव से निकलती थी, वहां किसी ने एक बात पूछी। फिर भारत में वह किसी गांव से निकलती थी, वहां किसी ने एक बात पूछी। तीनों बार एक ही बात पूछी गई और तीनों बार एक ही कारण से पूछी गई, और तीनों बार उन्होंने एक ही उत्तर दिया। जब भी वह कहीं जाती, तो अपने साथ एक बड़ा झोला रखती। और उसमें फूलों के बहुत से, फूलों के बहुत से बीज रखती। गाड़ी में बैठ कर गाड़ी के किनारे उन बीजों को फेंकती जाती। लोग उनसे पूछतेः यह क्या है? और क्यों फेंक रही हैं? उन्होंने सदा कहाः इस रास्ते पर थोड़े से फूल के बीज फेंकती हूं, ताकि उनमें फूल आ जाएं। अभी वर्षा आएगी, बीज अंकुर बनेंगे और उनमें फूल आ जाएंगे। लोगों ने उनसे पूछाः लेकिन इस रास्ते पर आपके दुबारा निकलने की क्या कोई संभावना है? क्या आप उन फूलों को देख सकेंगी? तो ब्लावट्स्की ने कहाः मैं तो नहीं, लेकिन हजारों आंखों से मैं ही उन फूलों को देखूंगी। ब्लावट्स्की ने कहाः मैं तो नहीं, लेकिन हजारों आंखों से मैं ही उन फूलों को देखूंगी। और उनकी खुशी और उनका आनंद मेरा आनंद है।

मैं आपसे नहीं कहता कि आप फूलों के बीज लिए हुए सड़कों पर फेकें। लेकिन मैं आपसे यह कहता हूं कि दो ही तरह के लोग जगत में हैं। एक तो वे लोग हैं जो दूसरों के रास्ते पर फूल फेंक देते हैं। और एक वे लोग हैं जो दूसरों के रास्तों पर कांटे फेंक देते हैं। दो ही तरह के लोग हैं। और यह भी मैं आपको जल्दी से कह दूं कि भूल न जाएं कि जो लोग दूसरों के रास्तों पर फूल फेंकने को जीवन में स्वभाव नहीं बनाते हैं, वे जानें या न जानें, चाहें या न चाहें, उनसे दूसरों के रास्तों पर कांटे गिरना अनिवार्य है।
जब तक हम जीवित हैं, हम कुछ न कुछ फेकेंगे। जीवन का अर्थ हैः फेंकना।
जब तक हम जीवित हैं, कुछ न कुछ उलीचेंगे। जीवन का अर्थ हैः उलीचना। जब तक हम जीवित हैं, हमारे चारों तरफ कोई न कोई चीज हमसे विकीर्ण होगी। जीवन का अर्थ हैः विकीर्ण होना।
तो जो फूल नहीं फेंक रहा है, वह स्मरण रखे कि जाने-अनजाने उससे कांटे फिंक रहे हैं। और जो प्रकाश नहीं फेंक रहा है, वह स्मरण रखे, जाने-अनजाने उससे अंधकार फिंका जा रहा है। और जो अपने भीतर से लोगों के प्रति मंगल के भाव नहीं विकीर्ण कर रहा है, वह स्मरण रखे, वह किसी न किसी रूप में लोगों की मृत्यु के, लोगों के दुख के, लोगों की पीड़ा के संदेश भेज रहा है। हर मनुष्य या तो आशीर्वाद दे रहा है या अभिशाप दे रहा है, इसके सिवाय कोई विकल्प नहीं है। तीसरी तरह का कोई मनुष्य नहीं है। तीसरी तरह का मनुष्य जीवित नहीं रह सकता।
और यह प्रेम का जो प्रसार है दूसरों के रास्तों पर फूल गिरा देने का,
यह बहुत महंगी बात नहीं है। और स्मरण रखें कि जो आप दूसरों के रास्तों पर गिराते हैं, यह न सोचें कि दूसरों को इससे हित होगा, गिराते क्षण ही आपका हित हो जाता है, दूसरों का जब होगा तब होगा।
जब कोई व्यक्ति हृदय से भर कर किसी के प्रति प्रेम फेंकता है, तो यह जरूरी नहीं है कि जिसके प्रति प्रेम फेंका उसे मिलेगा या नहीं मिलेगा। क्योंकि हो सकता है दूसरे के द्वार बंद हों। हो सकता है दूसरा अभागा हो और उसकी आंखें बंद हों, और उस तक खबर न पहुंचे। लेकिन जो व्यक्ति प्रेम फेंक रहा है, वह तत्क्षण अपने जीवन को ऊपर उठा रहा है। प्रेम के फेंकने में वह ऊपर उठ रहा है। क्योंकि जैसे ही वह प्रेम फेंकता है, भीतर शांति घनीभूत हो जाती है।
जब भीतर से बाहर प्रेम जाता है, तो भीतर शांति घनीभूत होती है। और जब भीतर से बाहर घृणा जाती है, तो भीतर अशांति घनीभूत होती है। घृणा अपनी छाया की तरह अशांति को छोड़ती है भीतर, और प्रेम अपनी छाया की तरह भीतर शांति को छोड़ता है। प्रेम की छाया शांति है, जो भीतर रह जाती है और प्रेम बाहर फैल जाता है। और घृणा की छाया अशांति है, घृणा बाहर फैल जाती है, अशांति भीतर रह जाती है।
जिस व्यक्ति को आंखों को निर्मल करना हो, उसे चारों तरफ प्रेम के प्रसार को समस्त जगत के प्रति, उठते-बैठते, सोते-जागते मंगल के भाव को, मैत्री के भाव को, अहिंसा की दृष्टि को विकसित करनी चाहिए। जितना प्रेम विस्तीर्ण होगा उतना ही वह व्यक्ति जगत से मुक्त हो जाएगा। प्रेम के अतिरिक्त और कोई मुक्ति नहीं है। घृणा बांधती है, प्रेम मुक्त करता है। और जो राग बांधता है वह राग घृणा के हिस्से में है, घृणा के साथ है। प्रेम मुक्ति है। जिसको मैं प्रेम करता हूं उससे ही मैं मुक्त हो जाता हूं। और अगर मैं समस्त जगत से प्रेम कर सकूं, तो मैं समस्त जगत से मुक्त हो जाऊंगा। स्मरण रखें, जो मुक्त कर दे, वह प्रेम है। और जितना मुक्त कर दे, उतना प्रेम है। और परिपूर्ण मुक्त कर दे, तो पूर्ण प्रेम है। पूर्ण प्रेम का नाम ही अहिंसा है। यह पहला सूत्र है आपके भीतर निर्मलता उपलब्ध करने का, धुआं, धुआं दूर करने का। पहला सूत्र हुआः प्रेम का प्रसार।
दूसरा सूत्र हैः परिग्रह का संकोच।
यह भी अदभुत सत्य है कि जो व्यक्ति जितना ज्यादा परिग्रह को फैलाता है, वह व्यक्ति उतना ही छोटा होता चला जाता है। जो व्यक्ति जितने सामान को, जितनी चीजों को इकट्ठा करने में लग जाता है, वह व्यक्ति उतना ही, उतना ही

नीचे गिरता चला जाता है। उतना ही भारी होता जाता है। सामान का बोझ उसके ऊपर भारी होता जाता है और वह नीचे बैठने लगता है।
एक भारतीय साधु भारत के बाहर था, एक भवन के सामने खड़ा था और भवन में आग लगी थी। और लपटें जल रही थीं और भवन से लोग सामान को बाहर निकालते थे। सारा सामान बाहर निकाल लिया गया था। भवन का मालिक करीब-करीब बेहोश सा, आंखों से आंसू बहाता हुआ खड़ा था। उसे स्मरण भी नहीं था कि क्या हो रहा है। और तभी लोगों ने आकर पूछा कि अब भवन पूरा जलने के करीब है, लपटें नीचे के कक्षों तक भी आ गई हैं, एक बार और हम भीतर जा सकते हैं, कुछ बचाने को हो तो बता दें? उसने कहाः मुझे कुछ याद नहीं आता, तुम एक दफा जाकर भीतर देख लो। हर बार वे लोग भीतर गए थे और हर बार हंसते हुए बाहर आए थे। क्योंकि कुछ न कुछ बहुमूल्य सामान बचा कर लाए थे। अंतिम बार वे सारे लोग रोते हुए वापस लौटे। अब की बार भी वे कुछ लाए थे, लेकिन रोते हुए लौटे। और लोगों ने भीड़ लगा ली, उन्होंने पूछाः रोते क्यों हो? उन्होंने कहाः भूल हो गई, हम सामान को बचाने में लग गए और मकान मालिक का इकलौता लड़का भीतर सोया था, वह मर गया। उन्होंने कहाः हम सामान को बचाने में लग गए और सामान का अकेला मालिक इसी बीच समाप्त हो गया।
वह जो भारतीय साधु उस भीड़ में खड़ा होकर इस घटना को देखता था, उसने अपनी डायरी में लिखा है कि मैंने उस दिन उस भवन में लगी हुई लपटों के बीच जो देखा, वह हर मनुष्य के जीवन में मुझे दिखाई पड़ता है। अधिकतम लोग सामान को बचाने में लग जाते हैं और सामान का मालिक धीरे-धीरे मरता चला जाता है। एक दिन आता है, सामान तो बच जाता है और मालिक मर जाता है।
सामान को बचाने में जो लगा है वह अधार्मिक है। और अधर्म का कोई अर्थ नहीं होता। जो मालिक को भूल कर सामग्री बचा रहा है, जो सामान को बचा रहा है स्वयं को भूल कर, वह अधार्मिक है।
और धार्मिक का एक ही अर्थ हैः दृष्टि परिवर्तित हो, सामग्री से स्वयं पर। स्वयं प्रथम हो और सामग्री गौण और द्वितीय हो जाए, तो व्यक्ति में धर्म की शुरुआत हो जाती है। जो जितना सामग्री को बचाने में लगेगा, उतना ही उसकी स्वयं की सत्ता क्रमशः मरती चली जाएगी। एक दिन वह करीब-करीब सामग्री का हिस्सा हो जाएगा। एक दिन करीब-करीब वह सामग्री का हिस्सा हो जाएगा। और सामग्री को यह जो फैलाने का भाव है, यह मनुष्य को क्रमशः भिखमंगे से भिखमंगा बनाता जाता है। जिन्हें हम सम्राटों की तरह देखते हैं, जिनके पास आंखें हैं वे उन्हें भिखमंगों की तरह देखते हैं। और जिन्हें हमने भिखमंगों की तरह देखा है, जिनके पास आंखें हैं, वे उन्हें सम्राट समझते हैं।
बुद्ध एक गांव से निकलने को थे। उस गांव के राजा ने सोचा, मैं उन्हें लेने जाऊं या न जाऊं? एक भिखमंगा गांव में आ रहा है, तो राजा लेने जाए या न जाए? उसने अपने मंत्रियों को पूछा कि क्या मेरा जाना उचित है? क्या एक राजा गांव के बाहर एक भिखारी को लेने जाए? उनमें एक वृद्ध मंत्री ने कहा कि क्षमा करें, अगर आपके पास आंखें होतीं, तो जो आ रहा है उसे आप बादशाह और अपने को भिखमंगा समझते। उस राजा ने कहाः यह क्या कहते हो? मैं कैसे भिखमंगा हूं? उस बूढ़े अमात्य ने कहाः जिसकी मांगें अनंत हैं, उसके भीतर अनंत भिखमंगापन है। और जिसकी कोई मांग शेष न रही, वह मालिक हो गया। जो कुछ भी नहीं मांगता, वही केवल सम्राट है। और जो कुछ भी मांगता है, मांग ही उसे भिखमंगा बनाती है।
एक और मुझे स्मरण आया। एक मुसलमान फकीर हुआ, फरीद। उसके गांव के लोगों
ने फरीद से कहा कि तुम्हें अकबर बहुत मानता है। अकबर के पास जाओ और उससे कहना गांव में एक स्कूल खोल दे। फरीद गया। उसने कहाः मैंने कभी किसी से कुछ मांगा नहीं। मैं तो भिखारी हूं, मैं कभी किसी से कुछ मांगता नहीं। उस फरीद ने कहाः मैं तो भिखारी हूं, मैं कभी किसी से कुछ मांगता नहीं। लेकिन अब तुम सारे लोग कहते हो, तो मैं जाता हूं। वह गया। उसने सोचा, सुबह-सुबह जाऊं, अकबर प्रार्थना करके, नमाज पढ़ कर निकलता होगा, वहीं कह दूंगा। वह मस्जिद में पहुंच गया। अकबर की नमाज पूरी होने को थी। नमाज पूरी हुई और अकबर ने हाथ उठा कर कहा कि हे परमात्मा, मुझे और धन दे, मुझे और दौलत दे,

मेरे राज्य की सीमाओं को और बढ़ा, मुझे और यश दे, मुझे और कीर्ति दे, मेरी सीमाएं रोज दिन-दूनी बढ़ती चली जाएं। यह उसने प्रार्थना के अंत में कहा। अकबर जैसे ही उठा, उसने देखा, फरीद की पीठ उसे दिखाई पड़ी, फरीद मस्जिद की सीढ़ियों से वापस लौट रहा है। वह दौड़ कर पहुंचा और उसने कहा कि कैसे लौट चले, कैसे आए? फरीद ने कहाः इस तरह आए थे कि सोचा था तुम एक सम्राट हो, और इस तरह लौट चले कि देखा कि तुम भी एक भिखमंगे हो। देखा तुम भी मांगते हो। देखा तुम्हारी मांग का कोई अंत नहीं है। और भी ज्यादा मांगते हो।
तो जो जितना परिग्रह को मांगता है उतना भिखमंगा होता चला जाता है। और
इस जगत में परमात्मा भिखमंगों को उपलब्ध नहीं होगा, मालिकों को उपलब्ध होता है, सम्राटों को उपलब्ध होता है। जो अपने मालिक नहीं हैं, वे इस जगत की अंतरसत्ता के, इस जगत के मालिक के दर्शन करने में समर्थ नहीं हो सकते। इसलिए परिग्रह सबसे बड़ी बाधा है। अपरिग्रह सबसे बड़ा सहयोग है। सबसे बड़ा मार्ग है। सबसे बड़ा सेतु है।
तो जिसे स्वयं को पाना हो, उसे धीरे-धीरे परिग्रह को क्षीण और संकुचित करना होगा। उस सीमा तक कि जब वह बिल्कुल निपट अकेला रह जाए। और उसके पास कुछ भी न हो।
कुछ भी न होने का मतलब क्या है? कुछ भी न होने का मतलब है कि कुछ भी उसके भीतर मांग न हो। कुछ भी उसके भीतर पाने की आकांक्षा न हो। जितनी आकांक्षाएं कम होती हैं, आत्मा उतनी विकसित होती चली जाती है। जितनी आकांक्षाएं ज्यादा होती हैं, आत्मा उतनी, उतनी पतित होती चली जाती है। आकांक्षा और आत्मा में विरोध है। आकांक्षा संसार का द्वार है और जो आकांक्षा से पीछे लौटता है, जो वापस लौटता है, वह आत्मा के द्वार को उपलब्ध हो जाता है।
यह मैंने कहा, प्रेम का प्रसार हो और परिग्रह का संकोच हो। प्रेम फैले
और परिग्रह छोटा हो। और यह भी आप स्मरण रखें कि जितना प्रेम फैलेगा उतना ही परिग्रह छोटा होने में सहयोग मिलेगा। और जितना परिग्रह छोटा होगा, उतना प्रेम के फैलने में सहयोग मिलेगा। क्योंकि जिसका बहुत परिग्रह है, उसका प्रेम बहुत छोटा होता है। और जिसके पास जितना परिग्रह है, उसका प्रेम उतना ही संकीर्ण और छोटा होता चला जाता है।
अभागे हैं वे लोग जिनके पास परिग्रह तो बहुत हो जाता है और प्रेम शून्य हो जाता है। और धन्य हैं वे लोग जिनके पास परिग्रह तो शून्य हो जाता है और प्रेम पूर्ण हो जाता है। वे दोनों एक साथ बढ़ते हैं। प्रेम आगे बढ़ता है तो परिग्रह पीछे हटता है। परिग्रह पीछे हटता है तो प्रेम और आगे बढ़ता है। वे संबद्ध सूत्र हैंः प्रेम का प्रसार और परिग्रह का संकोच।
ये दो साधना के बाहर के जगत से संबंधित होने के लिए मैंने कहे। बाहर
के जगत में चेतना से संबंध पैदा होगा प्रेम से; और पदार्थ से संबंध क्षीण होगा परिग्रह के संकोच से। बाहर के जगत में जो परमात्मा व्याप्त है उससे प्रेम के द्वारा हमारा संबंध होगा; और जो पदार्थ व्याप्त है उससे परिग्रह के संकोच के द्वारा हमारा संबंध विच्छिन्न होगा।
बाहर के जगत के दो सूत्र हैंः प्रेम और अपरिग्रह।
भीतर के जगत में इन दो सूत्रों को जो व्यक्ति साधेगा, उसकी आंखों से धुआं क्रमशः क्षीण होने लगता है। उसके तनाव बंद होने लगते हैं। उसके द्वंद्व भीतर कम होने लगते हैं। जिसकी आकांक्षा परिग्रह पर कम हो जाती है, उसके भीतर कलह कम हो जाती है, उसके भीतर विरोध कम हो जाते हैं, उसके भीतर दौड़ें, तनाव कम हो जाते हैं। उसके भीतर बड़ी थिरता उत्पन्न होती है। और जिसका प्रेम बढ़ता है उसके भीतर बड़ी शांति उत्पन्न होती है। प्रेम शांति लाता है। अपरिग्रह.(अस्पष्ट)--। और तीसरा सूत्र हैः प्राणों के प्राण में प्रतिष्ठा।
पहला सूत्र हैः प्रेम का प्रसार।
दूसरा सूत्र हैः परिग्रह का संकोच।
तीसरा सूत्र हैः प्राणों के प्राण में प्रतिष्ठा।
जब इतनी शांति घनीभूत हो और इतनी थिरता मिले, प्रेम से शांति आए, अपरिग्रह से थिरता आए, तब मनुष्य को अपने भीतर पूछना चाहिए कि मेरे

प्राणों का प्राण कौन है? मेरे प्राणों का प्राण क्या है? मैं कहां हूं अपनी आत्यंतिक सत्ता में, जिसके पीछे मैं न जा सकूं?
शरीर से पीछे हम जा सकते हैं। क्योंकि मैं देखता हूं यह मेरा शरीर है।
जो देख रहा है शरीर को, वह शरीर से अलग है। जो शरीर का अनुभव कर रहा है, वह शरीर से अलग है। यह मेरा हाथ कट जाए, तो मुझे अनुभव होता है मेरा हाथ कटा। तो जो अनुभव कर रहा है कि मेरा हाथ कटा, हाथ उससे अलग है।
मैं और मेरा में भेद है। जो मेरा है, वह मेरा मैं नहीं है। दिखाई पड़ता
है मेरी देह है, अनुभव में आता है मेरी देह है। मैं देह से पीछे हूं, देह मेरा प्राण नहीं हो सकती। और भीतर प्रवेश करें।
क्या श्वास मेरा प्राण हो सकती है? श्वास को भी मैं देखता हूं, श्वास आती है भीतर तो मैं देखता हूं, और श्वास बाहर जाती है तो मैं देखता हूं। श्वास को चाहूं तो मैं रोक लेता हूं। श्वास को चाहूं तो बाहर भी रोक देता हूं। श्वास आती है, जाती है, उसका मुझे अनुभव होता है। जिसे अनुभव होता है श्वास का, वह श्वासों से भी पीछे है। श्वास भी प्राण नहीं है। क्या विचार मेरे प्राण हैं?
मन को देखें, विचार के भी दर्शन होते हैं। क्रोध आता है तो पता चलता है, राग आता है तो पता चलता है, कोई विचार कीशृंखला आती है तो पता चलता है। जिस चेतना को इन विचारों का बोध होता है, वह चेतना विचारों से भी पीछे है। इस भांति क्रमशः अपने भीतर से भीतर प्रवेश, इस भांति क्रमशः उस शांति
और थिरता में अपने भीतर की तरफ गमन बहुत आसान हो जाता है। देह अलग दिखाई पड़ती है, श्वास अलग दिखाई पड़ती है, विचार अलग दिखाई पड़ते हैं। और तब जहां कुछ भी नहीं रह जाता जिसको हम अलग कर सकें, जहां निपट चेतना रह जाती है, जो किसी के प्रति चेतन नहीं है।
क्योंकि जिसके प्रति चेतन है उस सबको हमने अलग किया, उस सबसे हमने अपने को तोड़ा, उस सबसे हमने अपने को भिन्न जाना। जब केवल मात्र चेतना रह जाती है, और जानने को कुछ नहीं रहता, केवल ज्ञान रह जाता है। और ज्ञेय कुछ भी नहीं रह जाता, केवल बोध रह जाता है। और बोध किसी के प्रति नहीं रह जाता, उस बोध की निपट निजता में, उस लोनलीनेस में, उस अकेलेपन में, उस एकाकी क्षण में, प्राणों के प्राण में व्यक्ति की प्रतिष्ठा होती है। वह प्रतिष्ठा सारे जगत के रहस्य को उठा देती है। उस प्रतिष्ठा में आंख खुलती है और दिखाई पड़ता है--जहां हमने पदार्थ जाना था, वहां परमात्मा है। और जहां हमने व्यक्ति जाने थे, वहां समग्रीभूत चेतना का सागर है। और जहां हमने देह जानी थी वहां आत्मा है।
स्वयं के भीतर आत्मा, समग्र के भीतर परमात्मा का अनुभव होता है। उस अनुभूति में सारे शास्त्र सत्य हो जाते हैं। उस अनुभूति में सारे सदगुरु सत्य हो जाते हैं। उस अनुभूति में वे सारे गवाही और साक्षी हो जाते हैं कि वह तुम्हारे भीतर भी घटित हुआ--जो महावीर के, बुद्ध के, कृष्ण के, क्राइस्ट के भीतर घटित हुआ है। जो अनंत-अनंत, करोड़-करोड़ जाग्रत चेतनाओं में घटित हुआ है, वह तुम्हारे भीतर भी घटित हुआ है।
इस बोध की गवाही, इस बोध के साक्षी सारे शास्त्र, सारे सदगुरु, सारे शास्ता हो जाते हैं। उसके पहले उनका कोई उपयोग नहीं। उसके पूर्व उनका कोई अर्थ नहीं। उसके पूर्व केवल शब्द-जाल है। वहां सत्य कुछ भी नहीं। और जब अनुभूति भीतर उपलब्ध होती है तो वे सारे शब्द विलीन हो जाते हैं और उनके भीतर सत्यों पर आंख पहुंच जाती है।
व्यक्ति स्वयं में सत्य के आविर्भाव को अनुभव करके इस सारे जगत में सत्य को अनुभव कर लेता है। स्वयं के भीतर आत्मा को जान कर सारे जगत में उसके ही आलोक को अनुभव कर लेता है। ऐसी प्रतीति उसके निज संकट को समाप्त कर देती है। ऐसी प्रतीति उसे बता देती है कि जन्म के पहले उसका होना था, मृत्यु के बाद उसका होना होगा। ऐसी प्रतीति उसे बता देती है कि न कभी उस चेतना को कोई दुख हुआ है, न कभी हो सकता है, न होने की कोई संभावना है। दुख के अतीत, आनंद में प्रतिष्ठित अंधकार के ऊपर, प्रकाश में आलोकित, उस चेतना का अनुभव उसकी सारी समस्याओं को जड़-मूल से नष्ट कर देता है।

अगर थोड़े से लोग भी आज के इस मनुष्य के जगत में वैसे आलोक को उपलब्ध हो जाएं, तो सारे जगत में एक नये प्रकार का प्रकाश अनुभव किया जा सकता है। एक नये प्रकार के आलोक को जन्म मिल सकता है। और उस आलोक में ही मनुष्यता का भविष्य संरक्षित होगा, उसके अतिरिक्त मनुष्य को बचाना कठिन है।
मनुष्य अपने हाथ से आत्मघात कर लेगा। मनुष्य अपनी घृणा से आत्मघात कर लेगा। मनुष्य अपने परिग्रह से आत्मघात कर लेगा। मनुष्य अपने प्राणों के प्राण से विच्छिन्न होने के कारण आत्मघात कर लेगा। मनुष्य को प्रेम में स्थापित करो, मनुष्य को अपरिग्रह में स्थापित करो, मनुष्य को उसके प्राणों के, प्राणों के केंद्र पर स्थापित करो--तो नये मनुष्य का जन्म हो सकता है। और उसके साथ ही एक नई मनुष्यता का और इस भांति धर्म के माध्यम से एक जीवन-क्रांति संभव हो सकती है।
ये थोड़ी सी बातें मैंने आपसे कहीं। आशा कर सकता हूं कि शायद कोई बात कहीं आपके भीतर, आपके हृदय के किसी तार को छेड़ दे, शायद कोई बात आपके भीतर कोई हूक, कोई प्यास बन जाए, कोई असंतोष आपके भीतर घनीभूत हो जाए, कोई अभीप्सा पैदा हो जाए कि मैं भी स्वयं को जानूं, और सत्य को जानूं; और जो संकट प्रत्येक के जीवन के साथ पैदा होता है उसका अतिक्रमण कर जाऊं, तो मैं समझूंगा मेरी प्रार्थना सफल हुई। वह जो मैंने आपके भीतर इतनी देर तक प्रार्थना की है आपके हृदय से, वह सफल हुई। प्रभु करे ऐसी अभीप्सा और प्यास आपके भीतर पैदा हो। और उसे आप जानने में समर्थ हो सकें जिसे जाने बिना जीवन व्यर्थ है। और जिसे जान लेते ही जीवन एक धन्यता में परिणित हो जाता है।

मेरी बातों को इतने प्रेम से सुना, उसके लिए बहुत-बहुत अनुगृहीत हूं।
और सबके भीतर बैठे हुए परमात्मा को प्रणाम करता हूं। मेरे प्रणाम स्वीकार करें।

विज्ञान, धर्म और कला
छठवां प्रवचन

मृत्यु का बोध

बहुत से प्रश्न हैं। बहुत मूल्यवान प्रश्न हैं। एक-एक प्रश्न पर बहुत
सी बातें कहूं, ऐसा उन्हें पढ़ कर मेरा मन हुआ। फिर भी सभी प्रश्नों के उत्तर शायद संभव नहीं हो पाएंगे। कुछ प्रश्न समान हैं, थोड़ी भाषा के भेद होंगे, लेकिन बात एक ही पूछी है, इसलिए उनका इकट्ठा उत्तर दे दूंगा। कुछ प्रश्न शेष रह जाएंगे, उन पर कल चर्चा हो सकेगी। सबसे पहले तीन-चार प्रश्न पूछे गए हैं।

मैंने उपवास के संबंध में कुछ कहा, पूछा हैः क्या उपवास से मेरा विरोध है? पूछा हैः क्या उपवास के द्वारा इंद्रियां शिथिल नहीं होतीं और विरक्ति नहीं आती। पूछा है कि क्या उपवास के माध्यम से ही महावीर ने, बुद्ध ने और दूसरे लोगों ने साधना नहीं की है? इस तरह बहुत से प्रश्न उपवास से संबंधित हैं।

तो सबसे पहले तो मैं यह कहूं कि उपवास से मेरा विरोध नहीं है। लेकिन अनाहार का नाम उपवास नहीं है। भोजन न करने का नाम उपवास नहीं है। अनाहार से मेरा विरोध है। और इन दोनों के भेद को आपको समझा दूं।
उपवास शब्द में भोजन न लेने की कोई ध्वनि भी नहीं आती। उपवास का अर्थ हैः आत्मा के निकट रहना। उसका अर्थ हैः परमात्मा के निकट वास करना। उससे भोजन का कोई संबंध ही नहीं है। भोजन करने वाला उपवासपूर्ण हो सकता है। और जिसने भोजन नहीं किया, हो सकता है उपवास में न हो। साधारणतः यही होता है कि जिसने भोजन नहीं किया है उसका चित्त भोजन के निकट ही वास करता है। उसका चित्त आत्मा के निकट वास नहीं करता। उसका चित्त और भोजन न देने के कारण शरीर के निकट हो जाता है। वह चौबीस घंटे भोजन के संबंध में ही विचार करता है।
उपवास बड़ी दूसरी बात है।
एक संन्यासी मेरे घर कुछ दिन तक मेहमान थे। उन्होंने एक दिन मुझसे कहाः आज मैं उपवास करूंगा। मैंने कहाः उपवास भी किया जा सकता है क्या? अनाहार किया जा सकता है। आप भोजन न करें, यह हो सकता है। लेकिन भोजन न करने से अगर कोई परमात्मा के निकट पहुंचता हो, तब तो बड़ी आसान बात है। बहुत आसान बात हो गई। परमात्मा के निकट पहुंचने का अर्थ मरना हो गया। एक आदमी भोजन न करे और मर जाए, तो मोक्ष हो गया। तो निश्चित ही परमात्मा के निकट पहुंच जाएगा। उपवास तो हुई मृत्यु का नाम, भूखे मरते हुए मृत्यु का नाम परमात्मा के पास पहुंच जाना अगर नहीं है, तो आप दिन भर अगर भूखे रहे, उससे परमात्मा के निकट कैसे पहुंच जाएंगे?
मैंने उनसे कहा कि आप यह कर सकते हैं कि भोजन न करें, लेकिन उपवास बड़ी दूसरी बात है। वे बोलेः उपवास फिर क्या है? मैंने कहाः अगर भीतर मन इतना तल्लीन हो जाए कि भोजन का स्मरण न आए और भोजन चूक जाए तो उपवास है। अगर आत्मा में ध्यान इतना तल्लीन हो जाए कि शरीर की स्मृति न आए, तो जो भोजन चूक जाए तो उपवास है। भोजन चूकने से आत्मा की स्मृति नहीं आती, लेकिन आत्मा की स्मृति में कभी भोजन चूक सकता है। उपवास में अनाहार हो सकता है, लेकिन अनाहार में अनिवार्य उपवास नहीं है। उपवास का अर्थ हैः अपने भीतर ध्यान को आत्मलीन हो जाने देना। वे बोलेः यह तो बड़ा कठिन हुआ। फिर उपवास हमारे हाथ में नहीं रहा। वे कुछ दिन मेरे पास थे, मैंने उनसे कहाः किसी दिन जब चित्त बहुत शांत हो और स्मरण न आए देह का, तो समझना कि उस दिन उपवास हुआ है।
एक दिन उन्होंने आकर मुझे कहाः आज पूरा दिन बीत गया। आज मैं कुछ ऐसा लीन था भीतर कि मुझे दिन भर खयाल नहीं आया। अब मुझे खयाल आया है कि दिन बीत गया और भोजन नहीं किया। तो मैंने कहाः अब उपवास तोड़ दें। उपवास पूरा हो गया।

वे क्षण जो आत्म-ध्यान में व्यतीत हो जाएं और शरीर की स्मृति न लाएं,
वे क्षण उपवास के क्षण हैं। ऐसे क्षण जरूर मनुष्य को जीवन में ऊंचाई की तरफ ले जाते हैं। लेकिन जिसे आप उपवास कहते हैं वह भूखा मरने से ज्यादा नहीं है। और अगर भूखे मरना कोई गुण है, तो फिर दुनिया में दरिद्रता बढ़ानी चाहिए, भूखे मरने के उपाय बढ़ाने चाहिए। भूखे मरना कोई गुण नहीं है।
यह कहा है कि भोजन न देने से इंद्रियां शिथिल होती हैं। तो यह तो आत्मघात हुआ। किसी कुएं में कूद जाएं, पहाड़ से कूद जाएं, इंद्रियां नष्ट ही हो जाएंगी, तो भगवान आपको मिल जाएगा। इंद्रियों को शिथिल नहीं करना है, इंद्रियों को जीतना है। आप सोचते होंगे, इंद्रियों को शिथिल कर देंगे तो जीत जाएंगे, तो आप गलती में हैं।
शिथिल इंद्रियां शक्ति तो खो देती हैं, लेकिन वासना नहीं खोती हैं। शिथिल इंद्रियां शक्ति खो देती हैं, लेकिन वासना नहीं खोती हैं। एक आदमी बूढ़ा हो जाए, इसी से क्या ब्रह्मचर्य हो जाता है। इंद्रियां तो शिथिल हो गईंर्। लेकिन बूढ़े का मन, युवक के मन से अधिकतर ज्यादा कामातुर होता है। इंद्रियां शिथिल हो जाने के कारण ही उसका मन और, और वासना से उत्तेजित होता है, क्योंकि पूर्ति का कोई उपाय भी नहीं रह जाता। पूर्ति का उपाय नहीं रहता, मन बार-बार पूर्ति के लिए चिंतातुर होने लगता है। इसलिए बूढ़े, मात्र बूढ़े होने से इंद्रियों के पार नहीं हो जाते। बल्कि इंद्रियां और पीड़ित करने लगती हैं।
पीछे अमरीका की एक युनिवर्सिटी में उन्होंने कुछ प्रयोग किया। उन्होंने बीस युवकों को भोजन देना बंद रखा। और रोज उनका अध्ययन किया कि उनकी चित्त गतियों में क्या परिवर्तन हो रहा है। कोई तीन-चार दिन तक उनको बहुत जोर से भूख सताती रही। चार दिन के बाद अक्सर भूख नहीं सताती है, क्योंकि भूखे रहने की आदत हो जाती है। और शरीर में एक परिवर्तन हो जाता है। वह परिवर्तन यह होता है।
शरीर तो बड़ा अदभुत यंत्र है, हमारे शरीर में जो मांस और चर्बी इकट्ठी है, वह अकारण नहीं है। अगर हम भोजन बंद कर दें, तो शरीर अपनी चर्बी पचाना शुरू कर देता है, वह मांसाहार है एक तरह का। हम अपना ही मांस खाने लगते हैं। इसलिए आपका वजन गिरने लगता है। आप एक दिन भोजन नहीं करेंगे, एक पौंड वजन गिर जाएगा। आपने अपने शरीर का एक पौंड मांस पचा लिया। शरीर ने दिन भर काम किया, शरीर ने मांस पचा लिया। मांस को पचाना रोज ही पड़ता है। आप भोजन से उसे पूरा कर देते हैं, तो काम चलता जाता है। आप भोजन बंद कर देंगे, तो जो स्टॉक है आपके पास मांस का, वह कम होता चला जाएगा। चार-पांच दिन के भीतर आपका शरीर नया भोजन लेने की आदत छोड़ देता है और अपने ही मांस को पचाने लगता है।
आपने मेढक देखे होंगे, तो वे बर्षा में जिंदा हो जाते हैं करीब-करीब
और बाकी समय मुर्दे की भांति मिट्टी में पड़े रहते हैं। लेकिन सूख जाते हैं, सारा मांस पचा जाते हैं। वहां रीछ होते हैं, साइबेरिया में, वे जब बहुत बर्फ गिरती है, तो बर्फ में दबे पड़े रहते हैं। जब वे बर्फ में दबते हैं, तब उनका शरीर बहुत भारी होता है। जब महीने, दो महीने, चार महीने बाद बर्फ पिघलती है तो निकलते हैं, तो बिल्कुल हड्डी के ढांचे रह जाते हैं। उस बीच वे वहां पड़े-पड़े अपना मांस पचा जाते हैं।
तो अगर आप भोजन बंद कर दें, तो आपका मांस पचना शुरू हो जाता है। इसलिए मैंने कहा कि एक तरह की हिंसा है। आप दूसरे का मांस खाएं या अपना, दोनों स्थितियों में हिंसा है। और आप दूसरे का खा रहे हैं या अपने शरीर का खा रहे हैं, दोनों स्थितियों में शरीर हमेशा पराए हैं। दूसरे का शरीर भी मेरे लिए उतना ही पराया है, जितना मेरा शरीर पराया है। दोनों स्थितियों में शरीर, शरीर है, और दोनों स्थितियों में मांस, मांस है। इसलिए उपवास अनाहार वाला, जिसमें कि आप अनाहार पर ही जोर दे रहे हैं, एक तरह का स्व-मांसाहार है।
वह उन्होंने प्रयोग किया अमरीका में। चार-पांच दिन के बाद उनकी भूख
की प्रवृत्ति चली गई। इंद्रियां शिथिल होने लगीं। सातवें दिन उनकी बहुत सी रुचियों में परिवर्तन हुआ। उनके पास नंगी लड़कियों की तस्वीरें रखी रहीं, उन्होंने उन्हें उठा कर नहीं देखा। उनके पास गंदी से गंदी किताबें

रखी गईं, वे उनके प्रति बिल्कुल विरक्त रहे। पंद्रह दिन पूरे होते-होते कोई उनके सामने कैसी ही वासनापूर्ण बात करें, उनमें कोई उत्तेजना नहीं हुई। बिल्कुल विरक्त हो गए। पंद्रह दिन के उपवास के बाद विरक्ति आ गई। फिर उनको धीरे-धीरे खिलाना शुरू किया, जिस ढंग से भोजन के छूटने से वासनाएं विलीन हुई थीं उसी ढंग से वह वापस जागने लगीं। पंद्रह दिन में वापस वे वही के वही आदमी हो गए।
तो इसमें क्या हुआ? कोई, कोई वृत्तियां नष्ट हो गईं? केवल वृत्तियां शिथिल हो गईं। केवल इंद्रियां शिथिल हो गईं। मूल वृत्ति अपने भीतर वैसी की वैसी बनी रही।
इसलिए जो व्यक्ति भोजन छोड़ कर सोचता हो कि मैंने इंद्रियों को जीत लिया, वह केवल नासमझी में है, अज्ञान में है। अभी उसको भोजन दिया जाए, इंद्रियां फिर सजग हो जाएंगी। वापस सारी इंद्रियां अपनी सक्रियता पूरी कर लेंगी। इसलिए भोजन के न करने से कोई वासना नष्ट नहीं होती है, केवल इंद्रियां शिथिल होती हैं और वासना भीतर छिपी पड़ी रह जाती है। बीज-रूप में वासना बनी रहती है।
सवाल इंद्रियों को शिथिल करने का नहीं, सवाल वासना के परिवर्तन का है। इसलिए आप देखेंगे, महावीर या बुद्ध इनकी आपको इंद्रियां शिथिल मालूम होती हैं? इनकी मूर्तियां आपने देखी हैं, इनके चित्र देखे हैं, इनकी इंद्रियां आपको शिथिल मालूम होती हैं? इनसे ज्यादा स्वस्थ इंद्रियों के लोग खोजने कठिन हो जाएंगे। लेकिन इनके पीछे चलने वाले साधुओं को देखें, तो उनकी इंद्रियां जरूर शिथिल मालूम होती हैं।
वे उपवासी लोग थे, ये अनाहारी लोग हैं। भोजन उन्होंने छोड़ा नहीं है, कभी-कभी भोजन छूटा है, और मन भी छूट गया है। और यह बड़े रहस्य की बात है कि अगर भोजन अपने आप छूट जाए, तो उसका दुष्परिणाम शरीर पर अत्यंत न्यून होता है। और अगर चेष्टा से छोड़ा जाए, तो शरीर पर बहुत ज्यादा हो जाता है। शरीर पर इसलिए बहुत ज्यादा होता है कि आप चौबीस घंटे सोचते हैं, मैंने भोजन नहीं किया। यह सजेशन, यह ऑटो-सजेशन कि मैंने भोजन नहीं किया, और मैं कमजोर हो रहा हूं, और इंद्रियां शिथिल हो रही हैं, आपके चित्त को प्रभावित करता है और शरीर को क्षीण करता है।
लेकिन जिस व्यक्ति को शरीर का स्मरण ही न आए, जिसे खयाल ही न हो कि मैंने भोजन नहीं किया, और इंद्रियां शिथिल हो रही हैं, और शरीर कमजोर हो रहा है, तो यह ऑटो-सजेशन उसको उसके भीतर नहीं पकड़ते हैं, ये सुझाव उसको नहीं पकड़ते हैं, उसका शरीर बहुत मात्रा में अक्षुण्ण अपनी शक्ति को बचा पाता है।
उपवास बड़ी दूसरी बात है। मैंने जो विरोध किया, वह अनाहार का किया। अनाहार के मैं विरोध में हूं। क्योंकि मेरा मानना है कि इंद्रियों को शिथिल नहीं करना, बल्कि वासना को परिवर्तित करना है। और वासना के परिवर्तन के लिए स्वस्थ इंद्रियां अत्यंत आवश्यक हैं। अस्वस्थ इंद्रियों वाला व्यक्ति वासना के परिवर्तन को उपलब्ध नहीं होता है।
इसलिए आम बीमार आदमी को कोई आध्यात्मिक आदमी मत समझ लेना। या जर्जर
हुई वाले, इंद्रियों वाले आदमी को कोई आध्यात्मिक मूल्य मत दे देना। लेकिन दुनिया को कुछ ऐसा हुआ है और हमारे जैसे मुल्कों में इस बात का बहुत प्रचार किया गया है, धीरे-धीरे हम बीमारी और अस्वास्थ्य को भी अध्यात्म समझने लगे हैं।
एक काउंट कैसरलिंग हुआ वहां जर्मनी में। वह हिंदुस्तान से बहुत प्रभावित था। उसने अपनी किताबों में लिखा है कि स्वास्थ्य एक गैर-आध्यात्मिक बात है। स्वस्थ होना एक गैर-आध्यात्मिक बात है।
अगर इंद्रियों का शिथिल होना अध्यात्म है, तो बीमार होना अध्यात्म होगा? और इंद्रियों का स्वस्थ होना अध्यात्म का विरोध हो जाएगा। इंद्रियां स्वस्थ होनी चाहिए, वासना-शून्य होनी चाहिए, तो जीवन परिपूर्णता को उपलब्ध होता है। और वासना तो पूर्ण रहे और इंद्रियां सुस्त और शिथिल हो जाएं, तो जीवन केवल कुरूप हो जाता है। जीवन केवल अस्वस्थ हो

जाता है। और वैसा व्यक्ति केवल कुंठा और पीड़ा में जीता है, किसी आत्म-आनंद को उपलब्ध नहीं होता।
यह मैं इसलिए कह रहा हूं कि मैं शरीर को मनुष्य की आत्मा का शत्रु नहीं मानता हूं, शरीर केवल वाहन है। आप उससे जो उपयोग लेना चाहते हैं वह देता है। अगर आप पाप में जाना चाहते हैं, शरीर राजी होता है। अगर आप पुण्य में जाना चाहते हैं, तो भी शरीर राजी होता है। नरक की यात्रा करनी हो, तो भी शरीर से होती है। और मोक्ष में भ्रमण करना हो, तो भी शरीर से होता है। शरीर का अपना कोई आप पर आग्रह नहीं है कि आप क्या करें। आप जो करना चाहते हैं, शरीर हमेशा उसको करने के लिए राजी और तैयार हो जाता है। शरीर अदभुत यंत्र है, शत्रु नहीं है, हमेशा मित्र है। पाप में जाएं तो भी मित्र है, पुण्य में जाएं तो भी मित्र है। और शरीर आपसे कुछ भी नहीं करवाता है, आप जो करना चाहते हैं वही शरीर से कर लेते हैं।
लेकिन हम शरीर के शत्रु हो जाते हैं। और हम समझते हैं कि शरीर के विरोध में लड़ कर कोई आत्मा उपलब्ध होगी। शरीर के विरोध में कोई सवाल ही नहीं है। शरीर से विरोध का कोई प्रश्न ही नहीं है। असल में शरीर से विरोध अध्यात्म नहीं है, एक तरह का रिएक्शन और प्रतिक्रिया है।
संसार में शरीर काम आता है, भोग में शरीर काम आता है, तो हम सोचते हैं
कि शरीर जो कि भोग में काम आता है वह योग में कैसे काम आएगा? उसका विरोध करो, उसको नष्ट करो। भोगी की भूल थी कि वह सोचता था कि शरीर से मैं भोग कर रहा हूं, भोग भी मन से होता है। शरीर तो केवल उपकरण होता है। योगी की भूल होगी कि वह सोचे कि मैं शरीर को नष्ट करके योग कर रहा हूं। योग भी मन से होता है। शरीर हमेशा सहयोगी है, छाया की भांति आपके पीछे है। जहां आपका मन जाना चाहता है शरीर वहां जाने को हमेशा तैयार और तत्पर है। इसलिए जो जानते हैं वे शरीर के प्रति हमेशा अनुगृहीत अनुभव करते हैं, उसके प्रति विरोध और शत्रुता अनुभव नहीं करते। वे हमेशा शरीर के प्रति धन्यवाद अनुभव करते हैं।
संत फ्रांसिस की कल मैं बात कर रहा था। जिस दिन वह मरा, उसने अपने शरीर
को अंतिम धन्यवाद दिया। और उसने कहाः मेरे शरीर, तेरे इतने उपकार हैं मेरे ऊपर, तूने ही सारे अनुभव मुझे दिए। तेरे ही अनुभवों, तेरी ही यात्रा से मैं आगे बढ़ा और ऊपर उठा, और तू सदा मेरा साथी था। चाहे मैंने बुरा किया हो, चाहे मैंने भला किया हो, तब इस अंतिम क्षण में जब कि मैं तुझसे विदा हो रहा हूं, तो मैं तुझे कैसे धन्यवाद दूं? किन शब्दों में मैं तेरा धन्यवाद करूं?
और मुझे दिखाई पड़ता है, जो जानेगा, उसका शरीर के प्रति विरोध गिर जाएगा। शरीर शत्रु नहीं है। शरीर हमेशा मित्र, मित्र है। किसी क्षण में शरीर आपका शत्रु नहीं है। लेकिन हम अपनी ही भ्रांति से अगर शरीर को शत्रु बना लें, तो हमारा जीवन शरीर से लड़ने में व्यतीत हो जाता है। और मेरा मानना है कि जो व्यक्ति शरीर से लड़ता है, वह एक अर्थ में मैटीरियलिस्ट है, वह भौतिकवादी है। वह आदमी आध्यात्मवादी नहीं है। शरीर के ऊपर उसकी बड़ी मान्यता है, बड़ा आग्रह है।
अभी मैं एक, एक जगह था। एक साध्वी ने मुझे कुछ प्रश्न पूछे, उन्होंने
एक कागज पर लिखा हुआ था। तो मैंने उनसे कहाः कागज मुझे दे दें। उन्होंने बड़े ऊपर हाथ करके मुझे वह कागज छोड़ा। जैसे कहीं मेरे हाथ में उनका हाथ न छू जाए। तो मैंने उनको पूछाः इतने दूर हाथ को ले जाने का कष्ट क्यों दे रही हैं? क्या घबड़ाहट है मेरे हाथ से? अगर मेरा हाथ आपके हाथ को छू भी जाएगा, तो कौन सी परेशानी हो जाएगी?
निश्चित ही हाथ के छूने का डर अत्यंत भौतिकवादी मन का सबूत है। यह बुद्धि अत्यंत मैटीरियलिस्ट है। इसका विश्वास शरीर पर है, इसका विश्वास आत्मा पर नहीं है।
और मैंने उनसे कहाः आप ही निरंतर कहती हैं कि हम शरीर नहीं हैं, आत्मा हैं। और फिर यह शरीर से छूने की घबड़ाहट क्या है?
असल में भीतर दमन किया हुआ है सेक्स को। दूसरे का स्पर्श तत्क्षण उसमें गति दे देगा, उसको जगा देगा। वह घबड़ाहट, वह परेशानी। वह परेशानी दे रही है, यह हाथ तकलीफ नहीं दे रहा है। वह भीतर दबा हुआ सेक्स, वह भीतर दबी

हुई कामना तकलीफ दे रही है। कोई भी स्पर्श तत्क्षण उसे जगा देगा। हाथ क्या करेगा, हाथ तो कुछ भी नहीं कर सकता है। शरीर क्या करेगा, लेकिन भीतर मन में दमन हो तो शरीर से शत्रुता मालूम होने लगती है। और मन की भूल-चूक को हम शरीर पर आरोपित करते हैं। हमारी आदत है यह, हमारी आदत यह है, हमेशा दूसरे पर दोष देने की हमारी आदत।
अगर मेरा आपसे झगड़ा हो जाए, तो मैं आपको दोष दूंगा, आप मुझे दोष देंगे। हमारी आदत है दूसरे को दोष देने की। जब जीवन में हम तकलीफ अनुभव करते हैं, तब भी हम अपने, अपने मन पर दोष नहीं लेते। इस गरीब शरीर पर दोष दे देते हैं कि इस शरीर का सब दोष है। और फिर इससे लड़ना शुरू कर देते हैं। ये सब भ्रांति की बातें हैं। इस शरीर से कोई शत्रुता का प्रश्न नहीं है। और जो शरीर से शत्रुता करेगा वह शरीर की शक्तियों को बदलने में कभी समर्थ नहीं हो सकता है।

इसी संदर्भ में एक और प्रश्न पूछा है कि वासना के संबंध में मेरा क्या खयाल है?

वासना शक्ति है, और वासना-शक्ति से जो लड़ेगा वह नष्ट हो जाएगा। वासना
को परिवर्तित करना होता है, उससे लड़ना नहीं होता है। सेक्स ही परिवर्तित होकर ब्रह्मचर्य हो जाता है। सेक्स ब्रह्मचर्य का विरोध नहीं है। ब्रह्मचर्य ही सेक्स की ही परावर्तित ट्रांसफार्म स्थिति है। जगत में कोई शक्तियां नष्ट नहीं होती हैं। सिर्फ परिवर्तन होता है। जगत में कुछ भी नष्ट नहीं होता है, सिर्फ परिवर्तन होता है। शक्तियों का तो कोई विनाश कभी नहीं होता। घृणा की ही शक्ति परिवर्तित होकर प्रेम बन जाती है। क्रूरता की ही शक्ति परिवर्तित होकर दया और करुणा बन जाती है। जिनको आप वासना कह रहे हैं, वे ही वासनाएं परिवर्तित होकर जीवन में सत्य के लिए गति देने वाली शक्तियां हो जाती हैं।
आखिर आपने देखा होगा, अभी मैं रास्ते में आया तो बीच में एक जगह फूल लगे हुए थे। आपने देखा होगा घूरे पर गंदगी पड़ी रहती है। उस गंदगी से बास निकलती है, बदबू फैलती है। कोई पास से निकले तो नाक बंद कर लेता है। लेकिन वही गंदगी बगीचे में डाल दी जाए और बीज लगा दिए जाएं, तो वही गंदगी फूलों में सुगंध बन जाती है। वही गंदगी, वही फूलों में खिलती है और आप उन फूलों को खरीद कर लाते हैं, और प्रेम का उपहार देते हैं। वह वही गंदगी है जो घूरे पर पड़ी थी। यह उसका ही परिवर्तित रूप है।
सुगंध दुर्गंध का ही परिवर्तित रूप है। जीवन में जो भी श्रेष्ठ है, जिसे आप निकृष्ट कह रहे हैं, उसी से जन्मता है। उसी से विकसित होता है, उसी से बनता है। इसलिए निकृष्ट का मेरा विरोध नहीं है। श्रेष्ठ निकृष्ट के विरोध में नहीं है, निकृष्ट का विकास है। उसी का ही परिशुद्ध, उसका ही शुद्ध होता हुआ रूप है।
मैं किसी वासना के विरोध में नहीं हूं। वासना के परिवर्तन के पक्ष में हूं। और जो वासना से लड़ेगा वह परिवर्तन नहीं कर सकता है। वासना से लड़ने वाला परिवर्तन कैसे करेगा? अगर कोई व्यक्ति अपने क्रोध से लड़ने लगा, तो क्रोध को परिवर्तित कैसे करेगा? लड़ने का प्रश्न नहीं है, क्रोध को जानने का, क्रोध से मैत्री करने का, क्रोध से परिचित होने का, क्रोध के रास्ते समझने का। और यह सब तो बहुत सहानुभूति और प्रेम में ही हो सकता है। मैं इस जीवन में जो भी है उस सबको प्रेम करने के पक्ष में हूं, प्रेम
के माध्यम से ही उसे हम जानेंगे, परिचित होंगे। और उसके परिवर्तन का रास्ता संभव हो सकेगा। परिवर्तन का मार्ग ही धर्म है। विनाश नहीं है वासना का, वासना का परिवर्तन है।
और इसलिए विनाश की जो दृष्टि है उसे मैं, उसे मैं डिस्ट्रक्टिव कहता हूं। वह क्रिएटिव नहीं है। वह सृजनात्मक नहीं है। और दुनिया में धर्म का जो ह्नास हुआ, धर्म का जो पतन हुआ, उसका एक मात्र कारण है कि धर्म ने बहुत विनाषक दृष्टिकोण पकड़ लिया है। सृजनात्मक दृष्टिकोण उसका नहीं है। वह

आपकी सारी वासनाओं के विरोध में खड़ा हो गया है। जब कि उसे आपकी वासनाओं के परिवर्तन का मार्ग बनना चाहिए।

पूछा है एक प्रश्न कि धर्म का ह्नास क्यों हो रहा है? पतन क्यों हो रहा है? इतने संत हुए हैं, इतने महात्मा हुए हैं, इतनी टीचिंग्स हैं उनकी, इतने धर्म हैं, लेकिन धर्म का पतन क्यों हो रहा है?

धर्म का पतन इसलिए हो रहा है कि जिनको हम जानते हैं कि महावीर को, बुद्ध को वे सारे लोग अपनी वासनाओं को सृजनात्मक रूप से परिवर्तित किए, लेकिन उनके पीछे आने वाला आदमी उनको विनाश करने लगा। और यह होने के पीछे कुछ कारण हैं।
कारण यह है कि जब भी हम किसी ऐसे व्यक्ति को देखते हैं जिसकी वासनाएं विलीन हो गईं, तो हम भी सोचते हैं कि हमारी भी वासनाएं विलीन हो जाएं। पर हम जो, जो रुख अख्तियार करेंगे, वह भूल इसलिए हो जाती है, महावीर को लोगों ने देखा। लोगों ने देखा कि महावीर के जीवन में अब बिल्कुल हिंसा नहीं रही, उनका जीवन परिपूर्ण अहिंसक है। तो लोगों ने सोचा, हम भी हिंसा को नष्ट करें। लेकिन उन्हें पता नहीं महावीर ने हिंसा नष्ट नहीं की, महावीर ने अहिंसा उपलब्ध की है।
इन दोनों के फर्क को समझ लें आप। महावीर ने हिंसा नष्ट नहीं की है, महावीर ने अहिंसा उपलब्ध की है। अहिंसा को उपलब्ध होने से हिंसा विलीन हो गई। लेकिन हमको दिखाई पड़ता है महावीर के जीवन में कोई हिंसा नहीं है, तो हम भी पैर फूंक कर रखें, हम भी पानी छान कर पीएं, हम भी रात्रि में खाना न खाएं, हम भी कुछ ऐसे उपाय करें कि हमारी हिंसा विलीन हो जाए।
इस भवन में प्रकाश जल रहा है, बाहर से लोग देखेंगे कि इस भवन के लोगों
ने अंधेरा अलग कर दिया। अब कोई पागल अपने घर जाए, उसके घर में अंधेरा हो, तो वह भी अंधेरे को धक्के देकर निकालने लगे। कि एक कमरे में हमने देखा है कि लोगों ने अंधेरा अलग कर दिया है, अंधेरा अलग हो गया है, वहां प्रकाश आ गया है।
लेकिन बात उलटी है, अंधेरा अलग नहीं होता। प्रकाश आता है और अंधेरा नहीं पाया जाता। अंधेरे को अलग करके प्रकाश नहीं आता है, प्रकाश के आने से अंधेरा विलीन हो जाता है। लेकिन हमें दिखाई यही पड़ता है कि अंधेरा नष्ट हो गया। ऐसे ही हमें दिखाई पड़ता है कि महावीर के जीवन में हिंसा नष्ट हो गई। क्राइस्ट के जीवन में दुश्मनी, शत्रुता नष्ट हो गई। बुद्ध के जीवन में क्रूरता नष्ट हो गई। यह हमें दिखाई पड़ता है। तो हम भी अपनी क्रूरता को, हिंसा को नष्ट करने में लग जाते हैं।
जब कि सच्चाई यह है कि कोई चीज नष्ट नहीं होती, कोई चीज उपलब्ध होती है। बुद्ध को प्रेम उपलब्ध हुआ है, प्रेम को उन्होंने पाया है और इसलिए सारी घृणा विलीन हो गई है। वह सारी शक्ति जो घृणा के मार्ग से बहती थी, अब प्रेम के मार्ग से बह रही है। धर्म नकारात्मक, निगेटिव हो तो उसका ह्नास बिल्कुल अनिवार्य है। धर्म पॉजिटिव हो, विधायक हो, तो उसका विकास होता है। जिन लोगों ने भी सत्य को या परमात्मा को या आत्मा को अनुभव किया है, वे सारे लोग विधायक थे। उन सबका जीवन दृष्टिकोण पॉजिटिव था। लेकिन उनके पीछे अनुगमन करने वाले का दृष्टिकोण हमेशा निगेटिव होता है।
यह निगेटिव होना बिल्कुल स्वाभाविक है, क्योंकि हमें व्यक्ति का आचरण दिखाई पड़ता है उसकी आत्मा दिखाई नहीं पड़ती। अगर आप मुझे देखें तो आपको मेरी आत्मा तो दिखाई नहीं पड़ेगी, मेरा आचरण दिखाई पड़ेगा। तो आप भी आचरण से चलना शुरू कर देंगे। आचरण हमेशा नकारात्मक होता है; और आत्मा हमेशा विधायक होती है।
महावीर को हम देखें, बुद्ध को देखें तो हमें क्या दिखाई पड़ता है? दिखाई पड़ता है कि वह हिंसा नहीं करते, यह दिखाई पड़ता है। उनके भीतर जो प्रेम का जन्म हुआ है वह हमें दिखाई नहीं पड़ता। हिंसा नहीं करते हैं, यह दिखाई पड़ता है। किसी का अपमान नहीं करते हैं, यह दिखाई पड़ता है। किसी का

बुरा नहीं करते हैं, यह दिखाई पड़ता है। लेकिन उनके भीतर कौन सा विधायक तत्व पैदा हुआ है, जिसके कारण वह यह नहीं करते, वह हमें दिखाई नहीं पड़ता। आचरण दिखाई पड़ता है, क्योंकि आचरण बाहर है। आत्मा दिखाई नहीं पड़ती, क्योंकि आत्मा भीतर है। और तब हम सोचते हैं अगर ऐसा ही आचरण हमारा भी हुआ, तो हम भी उनके जैसी आत्मा को पहुंच जाएंगे। यह गलती बात हो जाती है। आत्मा से आचरण निकलता है, आचरण से आत्मा नहीं पहुंची जाती। आप बिल्कुल महावीर जैसा आचरण करें, तो भी आपके भीतर महावीर का ज्ञान उत्पन्न नहीं होगा। आप एक एक्टर हो जाएंगे, एक अभिनेता हो जाएंगे।
आखिर एक्टर्स क्या कर रहे हैं दुनिया में? अभिनेता क्या कर रहे हैं? आचरण बिल्कुल कर सकते हैं। और कई दफा तो यह हो सकता है कि जिसका आचरण कर रहे हैं, वह आदमी भी संदेह में पड़ जाए।
जापान में पिछले, पहले महायुद्ध में एक बहुत बड़ा सेनापति हुआ। उसकी प्रसिद्धि सारी, सारी दुनिया में थी। सारा जापान उसके पीछे पागल था। एक लड़का भी उन दिनों, मिलिटरी में शिक्षा ले रहा था। और उसके मन में भी कामना थी कि वह भी वैसा ही सेनापति बन जाए। लेकिन सारी परीक्षाएं उत्तीर्ण करने के बाद तैरने की एक परीक्षा में उसके सिर में चोट आ गई और वह फिर मिलिटरी से बहिष्कृत कर दिया गया। वह तो इतना दुखी हुआ, क्योंकि उसकी कामना थी कि वैसा सेनापति बन जाए। उसने अपना आत्मघात करने के लिए हाराकिरी कर ली। लेकिन बचा लिया गया किसी भांति। बचा लेने के बाद उसका पिता उसे अमरीका ले गया। वहां जाकर वह धीरे-धीरे अभिनय करने लगा, ड्रामा। बाद में उस सेनापति के ऊपर एक फिल्म बनी। और उसने उसमें काम किया। उस, उस लड़के ने उस सेनापति की जगह काम किया। खुद बुढ़ापे में वह सेनापति उस फिल्म को देखने गया। और उसने उस अभिनेता को एक पत्र लिखा कि मैं हैरान हूं, अगर मुझे चुनना पड़े तो तुम्हीं असल मालूम पड़ोगे और मैं नकल मालूम पडूंगा। उसने उस पत्र को सम्हाल कर रख लिया। उसने कहाः यह मेरे जीवन की आकांक्षा थी कि मैं तुम जैसा बन जाऊं। मैं बन गया।
और ऐसे पागल बहुत दुनिया में हैं। जो अभिनय करके सोचते हैं कि हमारी आकांक्षा थी कि हम महावीर जैसे बन जाएं, बुद्ध जैसे बन जाएं। हम बन गए। अगर महावीर आ जाएं, तो ये महावीर के जो साधु हैं, उनसे अव्वल नंबर ले लेंगे। यह उनसे अगर इनकी परीक्षा हो, तो उनसे पहले उत्तीर्ण हो जाएंगे, इनको ज्यादा मार्क्स मिलेंगे। क्योंकि ये अभिनेता हैं। अभिनेता जितना कुशल हो सकता है, उतना वह आदमी होना कठिन हो जाता है जो मूल है। क्योंकि उसके तो एक्शन स्पांटेनियस होते हैं, सहज होते हैं। इनका तो सब बंधा हुआ होता है। यह भूल-चूक इनसे बिल्कुल नहीं होती।
अभिनय पैदा होता है आचरण को देख कर। और इसलिए धर्म का पतन होता है। धर्म अभिनय नहीं है। धर्म असल में किसी का अनुकरण ही नहीं है। जो भी आदमी किसी को फॉलो करता है, किसी का अनुकरण करता है, वह अभिनेता हो ही जाएगा। अनुकरण का अर्थ ही अभिनय है।
लेकिन सारी दुनिया में यह ही सिखाया जाता हैः अनुकरण करो, पीछे जाओ, महावीर जैसे हो जाओ, बुद्ध जैसे हो जाओ, राम जैसे हो जाओ। यह बिल्कुल पागलपन की शिक्षा है। इससे ज्यादा मूर्खतापूर्ण और कोई बात नहीं हो सकती कि कोई आदमी किसी दूसरे जैसा हो जाए। अभिनेता हो जाएगा और क्या होगा?
हर मनुष्य की अपनी गरिमा है, और हर मनुष्य का अपना अद्वितीय स्वभाव है। अगर हम खोजने जाएं, एक छोटे से पत्थर को भी, तो दूसरा वैसा ही पत्थर इस जमीन पर नहीं मिल सकेगा। अगर एक पत्ते को हम तोड़ लें दरख्त के और खोजने जाएं सारी जमीन पर, तो ठीक वैसा दूसरा पत्ता नहीं मिल सकेगा। लेकिन आदमी को पागलपन सवार है कि क्राइस्ट जैसे बनो, मोहम्मद जैसे बनो। और फिर भी पच्चीस सौ वर्षों के अनुभव के बाद हमारी आंखें नहीं खुलतीं। क्राइस्ट को मरे दो हजार वर्ष होते हैं, दूसरा क्राइस्ट बन सका? लेकिन लाखों पागल इस कोशिश में लगे हैं कि क्राइस्ट जैसे बन जाएं। महावीर को हुए ढाई हजार वर्ष हो गए। कृष्ण को हुए और भी ज्यादा वर्ष हो गए, राम को हुए और भी ज्यादा, कोई दूसरा कृष्ण और दूसरा राम पैदा होता है? लेकिन हमारी आंखें नहीं खुलतीं, फिर भी हम कहते हैं, अनुकरण करो, उन जैसे बन जाओ।

कोई मनुष्य किसी दूसरे जैसा नहीं हो सकता। और अगर भगवान को यही इच्छा
थी कि उन्हीं जैसा बनाना है, तो आपके पैदा करने की कोई जरूरत नहीं थी। आप यूनीक हैं, आप अद्वितीय हैं, आप अपनी सत्ता लेकर पैदा हुए हैं। आपको किसी की नकल करने का जिम्मा नहीं है। आपके ऊपर कोई रिस्पांसिबिलिटी नहीं है कि आप दूसरे आदमी की नकल बन जाएं। और दुनिया में नकलची हो जाएंगे, तो दुनिया विकृत होती चली जाएगी, क्योंकि वहां असली आदमी बिल्कुल नहीं रह जाएंगे। इस दुनिया में झूठापन इसीलिए है कि सारे लोग किसी दूसरे जैसे बनने की कोशिश में लगे हैं। अगर हर आदमी अपने ही जैसी बनने की कोशिश में लगे, जो वह है, अपने भीतरी तल पर वही हो जाए, दुनिया बेहतर हो जाएगी।
धर्म अनुकरण नहीं है, धर्म स्वयं हम जैसे हैं वैसा होने की शिक्षा है। किसी के पीछे जाने का कोई सवाल नहीं है। धर्म का क्यों पतन हुआ है इतनी शिक्षाओं के बाद, उसका कारण यह है।

एक और प्रश्न पूछा है कि इतने-इतने बड़े लोग पैदा हुए, उन्होंने जब दुनिया को ऊपर उठा दिया, तो फिर दुनिया बार-बार नीचे क्यों गिर जाती है?

यह तो ऐसी ही बात हुई कि आप कहें कि मेरे पिता ने बहुत शिक्षा ली थी, तो अब, अब मैं अशिक्षित कैसे हूं? अब मुझे शिक्षा की कौन सी जरूरत है? या आप कहें कि मेरे पिता तो बहुत बड़े पढ़े-लिखे आदमी थे, तो अब मुझे पढ़ने-लिखने की कौन सी जरूरत है? नहीं, आपके पिता कितने ही पढ़े-लिखे हों, आपके खून में पढ़ाई-लिखाई नहीं आती। आपको फिर पढ़ना-लिखना होगा।
तो दुनिया में बड़े लोग पैदा होते हैं, बड़ी हवाएं पैदा होती हैं, बड़े समाज पैदा होते हैं, लेकिन वह सब उनकी पीढ़ी के साथ समाप्त हो जाता है। नई पीढ़ी को फिर वहीं से शुरू करना होता है, जहां उन्होंने शुरू किया था। धर्म के जीवन में हम किसी के कंधे पर खड़े नहीं हो सकते। अपने ही पैरों पर खड़े होना होगा। कोई आप महावीर, बुद्ध के कंधों पर खड़े नहीं हो सकते कि हम तो उनके कंधों पर खड़े हैं, हमें उनसे बेहतर होना चाहिए। आप अपने पैर पर खड़े हैं, महावीर अपने पैर पर खड़े हैं। कोई किसी के कंधे पर खड़ा नहीं हो सकता। उनकी उपलब्धि उनकी चेष्टा है, आपकी चेष्टा आपकी उपलब्धि बनेगी। इसलिए दुनिया में ऐसा नहीं हो सकता, अभी यह दुनिया है, बहुत कोशिश की जाए, बहुत बड़ा आंदोलन हो, बहुत बड़ी क्रांति हो, लाखों लोग ज्ञान को उपलब्ध हो जाएं, आत्म साक्षात हो जाए। तो इसका मतलब यह थोड़े ही है कि पचास साल बाद इनके जो बच्चे होंगे, वह आत्मसाक्षात को उपलब्ध हों। उनको फिर कोशिश वहीं से प्रारंभ करनी पड़ेगी।
जीवन का कोई भी सत्य खुद ही सीखना होता है। और अपने ही पैरों पर सीखना होता है। यही वजह है कि हमेशा हम वापस वहीं के वहीं पहुंच जाते हैं। जहां से, जहां से दूसरे लोगों ने अंत किया था वहां से हमारा प्रारंभ नहीं होता, हमें अपना ही प्रारंभ अपने ही प्रारंभ से करना होता है। इसलिए दुनिया में आध्यात्मिक तल पर कोई विकास दिखाई नहीं पड़ता है। और वह कभी नहीं होगा, क्योंकि विकास दूसरे से नहीं आता। उसे लाने की चेष्टा अपनी और निज होती है।

इसी संदर्भ में पूछा है, मैंने कल कहा कि जीवन के सत्य को जानने के लिए मौत का सतत बोध आवश्यक है। तो पूछा हैः अगर मौत का सतत बोध होगा, तो धरती पर स्वर्ग लाने की चेष्टा, सृजनशीलता का तो ह्नास हो जाएगा, उसको तो प्रोत्साहन नहीं मिलेगा। क्या इस निषेधात्मक व्यक्तिनिष्ठ प्रक्रिया के लिए उससे भिन्न विधायक सामूहिक कार्यक्रम नहीं हो सकता है?

यह जो मैंने कहा, मृत्यु का बोध, यह कोई निषेधात्मक बात नहीं है। मृत्यु कोई, कोई झूठी और कोई काल्पनिक बात नहीं है। मृत्यु से बड़ा सत्य कुछ नहीं है। मृत्यु से ज्यादा पॉजिटिव और क्या है? मृत्यु से ज्यादा विधायक और क्या है? और सब चीजें संदिग्ध हो सकती हैं, मृत्यु भर असंदिग्ध। और सब चीजें की हुईं, न की हुईं हो सकती हैं, और सारी घटनाएं घटे, न घटे,

लेकिन मृत्यु भर असंदिग्ध है। तो मृत्यु को निगेटिव क्यों कहते हैं आप? मृत्यु से ज्यादा पॉजिटिव और क्या है? उससे ज्यादा विधायक और क्या है? वही तो निश्चित तथ्य है।
लेकिन मृत्यु से हम डरे हुए लोग हैं, इसलिए हमें लगता है कि मृत्यु की याद करेंगे तो सब निषेधात्मक हो जाएगा। मृत्यु की याद करने का सवाल नहीं है, आप मृत्यु में खड़े ही हुए हैं। आप मृत्यु में खड़े ही हैं। याद करें या न करें, यह थोड़े ही, कोई जबरदस्ती याद करने को थोड़े ही कहा जा रहा है। आप उसमें खड़े हुए हैं, आपको चारों तरफ से मृत्यु घेरे हुए है। इसे देखना जरूरी है।
क्योंकि यह तो तथ्य है, और तथ्य को जो नहीं देखेगा, वह सत्य को कैसे पा सकेगा। तथ्यों को देख कर ही सत्य तक जाने का मार्ग बनता है। लेकिन डर लगता है कि अगर हम मृत्यु, मृत्यु का सतत स्मरण रखेंगे, तो जीवन से हमारे पंजे हट जाएंगे। जीवन पर हमारी पकड़ छूट जाएगी। निश्चित ही जिसको आप जीवन समझ रहे हैं, उस पर पकड़ छूट जाएगी। लेकिन उस पर पकड़ छूट ही जानी चाहिए। वह जीवन है ही नहीं।
वह जीवन होता तो पकड़ नहीं छूटती। अगर मौत के स्मरण से जीवन पर पकड़ छूट जाती है, तो वह जीवन नहीं है। जिस पर पकड़ छूट जाए, वह कोई जीवन है? मृत्यु के स्मरण मात्र से जो जीवन व्यर्थ हो जाए, वह कोई जीवन है? वह जीवन नहीं है। लेकिन हम डरते हैं, क्योंकि हम उसी को जीवन समझे हुए हैं। हम उन चीजों को जीवन समझे हुए हैं, जो कि हमारे पास हैं ही नहीं।
अब जैसे एक भारतीय साधु रामतीर्थ अमरीका और यूरोप से घूम कर वापस लौटे। वे हिंदुस्तान में एक छोटी सी रियासत के मेहमान हो गए। उस राजा ने उनसे एक दिन सुबह आकर पूछा कि मैं ईश्वर को जानना चाहता हूं। मुझे कुछ बताएं। रामतीर्थ ने कहाः ईश्वर को जानना चाहते हो या ईश्वर से मिलना चाहते हो? उस राजा ने कहाः मिला दें तो और भी बड़ी कृपा होगी। लेकिन जब उसने यह कहा, मिला दें, तो उसे जरा भी खयाल नहीं था कि यह आदमी मिलाने को राजी हो जाएगा। कौन मिलाने को राजी होगा? उसने बहुत संन्यासी देखे, बहुत पंडित देखे थे, जो ईश्वर की बातें तो करते हैं, लेकिन मिलाने का सवाल उठे तो मार्ग से हट जाएंगे। रामतीर्थ ने कहा कि मिलना चाहते हैं, तो अभी मिलना चाहते हैं या थोड़ी देर ठहर सकते हैं? राजा और भी हैरान हुआ। उसने कहाः यह आदमी या तो पागल है और यह हद झूठी बात कह रहा है। अब कहने लगा कि अभी मिलना चाहते हैं या थोड़ी देर ठहर सकते हैं? उस राजा ने कहाः जब आप कहते ही हैं, तो मैं अभी मिल लूं। रामतीर्थ ने कहाः यही मैं चाहता था, ऐसे लोग मुश्किल से ही आते हैं जो अभी मिलना चाहते हों। तो ठीक है, फिर थोड़ा सा काम कर दें। मैं जरा उनको खबर कर दूं आपसे मिलने के लिए। वह राजा बहुत हैरान हुआ कि क्या बातें कर रहे हैं? उसने कहा भी कि मैं परमात्मा से मिलने की बात कर रहा हूं, आप कुछ गलती तो नहीं समझ गए हैं, किसी और से मिलने की बात तो नहीं समझ गए हैं? तो रामतीर्थ ने कहाः मैं तो परमात्मा के सिवाय किसी की बात ही नहीं करता हूं, इसलिए भूलने का कोई सवाल नहीं है। आप एक कागज पर अपना परिचय लिख दें, मैं जरा उनके पास पहुंचा दूं। आपसे भी कोई मिलने आता होगा तो आप लिखवा लेते हैं कि आप कौन हैं। राजा ने कहाः उचित है, ठीक ही है। मैं भी किसी से पूछता हूं तो पूछ लेता हूं कि कौन है, क्या है, किसलिए मिलना चाहता है।
उसने अपने कागज पर अपना नाम लिखा। लिखा कि मैं फलां स्टेट का मालिक हूं, लिखा कि मेरा फलां मकान है, ये सारी बातें लिखीं। और उसने रामतीर्थ को दिया। रामतीर्थ हंसने लगे और उन्होंने कहाः इतने झूठ को लेकर भगवान से मिलना नहीं हो सकता। झूठ? उस राजा ने कहाः इसमें झूठ जरा भी नहीं है। मैं राजा हूं। यही मेरा नाम है। यही मेरा भवन है। रामतीर्थ ने कहाः इस भवन में तुम कितने दिन से हो? इस भवन में तुम्हारे पहले कोई और था और उसके पहले भी कोई और था। और तुम अपने साथ भवन को ले जाओगे या तुम्हारे पीछे कोई और इसमें रहेगा? तुम मालिक कैसे हो सकते हो? राजा थोड़ी चिंता में पड़ गया। इस भवन का मालिक होना कठिन है। रामतीर्थ ने कहाः यह सराय है, तुम्हारा मकान नहीं है, इसमें और लोग भी रहे हैं, और लोग रहेंगे। इसमें तुमसे पहले बहुत लोग रहे

हैं, तुमसे बाद में बहुत लोग रहेंगे। तुम भी एक मेहमान हो इस मकान में। लेकिन तुम्हारा मकान, इस भ्रम में मत रहो।
उस राजा ने कहाः यह तो ठीक ही कहते हैं कि मेरे बाद कोई न कोई इस मकान में रहेगा। मैं इसको ले जाने में असमर्थ हूं। तो जिसको तुम ले जा नहीं सकते, उसके मालिक कैसे हो सकते हो? उस राजा ने कहाः छोड़ें, मकान की बात छोड़ दें। लेकिन मैं राजा तो हूं। यह जो मेरा नाम है, यह तो मेरा है।
रामतीर्थ ने कहाः अगर तुम्हारा नाम तुम्हारे पिता ने दूसरा रख दिया होता, तो क्या तुम दूसरे आदमी हो जाते? या आज तुम्हारा नाम हम बदल दें, तो क्या तुम दूसरे आदमी हो जाओगे? क्या नाम के बदलने से तुम्हारे भीतर कुछ बदलेगा?
उस राजा ने कहाः नाम के बदलने से भीतर क्या बदलेगा? नाम ही बदलेगा, मैं
तो जो हूं वही रहूंगा।
तो रामतीर्थ ने कहाः फिर यह नाम तुम्हारा होना नहीं है। यह तुम्हारा कोई, कोई अनिवार्य हिस्सा नहीं है। इसके बदलने से कुछ बदलाहट नहीं आती। तुम फिर भी वही रहोगे। और तुम कहते हो मैं राजा हूं। कल अगर तुम भिखारी हो जाओ, तो तुममें क्या बदल जाएगा? तुम्हारे भीतर क्या बदल जाएगा? तुम्हारे बाहर चीजें बदल जाएंगी--महल की जगह झोपड़ा होगा, बहुत नौकर-चाकर की जगह कोई भी नहीं होगा, बहुत संपत्ति तुम्हारे बाहर है, फिर बाहर तुम्हारे पास टूटे-फूटे बर्तन होंगे, भिक्षा का पात्र होगा। लेकिन तुम्हारे भीतर क्या बदल जाएगा तुम्हारे राजा न होने से?
उसने कहाः यह भी मैं सोचता हूं तो पाता हूं कि मेरे भीतर तो कुछ भी नहीं बदलेगा। सब बदलाहट बाहर होगी। तो फिर रामतीर्थ ने कहाः वह जो भीतर है, जो किसी बदलाहट से नहीं बदलता, उसका अगर तुम परिचय दो, तो परमात्मा से मिलाऊं। और नहीं तो यह सब जो, जो झूठा है, इससे कोई वास्ता नहीं। इससे कोई संबंध नहीं है। यह नाम तुम्हारा नहीं है, मालिक तुम नहीं हो, राजा तुम नहीं हो। तुम कौन हो, उसके बाबत कुछ बात होनी चाहिए। वह राजा चुप रह गया। अगर यह शर्त हो, तो फिर उसने कहा, बड़ा कठिन है, मैं तो अपने को जानता नहीं।
हम जिसे जीवन कहते हैं, वह जीवन है? अगर आप विचार करेंगे, तो पाएंगे वह जीवन नहीं है। जिसे आप समझते हैं अपना व्यक्तित्व, वह आपका व्यक्तित्व है? विचार करेंगे, तो पाएंगे यह व्यक्तित्व नहीं है। तो इस डर से कि कहीं यह भ्रम टूट न जाए। सोचें कि विचार करना बड़ी खतरनाक बात है। विचार तो बड़ा निषेधात्मक है। जो भी चीज पर विचार करो उसी का निषेध हो जाता है। इसलिए फिर विचार ही मत करो। अगर यह सोचते हो, तो दूसरी बात है। लेकिन अविचार ही निषेधात्मक है। उसके कारण ही जो वास्तविक जीवन है वह दिखाई नहीं पड़ता और जो अवास्तविक जीवन है वह दिखाई पड़ता है।
एक शराबी शराब पीए हो, हम उससे कहें कि तुम जरा शराब पीना बंद करो, फिर दुनिया को देखो। वह कहे, मेरी सारी दुनिया बदल जाएगी। जो मैं शराब पीकर देख रहा हूं, उस सबका निषेध हो जाएगा। आप कैसी निषेध की शिक्षा देते हैं। मेरी सारी दुनिया गड़बड़ हो जाएगी। हम उससे कहेंगे कि तुम शराब पीकर जो देख रहे हो, वह दुनिया नहीं है। तुम बिना शराब के जो देखोगे, वही दुनिया है। जीवन में विचार कर, जाग कर जो देखा जाता है, वही सत्य है। इसलिए मृत्यु कोई निषेध नहीं है। मृत्यु तो एक सत्य है। वह चारों तरफ घेरे हुए है। जो उसे नहीं देख रहा है, वह अंधा है। जो उसे नहीं देख रहा है, वह जीवन को कभी नहीं जान सकेगा।
इसलिए मैंने कहा कि मृत्यु को जानें। लेकिन मैंने यह नहीं कहा कि मृत्यु को सतत स्मरण रखें। सतत स्मरण का तो अर्थ ही यह है कि आप जानते नहीं हैं। जिसे आप जानते नहीं है, उसका स्मरण रखना होता है। जिसे आप जानते हैं, उसका स्मरण नहीं रखना होता। आप जिस चीज को नहीं जानते हैं, उसका स्मरण रखना होता है।
एक, एक संन्यासी मेरे मित्र हैं, वे जब भी बैठते हैं, तो वे हमेशा स्मरण रखते हैं कि मैं ब्रह्म हूं। अहं-ब्रह्मास्मि। तो मैंने उनसे कहा कि आपको पता नहीं है इसलिए बार-बार दोहराते हैं, अगर पता हो कि मैं ब्रह्म हूं तो यह बार-बार बकवास क्यों लगा रखी है कि अहं-ब्रह्मास्मि, अहं-

ब्रह्मास्मि। यह बकवास तो इस बात का सबूत है कि आपको पता नहीं है। अगर आपको पता हो तो मामला खत्म हो गया, स्मरण रखने की क्या बात है।
स्मरण तो हम उन्हीं बातों को रखते हैं जिनका हमें पता नहीं होता।
अज्ञान का स्मरण रखा जाता है, ज्ञान का कोई स्मरण नहीं होता, ज्ञान तो है।
आप जानते हैं, बात खत्म हो गई। आपको दिख जाए कि मृत्यु है, बात खत्म हो गई। अब इसको कोई घोटना थोड़े ही पड़ेगा दिन-रात कि मृत्यु चारों तरफ मेरे, मुझे घेरे हुए है। अगर ऐसा आप दोहरा रहे हैं कि मृत्यु मुझे चारों तरफ घेरे हुए है, तो अभी आपको पता नहीं है, आप एक झूठी बात को बार-बार दोहरा कर विश्वास दिला रहे हैं। मैं लोगों को देखता हूं वे, वे इस तरह की झूठी बातों को बहुत दिन दोहराते रहते हैं, उनको लगने लगता है हमें कुछ बात का पता चल गया। नहीं, मैंने यह नहीं कहा कि सतत स्मरण रखें, मैंने कहा, स्मरण को उपलब्ध हो जाएं। सतत स्मरण रखना एक बात है, स्मरण को उपलब्ध हो जाना... । आपको यह दिख जाना चाहिए। यह अवेकनिंग आपके भीतर हो जानी चाहिए कि मृत्यु है। बात खत्म हो गई। इसके बाद कुछ याद थोड़े ही रखना है। याद रखना ही फिजूल की बातें याद रखनी पड़ती हैं। जिन बातों को आप जान लेते हैं उन्हें याद नहीं रखना पड़ता है।
स्मृति इसीलिए ज्ञान नहीं है। ज्ञान बड़ी दूसरी बात है। स्मृति भूली
जा सकती है। ज्ञान भूला नहीं जा सकता। जिसे याद रखा है उसे किसी दिन भूल भी सकते हैं। लेकिन जिसे जाना है उसे भूलने का कोई उपाय नहीं होता। क्योंकि उसे कभी याद थोड़े ही किया है, उसे जाना है। जो जाना है, वह कभी भूला नहीं जाता। और जो याद किया है, वह कभी भी भूला जा सकता है।
तो मैंने यह नहीं कहा कि आप बैठते-उठते, सोते-जागते, स्मरण रखें कि मृत्यु है। ऐसे में तो पागल हो जाएंगे। ऐसा स्मरण रखेंगे तो जरूर जीवन गड़बड़ हो जाएगा। नहीं, मैंने कहाः जानें, जागें और देखें कि क्या है, तो आपको मृत्यु दिखाई पड़ेगी। और मृत्यु दिखाई पड़ेगी तो आपके भीतर आकांक्षा पैदा होगी कि अगर यह मृत्यु है तो फिर जीवन क्या है? अगर यह सब मृत्यु है, तो मैं जीवन को जानने के लिए क्या करूं? तो आपके भीतर प्यास पैदा होगी, उस प्यास के लिए मैंने कहा कि मृत्यु के प्रति जागना उचित है।

संभव नहीं कि जीवन की जागृति रखने के लिए क्या मृत्यु का डर जरूरी है?

मैंने डर नहीं कहा मृत्यु का। क्योंकि मृत्यु से डर का मतलब ही क्या है। मृत्यु है, यह जानना जरूरी है। जो इसे नहीं जानता वही डरता है। डरने का अर्थ यह होता है कि हमें यह खयाल है कि हम किसी दिन मर जाएंगे। अभी जिसे हम जीवन समझ रहे हैं, वह छीन लिया जाएगा। तो डर इस बात का होता है कि जो हमारा जीवन है वह कहीं मृत्यु छीन न ले। डर इस बात का होता है।
लेकिन अगर आपको पता चल जाए कि आप मरे ही हुए हैं, तो डर किस बात का हो? अगर आपको पता चल जाए कि आप मर ही रहे हैं रोज, मर ही चुके हैं काफी, तो डर किस बात का होगा? जिसे आप जीवन समझ रहे हैं, वह जीवन मालूम हो, तो फिर मृत्यु का डर मालूम होता है। और अगर यही मृत्यु दिखाई पड़ने लगे, तो डर क्या होगा मृत्यु का? जो इसे मृत्यु जान लेते हैं, मृत्यु के डर के बाहर हो जाते हैं। और मृत्यु के डर के जो बाहर हो जाता है, वही व्यक्ति जीवन को जानने में समर्थ होता है। हम, हम इसीलिए डरते हैं, डरते इसीलिए हैं कि यह सब जो हमारा जीवन है, यह छिन जाएगा मृत्यु में। छिन जाएगा तो हमें मृत्यु का डर लगता है कि मृत्यु छीन लेगी।
एक साधु था जापान में। एक गांव के बाहर ठहरा हुआ था। उसकी कुछ बातें ऐसी थीं कि लोग, लोग उसके विरोध में हो गए। उसकी बातें कुछ ऐसी विद्रोह की थीं कि लोगों ने सोचा, इसकी हत्या ही कर दो। जब लोगों को कोई उत्तर नहीं सूझता किसी बात का, तो हत्या सूझती है। जब किसी बात की कोई समझ न सूझे, कुछ दिखाई न पड़े कि इस आदमी को क्या उत्तर दें, तो फिर गोली से या फांसी से उत्तर देना होता है। इसलिए जो असली प्रश्न हैं, असली उत्तर हैं, वह हमेशा लोग फिर, फिर फांसी से या जहर से दे देते हैं।

तो सोचा इस आदमी को मार ही डालें। कुछ दो-चार लोग उसको प्रेम भी करते थे, उन्होंने रात को जाकर उस साधु को खबर की कि आज तुम इस झोपड़े को छोड़ दो, आज रात खतरा है। एक गांव के एकांत में, अकेले में यह झोपड़ा है नदी के पार, लोग हत्या करने का विचार कर रहे हैं। उस साधु ने कहाः मुझे अगर पता न होता, तो मैं कहीं चला भी जाता। अब वे लोग यहां ढूंढते हुए आएंगे और मैं यहां नहीं मिलूंगा, तो कैसा, अच्छा नहीं लगेगा। तो वैसे मुझे पता नहीं होता, तो मैं कहीं चला भी जा सकता था। साधु ही ठहरा, कहीं आता-जाता रहता हूं, लेकिन आज की रात तो अब हजार काम छोड़ कर भी यहीं रहना पड़ेगा। वे लोग आएंगे और मैं नहीं मिलूंगा, अच्छा नहीं मालूम होगा। जब पता चल जाए कि मेहमान आने वाले हैं और घर का मालिक छोड़ कर भाग जाए, ठीक नहीं है।
वह साधु रुक गया। उन लोगों ने समझा, यह पागल है। और इसके साथ बैठना या इसके साथ पता चलना भी खतरनाक है। वे लोग भाग गए वहां से। रात अंधेरे में लोग उसे हत्या करने पहुंचे। रोज तो वह दरवाजा बंद करके सोता था, आज उसने दरवाजा खुला रखा था। क्योंकि बेहद उनको परेशानी हो, आकर दरवाजा खोलना पड़े। तो नाहक की परेशानी क्या देनी, उसने दरवाजा खुला रखा था। और दरवाजे के पास ही वह एक तख्त पर सोया हुआ था। वे लोग अंधेरे में गए, उन्होंने तलवार उठाई, जैसे ही तलवार उठाई वह साधु ने कहा कि मेरी आदत किसी को बीच में टोकने की कभी नहीं है, जो आदमी जो काम कर रहा है उसे करने दो। लेकिन बिल्कुल गलत काम होते हुए भी देखा नहीं जाता। तुम जिस तरफ तलवार उठाए हो उस तरफ मेरे पैर हैं, गर्दन मेरी इस तरफ है। अब तुम बिल्कुल गलती काम किए दे रहे हो। मारना हो तो तलवार गर्दन की तरफ मारनी चाहिए। अंधेरा है इसलिए तुम्हें दिखाई नहीं पड़ रहा है, लेकिन मुझे तो समझ में आ रहा है। मैं बड़ी देर से अंधेरे में हूं तो मुझे थोड़ा समझ में आता है। तुम अभी-अभी आए हो, तुम्हें दिखाई नहीं पड़ रहा। गर्दन इस तरफ है।
वे लोग तो घबड़ा गए कि यह आदमी कैसा है! तो दरवाजा खोल कर सोया है! पता चला है, इसको पता भी चल चुका है, फिर भी भागा नहीं है! और अब यह बता रहा है कि भूल-चूक मुझसे नहीं देखी जाती, पैर उस तरफ हैं, गर्दन इस तरफ है। उन लोगों ने कहाः क्या तुम्हें मरने से कोई डर नहीं है? वह साधु हंसने लगा, उसने कहाः जिस दिन मैं जाना कि जिसे तुम जीवन कहते हो, वह मृत्यु है। उसी दिन मृत्यु का भय विलीन हो गया। और अब जिसे मैं जीवन जान रहा हूं, उसे तुम्हारी तलवार न छीन सकती है, न नष्ट कर सकती है। जिसे, जिसे तुम जीवन जानते थे, वह मेरे लिए मृत्यु हो चुका है। और जिसे तुम मृत्यु जानते हो, वह मेरे लिए जीवन है।
उस साधु ने कहाः जो मर चुके हैं अपनी तरफ से उन्हें मारने का कोई उपाय नहीं है। जो जान चुके हैं कि मृत्यु हो चुकी उन्हें, उन्हें अब मारने का कोई रास्ता नहीं है। जो जीवन के भ्रम में हैं, वे ही केवल मर सकते हैं। उन्हीं को केवल मरने का भय सताता है।
यह, यह जो मैंने कहा, मैंने यह नहीं कहा कि मृत्यु के भय से आप पीड़ित हो जाएं। न, मैंने तो यह कहा कि सभी कुछ मृत्यु है--इसे जान लें, इसको समझ लें, इसे देख लें--तो उस देखने से आपके भीतर एक क्रांति घटित होगी।

पूछा है कि आप कहते हैं कि साधु को देखने से दया आती है। तो क्या कोई आत्मार्थी साधु नहीं है? सब साधु को एक ही लाइन में रखने से क्या साधुत्व का आप अपमान नहीं करते हैं?

साधुत्व का तो मैं... यह तो मैंने कहा ही नहीं कि साधुत्व पर मुझे दया आती है। मुझे तो साधु पर दया आती है। और साधुत्व में और साधु में बड़ा फर्क है। असल में जिसके भीतर साधुत्व होता है, उसे पता भी नहीं होता कि मैं साधु हूं कि गृहस्थ हूं कि क्या हूं। और जिसको इस बात का पता है कि मैं साधु हूं, वह अभी साधु का ढोंग कर रहा है।
साधुता कोई ऐसी चीज नहीं है कि आप लेबल बदल लें, कपड़े बदल लें, रंग-रूप बदल लें, तो साधु हो गए। असल में जितने लोग साधु की शक्लों में दिखाई पड़ते हैं, समझ लेना कि इन आदमियों, इन आदमियों को अपने साधु होने पर शक है।

अन्यथा यह वेश-भूषा रखने की कोई जरूरत नहीं है। इन्हें शक है थोड़ा। इन्हें शक है कि आप इन्हें साधु नहीं समझेंगे। इसलिए साधु होने का सारा ढोंग है। सारी व्यवस्था है। साधु क्या कोई, कोई... ये कोई, कोई मिलिटरी के सैनिक हैं क्या कि इनको तगमे लगा दिए और ड्रेस पहना दी और नंबर लगा दिए। और वैसी ही हालत साधुओं की भी है। वे भी तगमे लगाए हुए हैं।
एक साधु गांधी के पास पीछे आया था। संन्यासी था। गैरिक वस्त्र पहने हुए था। उसने आकर गांधी से कहा कि मैं, मैं सेवा करना चाहता हूं। मैं आपकी बातों से प्रभावित हो गया हूं। अमरीका में था, वहां से चला आया हूं। तो गांधी ने कहाः पहली सेवा यह करो कि ये गैरिक वस्त्र उतार दो। ये गेरुए वस्त्र अलग कर दो, पहली सेवा यह करो। उसने कहाः क्यों इससे क्या बाधा है आपको? तो गांधी ने कहाः क्या तुम्हें अपने साधु होने में शक है? क्या तुम्हें संदेह है कि तुम्हारे गेरुए वस्त्र छिन जाएंगे तो तुम्हारी साधुता छिन जाएगी? और जिनकी साधुता वस्त्रों में इस तरह बंधी हो, उनको साधु कहिएगा?
साधु बड़ी दूसरी बात है, साधुत्व बड़ी दूसरी बात है। साधुत्व का तो आदर होना ही चाहिए। लेकिन साधु के आदर के कारण साधुत्व का आदर नहीं हो पाता। आप साधुओं को पूज रहे हैं, और इसलिए अनेक बार साधुत्व आपकी नजर में दिखाई ही नहीं पड़ता। और सच में जिसके भीतर साधुत्व होगा, वह कोई साइन बोर्ड लगा कर घूमेगा, यह मैं कल्पना भी नहीं कर सकता। ऐसी चाइल्डिस्ट, ऐसी बचकानी बात उसके दिमाग में उठेगी, कि वह ढोंग करे, व्यवस्था करे। खास तरह के कपड़े पहने और खास तरह के, खास तरह के पाखंड को रचे, यह कल्पना इतनी इम्मैच्योर है, यह इतनी बचकानी है कि किसी थोड़े से समझदार आदमी को भी इसमें शक मालूम होगा। लेकिन वह हमें दिखाई पड़ रहा है।
और इसका कारण यह हुआ कि धीरे-धीरे साधुत्व तो आदर के नीचे उतर गया है,
और साधु आदर पर बैठ गया है। मैं साधु को आदर से उतार ही देना चाहता हूं। ताकि साधुत्व की प्रतिष्ठा हो सके। और साधुत्व को देखने के लिए आंखें चाहिए, साधु को देखने को तो अंधे भी पहचान लेते हैं कि यह साधु जा रहा है।
लेकिन साधुत्व को देखने के लिए आंखें चाहिए। बड़ी गहरी आंखें चाहिए। साधुत्व को पहचानना उतना आसान नहीं है। और साधुत्व को आदर देना तो और भी कठिन है। इसलिए कठिन है कि साधुत्व आपके बंधे-बधाए ढांचों में नहीं पाया जाता। और आपने जो ढांचे बना दिए हैं, उनमें कभी खड़ा नहीं होता।
इसलिए हमेशा यह होता है जब साधु पैदा होता है साधुत्व वाला, तभी दुनिया में एक नया पंथ बन जाता है। क्योंकि पुराने किसी पंथ के ढांचे में वह साधु बैठता नहीं। उसी साधु को लेकर अब नया पंथ बनाना पड़ता है, क्योंकि वह एक नये ढांचे का आदमी होता है। अगर आप जैनियों से पूछें कि क्राइस्ट साधु हैं। तो वे कहेंगे, कैसे हो सकते हैं, क्योंकि महावीर के ढंग के तो नहीं हैं। कैसे हो सकते हैं? आखिर महावीर का एक ढंग है, नंगे खड़े हुए हैं। तो क्राइस्ट तो कपड़े पहने हुए हैं तो यह कैसे साधु होंगे? ये कैसे साधु हो सकते हैं? तो एक ढांचा है।
महावीर को देख कर एक ढांचा बना लिया गया। अब उस ढांचे में जो फिट हो जाएगा, वह जैनियों को साधु दिखाई पड़ेगा। बुद्ध को देख कर बौद्धों ने एक ढांचा बना लिया। उस ढांचे में जो फिट हो जाएगा, वह बौद्धों को साधु दिखाई पड़ेगा। और बड़े मजे की बात यह है, कोई साधु आपके ढांचे में फिट होने को आएगा, और जो आपके ढांचे में फिट होने को आ जाए, उसको साधु कहिएगा?
साधु अपना जीवन जीता है। सहज जीवन जीता है। अपना ढांचा उसका विकसित होता है, वह किसी के ढांचे को अंगीकार नहीं करता। वह अपने ढंग से जीता है। अपने बोध से जीता है। तो जब भी ये ढांचे में बंधे हुए लोग दिखाई पड़ें तो समझना, समझना कि इनके भीतर अभी साधुता का जन्म नहीं हुआ। अभी यह साधु होने के भ्रम में पड़े हुए हैं।
एक, एक... एक स्मरण मुझे आता है। एक आश्रम में बहुत से भिक्षु थे। और एक आदमी ने आकर पूछा, उस आश्रम के गुरु से, मुझे भी साधु होना है। तो उस आश्रम के गुरु ने कहाः तुम्हें साधु दिखना है या साधु होना है? इन दोनों में फर्क है। उस गुरु ने कहाः तुम्हें साधु दिखना है या साधु होना है। अगर

दिखना है तो बिल्कुल आसान बात है, अगर होना है तो बहुत कठिन है। दिखना बिल्कुल आसान है। अभी आप यहां बैठे हैं, आधा घड़ी भी नहीं लगेगी, आप साधु हो जाएंगे। कपड़े बदल लीजिए, सिर घुटा लीजिए, किसी का आशीर्वाद ले लीजिए, आप साधु हो गए। अभी आप दूसरों के पैर पड़ते थे, दूसरे आपके पैर पड़ने लगेंगे।
आधा घड़ी में आप गृहस्थ से अब आप साधु हो गए।
इतनी मजाक बनाई हुई है साधुता की।
साधुता जीवन भर की गहरी उपलब्धि है। कोई साधु नहीं होता।
अभी एक बहुत बड़े साधु ने मुझसे पूछा आप, आप साधु क्यों नहीं हो जाते? मैंने कहाः साधुता कोई ऐसी बात है कि कोई चाहे तो हो जाए? साधुता तो विकसित होती है, ग्रोथ है। बहुत आहिस्ता-आहिस्ता मनुष्य के चित्त में परिवर्तन होता रहता है और एक बढ़ती होती है। उसे पता भी नहीं चलता कि कब क्या हो गया? कब दुनिया छूट गई और वह दूसरा आदमी हो गया। दूसरों को भला पता चल जाता हो, उसे पता भी नहीं चलता।
आपको पता चला आप किस दिन जवान हुए? आपको पता चला आप किस दिन बूढ़े हुए? आपको बिल्कुल पता नहीं चला, दूसरों ने आपको कहा होगा कि अब तो आप बूढ़े हो गए। लेकिन आपको पता चला था पहले कि आप बूढ़े हो गए, किस दिन बूढ़े हो गए? जीवन में जो भी महत्वपूर्ण है, वह बहुत धीरे-धीरे भीतर-भीतर विकसित होता रहता है। उसका पता भी नहीं चलता कि कब क्या हुआ? लेकिन हम देखते हैं, एक आदमी कल तक गृहस्थ था। उसकी पत्नी मर गई, वह अब साधु हो गया। एक आदमी दुकानदार था। उसका घाटा लग गया, वह साधु हो गया। एक आदमी को कोई और तकलीफ आ गई, वह साधु हो गया। एक आदमी का दिमाग खराब था, उसने ज्यादा जोर से गीता पढ़ ली, वह साधु हो गया। किसी ने रामायण पढ़ ली, वह साधु हो गया। किसी ने किसी की बात सुन ली, वह प्रभावित हो गया, भावाविष्ट हो गया, और साधु हो गया। इतनी, इतनी आसान बात है क्या?
साधुता जीवन भर का अर्जन है। बड़े धीरे-धीरे पौधा बड़ा होता है, और फूल आते हैं। बहुत धीरे-धीरे जीवन भर के अनुभव और बोध से भीतर साधुता का फूल उत्पन्न होता है। और जब वह उत्पन्न होता है, तो वह इस तरह की नासमझी की बातों में प्रकट नहीं होता।
जापान का एक राजा था, उसने कहा है कि मैं किसी साधु को मिलना चाहता हूं। लोगों ने उससे कहाः इतने साधु हैं, किसी से भी मिल लें। उसने कहाः ये, लेकिन इनसे नहीं, मैं तो किसी साधु से मिलना चाहता हूं। तो उन्होंने कहाः गांव के बाहर पहाड़ी के पास एक आदमी रहता है, एक बूढ़ा आदमी, शायद, उसके वजीरों ने कहा कि वह आपको साधु मालूम पड़े। वह राजा वहां गया। उसके निकट रहा, वह उससे बहुत प्रभावित हुआ। कुछ दिन रहने के बाद उसने जाना कि इस आदमी को कुछ मिला है, इसकी आंखों में कोई झलक है, इसके प्राणों में कोई स्पंदन है, इसके आचरण में कोई संगीत है, इसने कुछ जाना है। तो उसने कहा कि मैं आपको अपना राज्य-गुरु बनाना चाहता हूं। वह एक बहुत बहुमूल्य कीमती लबादा बनवा कर ले गया। उसमें उसने हीरे-जवाहरात जड़वाए, मखमल का उसे बनवाया और जाकर उस साधु को पहनाया। वह साधु खूब हंसने लगा, उसने कहा कि इसे तुम प्रेम से देते हो, तो मैं इनकार कैसे करूं? लेकिन तुम इसे ले जाओ। इसलिए इसे यहां से ले जाओ कि यहां जंगल में तो भालू हैं, बंदर हैं, कुत्ते हैं, ये ही मेरे मित्र हैं। वे इस लबादे में मुझे पहने देख कर बहुत हंसने लगेंगे कि यह बूढ़ा हो गया है फिर भी अभी बचपना, फिर भी इसमें बचपना है अभी, अभी भी नीला चोगा पहन कर घूम रहा है जंगल में। तो इसे तुम ले जाओ। यहां कोई आदमी तो रहता नहीं जो मेरे चोगे को देख कर बुद्धू बन जाए, यहां तो जंगल के जानवर हैं, वे बहुत हंसने लगेंगे। वे कहेंगे कि यह बूढ़ा हो गया, फिर भी अभी इसकी बुद्धि बचकानी है, चोगा पहन कर घूम रहा है। तो उसने कहा कि इसे ले जाओ।
लेकिन यह आप जिनको साधु कहते हैं, वे क्या कर रहे हैं? इनकी बुद्धि बड़ी बचकानी है। और इसलिए ये बचकानी बुद्धि के लोग सारी दुनिया में उपद्रव का कारण बने हुए हैं। ये साधु दुनिया को लड़वा रहे हैं और कटवा रहे हैं और परेशान कर रहे हैं। इन साधुओं के ऊपर बहुत हत्या, बहुत भार, बहुत जिम्मा है। जितना असाधुओं ने पाप नहीं किया, इन साधुओं ने किया है और कर रहे हैं और रोज किए जा रहे हैं। और फिर भी हम, हम पूछते हैं कि साधु का अपमान।

साधु के अपमान का प्रश्न नहीं है। यह साधु के नाम से जो चल रहा है, उसका मैं कह रहा हूं। और इसीलिए उसके लिए कह रहा हूं कि ताकि वास्तविक साधुता के प्रति हमारे मन में एक सम्मान पैदा हो, हम उसे पहचानना और जानना सीख सकें। उसे जानने और पहचानने के लिए कुछ और बातें जरूरी हैं, कपड़े का परिवर्तन नहीं। तो सारे जीवन की क्रांति जरूरी है। सारे जीवन की क्रांति। और जीवन की सहजचर्या जरूरी है।
जब कोई साधु हो जाता है तो जीवन अत्यंत सहज हो जाता है। उसके जीवन की सारी जटिलता विलीन हो जाती है। उसके जीवन में लाभ-हानि शून्य हो जाते हैं।
इनको आप साधु कह रहे हैं, ये चौबीस घंटे लाभ-हानि की भाषा में सोच रहे हैं।
इन्होंने अगर घर भी छोड़ा है तो इस खयाल में कि इसके बदले में स्वर्ग मिलेगा या मोक्ष मिलेगा। ये पुराने दुकानदार ही हैं। इनके सोचने के ढंग वही प्रॉफिट के हैं। यह छोड़ा है, यह मिलेगा।
जो आदमी भी त्याग इसलिए करता हो कि इसके बदले में कुछ मिलेगा, उसने त्याग किया ही नहीं। वह तो अभी पुराने ही हानि-लाभ के हिसाब से सोच रहा है। इन साधुओं में आप जाइए और पूछिए कि आपने घर त्याग क्यों किया? वे कहेंगे, मोक्ष के लिए। यानी घर-त्याग जैसी सड़ी चीज के बदले में मोक्ष पाने का हिसाब बिठा रहे हैं। घर क्या छोड़ दिया है, मोक्ष पाना चाहते हैं। बहुत सस्ती कीमत पर पाना चाहते हैं। और अगर घर की कीमत पर ही मोक्ष मिलता हो, तो कितने समझदार लोग लेने उसे राजी होंगे? कौन उसे लेने राजी होगा जो घर के छोड़ देने से मिल जाता हो? पर यह, यह सोच रहे हैं, कुछ छोड़ दिया तो कुछ मिल जाएगा। जो मिलने के खयाल से छोड़ रहा है, वह छोड़ ही नहीं रहा। छोड़ना तो होता है व्यर्थता के बोध से। एक चीज व्यर्थ हो जाती है और छूट जाती है। वह तो अलग बात है।
इसलिए साधु को मैं कहता हूं, वह कुछ भी छोड़ता नहीं है, उससे चीजें छूट जाती हैं। वह कुछ छोड़ता नहीं है, उससे चीजें छूट जाती हैं। वह किन्हीं चीजों का त्याग नहीं करता है, उससे कुछ चीजें परित्यक्त हो जाती हैं। उसके जीवन में जो-जो व्यर्थ हो जाता है उस पर उसकी पकड़ विलीन हो जाती है। किसी चीज के बदले में पाने के लिए नहीं। मोक्ष त्याग का बदला नहीं है। असल में त्याग अगर ठीक से हो जाए तो वही मोक्ष है। त्याग बदला नहीं है किसी चीज के छोड़ने का। मोक्ष का मतलब हैः सब चीजें छूट जाएं, तो आप मुक्त हैं।
लेकिन जो आदमी किसी चीज को पाने के लिए कुछ छोड़ रहा है, वह तो बंधन में
ही है। जो अभी मोक्ष की कामना से संन्यासी हुआ है वह अभी बंधन के भीतर है। अभी उसकी कामना भी है, अभी बंधन भी है, अभी लेन-देन भी है, अभी कुछ छोड़ रहा है, कुछ पाने का खयाल भी है। अभी वासना, अभी कामना कहीं गई नहीं है। तो इनको मैं साधु नहीं कहता हूं।
साधु मैं उसे कहता हूं, जिसके जीवन के ज्ञान में कुछ चीजें उसके हाथों
से अपने आप छूट गई हों। धीरे-धीरे, धीरे-धीरे उसका सब छूट जाए और वह अकेला ही रह जाए। अकेली चेतना मात्र रह जाए, और उसकी कोई पकड़ किसी चीज पर न हो। वैसी स्थिति में जब साधुता फलित होती है, तो मैंने कहा पहचानना कठिन होता है। हम बहुत अंधे लोग हैं, हम ऊपरी चीजें पहचान लेते हैं, भीतरी चीजें पहचानना बहुत मुश्किल है। इसलिए जब असली साधु पैदा होगा तो आप या तो उसको पत्थर मारेंगे, या उसको गोली मारेंगे, या जहर पिलाएंगे, या फांसी लटका देंगे। और जब नकली साधु होगा, तो आप उसके पैरों में सिर रखेंगे, धन चढ़ाएंगे, उसकी पूजा करेंगे, प्रार्थना करेंगे। असली साधु के साथ तो बहुत दुर्व्यवहार होता रहा है। और नकली साधु के साथ बहुत सदव्यवहार होता रहा है।
इसलिए मैं, मैं साधु के तो विरोध में हूं, जिसको हम साधु करके जानते हैं। लेकिन साधुता के विरोध में नहीं हूं। उसी के लिए तो सारी बातें कह रहा हूं कि वह साधुता कैसे विकसित हो सके?

प्रश्न और बहुत से हैं, कल उनकी चर्चा हो सकेगी।
कि धार्मिक पुस्तकों का पढ़ना और समझना क्या धर्म को समझने के लिए जरूरी नहीं है?

बिल्कुल भी जरूरी नहीं है। धर्म के संबंध में कुछ जानना हो, तो पुस्तकें पढ़नी जरूरी है। लेकिन धर्म को जानना हो, तो पुस्तकें पढ़नी जरूरी नहीं है। धर्म के संबंध में कुछ जानना हो, तो पुस्तकें बहुत जरूरी हैं, लेकिन धर्म को जानना हो, तो पुस्तकें बिल्कुल जरूरी नहीं हैं। धर्म को जानना हो, तो स्वयं को पढ़ना होगा। और धर्म के संबंध में जानना हो, तो ग्रंथ हैं, शास्त्र हैं, उनको पढ़ना होगा। धर्म के संबंध में जो पढ़ता है, वह धार्मिक नहीं होता, धर्म-पंडित हो जाता है। और धर्म को जो जानता है, वह धार्मिक हो जाता है।
धार्मिक में और पंडित में फर्क तो आपको दिखाई पड़ता है न?
पंडित वह है जो धर्म के संबंध में सब जानता है। लेकिन उसके ऊपर शास्त्र गधे पर लदे हुए, लदे हुए शास्त्रों की भांति है। उसके जीवन में उसका कोई संबंध नहीं है, वह धार्मिक आदमी नहीं है। वह बोझढ़ो रहा है। पंडित बोझढोता है। उसकी अपनी प्रज्ञा नहीं खुली हुई है। उसका अपना बोध नहीं जगा हुआ है। लेकिन धार्मिक आदमी बिल्कुल दूसरी बात है।
इसलिए कई बार यह होता है कि जिन्होंने कोई शास्त्र नहीं जाने, वे भी धार्मिक हो जाते हैं। और जिन्होंने बहुत शास्त्र जाने हैं, वे भी धार्मिक नहीं हो पाते। अभी तक दुनिया के इतिहास में ऐसे मौके कम ही आए हैं जब शास्त्रों को जानने वाले भी धार्मिक हो गए हों। अभी तक मौके तो ऐसे ही आते रहे हैं कि शास्त्रों को जानने वाले नहीं, शास्त्रों को न जानने वाले लोग धार्मिक हो गए हैं। और कारण है उसका, शास्त्रों को जानने से चित्त जटिल हो जाता है, ज्यादा कांप्लेक्स हो जाता है।
और शास्त्रों को जानने से प्रश्न अधूरे ही मर जाते हैं, क्योंकि दूसरों के उत्तर से तृप्ति हो जाती है। खुद की खोज बंद हो जाती है। हम राजी हो जाते हैं कि जो शास्त्रों में लिखा है ठीक है। खोज समाप्त हो जाती है। हम उत्तर सीख लेते हैं और दोहराने लगते हैं। और बार-बार दोहराने से हमको खुद ही भ्रम हो जाता है कि हम जानते हैं। इसलिए बहुत बार शास्त्र को पढ़ने वाला इस भ्रम में पड़ जाता है कि वह सत्य को जानता है। सत्य को जानना बिल्कुल दूसरी बात है।
सत्य के जानने के लिए चित्त का सरल होना जरूरी है। और चित्त इतना सरल
हो कि उसमें कोई शास्त्र न रह जाए, कोई शब्द न रह जाए, कोई सिद्धांत न रह जाए। जब चित्त इतना सरल होता है कि उसमें न कोई शास्त्र है, न कोई शब्द है, न कोई विचार है, न कोई सिद्धांत है, न कोई धर्म है, उस सरलता में, उस इनोसेंस में जिस चीज का अनुभव होता है--वह सत्य है, वह धर्म है। और उसके अनुभव के बाद जीवन में क्रांति हो जाती है। सारा जीवन बदल जाता है। उस शांति में जो जाना जाता है, वह अनिवार्यतया आचरण में आ जाता है। ज्ञान ही आचरण बन जाता है। इस संबंध में और कुछ बातें होंगी तो वह मैं कल आपसे कर सकूंगा।

इन सारी बातों को इतने प्रेम से सुना है, उसके लिए बहुत-बहुत अनुगृहीत हूं। और अंत में सबके भीतर बैठे परमात्मा को प्रणाम करता हूं। मेरे प्रणाम स्वीकार करें।

विज्ञान, धर्म और कला
सातवां प्रवचन

धर्म और विज्ञान का समन्वय

मनुष्य के जीवन की सारी यात्रा, जो अज्ञात है उसे जान लेने की यात्रा है। जो नहीं ज्ञात है उसे खोज लेने की यात्रा है। जो नहीं पाया गया है उसे पा लेने की यात्रा है। जो दूर है उसे निकट बना लेने की। जो कठिन है उसे सरल कर लेने की। जो अनुपलब्ध है उसे उपलब्ध कर लेने की। मनुष्य की इस यात्रा ने स्वभावतः दो दिशाएं ले ली हैं। एक दिशा मनुष्य के बाहर की ओर जाती है, दूसरी मनुष्य के भीतर की ओर।
एक फकीर औरत थी, राबिया। एक सुबह उसका एक मित्र फकीर उसके झोपड़े के बाहर आकर उसे बुलाने लगा और कहने लगा, राबिया, तू भीतर क्या कर रही है? बाहर आ। सूरज निकल रहा है। और बड़ी सुंदर सुबह का जन्म हुआ है। इतना सुंदर प्रभात मैंने कभी नहीं देखा। तू भीतर द्वार बंद किए क्या करती है? बाहर आ। राबिया भीतर से हंसने लगी और उसने कहाः हसन, बाहर के सूरजों को मैंने बहुत देखा, बाहर, बाहर की प्रभात भी मैंने बहुत देखी, बहुत सुंदर सुबह देखी, बहुत सुंदर रात्रियां देखीं। बड़ी अदभुत हैं। लेकिन जब से मैं भीतर आ गई हूं, तब से जो देखा है, उसके सौंदर्य के आगे बाहर का सौंदर्य कुछ भी नहीं है। तो मैं तुझसे कहती हूं हसन, तू ही भीतर आ जा। तू बाहर क्या कर रहा है? पता नहीं हसन की समझ में बात आई या नहीं। लेकिन एक तो जगत वह है जो आंखों से दिखाई पड़ता है, और एक जगत वह भी है जो आंखों से दिखाई नहीं पड़ता है। एक सत्य वह भी है जो हाथ के स्पर्श में आ जाता है, और एक सत्य वह भी है जिसकी सपनों में झलक मिलती है। एक हमसे बाहर है जगत, और एक हमारे भीतर भी। और इन दोनों जगतों का अपना सौंदर्य है, अपना सत्य है। इन दोनों जगतों की अपनी सच्चाई है, अपना यथार्थ है। शायद अंततोगत्वा, अल्टीमेटली ये दोनों जगत किसी एक ही चीज के दो पहलू हों। लेकिन साधारणतः ऊपर से देखे जाने पर ये दो दिखाई पड़ते हैं। इन दो के कारण ही धर्म और विज्ञान का जन्म हो गया।
जो जगत बाहर है, उसकी खोज; जो अज्ञात, जो अननोन, बाहर है, उसे जान लेने
की यात्रा विज्ञान बन गई है। और जो जगत भीतर है, वह जो अज्ञात भीतर है, उससे परिचित हो जाने की, उसे जी लेने की और जान लेने की यात्रा धर्म बन गई। और मनुष्य की समृद्धि और शांति इसमें ही निर्भर है कि ये दोनों यात्राएं विरोधी न हों--सहयोगी हों, साथी हों, समन्वित हों। लेकिन अब तक ऐसा नहीं हो सका।
अब तक जिन लोगों ने पदार्थ की जगत में खोज की है, वे लोग परमात्मा के विरोधी रहे हैं। और जिन लोगों ने परमात्मा की खोज की है, वे पदार्थ के निंदक रहे हैं। इन दोनों तरह के लोगों ने मनुष्य की संस्कृति को परिपूर्ण होने से रोका है। इन दोनों ने ही उसे परिपूर्ण होने से रोका है। क्योंकि मनुष्य न केवल शरीर है, न केवल आत्मा है; मनुष्य न केवल पदार्थ है, न केवल परमात्मा है; मनुष्य तो दोनों का अदभुत मिलन और संगीत है। मनुष्य का जीवन दोनों के मध्य एक सेतु है, एक ब्रिज है। और इस बात को आज तक विस्मरण किया गया है, झुठलाया गया है।
जिन लोगों ने परमात्मा की प्रशंसा की, उन्होंने पदार्थ की निंदा पर परमात्मा की प्रशंसा की, जो गलत थी। पदार्थ के गौरव और गरिमा पर भी परमात्मा की प्रशंसा हो सकती थी। जिन लोगों ने पदार्थ की खोज-बीन की है और पदार्थ पर विजय की है, उन्होंने यह विजय परमात्मा की तरफ उपेक्षा, विरोध और अस्वीकार से की है।
यह परमात्मा के साथ और परमात्मा की प्रार्थना के साथ भी हो सकती थी। इसमें परमात्मा का कोई विरोध न था। लेकिन यह अब तक नहीं हुआ कुछ कारणों से। और विज्ञान और धर्म दो शत्रुओं की भांति खड़े हो गए हैं। उनकी शत्रुता मनुष्य के लिए बहुत महंगी पड़ रही है।
पश्चिम विज्ञान का प्रतीक बन गया है। पूरब धर्म का प्रतीक बन गया है।
विज्ञान नास्तिकता का प्रतीक बन गया है, धर्म अलौकिकता का। ये दोनों ही बातें भ्रांत हैं और गलत हैं। ये दोनों ही बातें अधूरी और एकांगी हैं।

एक छोटी सी कहानी मुझे स्मरण आती है, उससे मैं यह बात समझाना चाहूंगा। रोम में एक सम्राट बीमार पड़ा हुआ था। वह इतना बीमार था कि चिकित्सकों
ने अंततः इनकार कर दिया कि वह नहीं बच सकेगा। सम्राट और उसके प्रियजन बहुत चिंतित हो आए। और अब एक-एक घड़ी उसकी मृत्यु की प्रतीक्षा ही करनी थी। और तभी रोम में यह खबर आई कि एक फकीर आया है जो मुर्दों को भी जिला सकता है। सम्राट की आंखों में आशा वापस लौट आई। उसने अपने वजीरों को भेजा उस फकीर को ले आने को। वह फकीर आया। और फकीर ने आकर उस सम्राट को कहा कि कौन कहता है कि तुम मर जाओगे? तुम्हें तो कोई बड़ी बीमारी भी नहीं है। तुम उठ कर बैठ जाओ, तुम ठीक हो सकोगे, एक छोटा सा इलाज कर लो। सम्राट जो महीनों से लेटा हुआ था, उठा नहीं था, उठ कर बैठ गया। उसने कहाः कौन सा इलाज? जल्दी बताओ उसके पहले कि मैं समाप्त न हो जाऊं। क्योंकि चिकित्सक कहते हैं कि मेरा बचना मुश्किल है। वह फकीर बोलाः क्या तुम्हारी इस राजधानी में एकाध ऐसा आदमी नहीं मिल सकेगा जो सुखी भी हो और समृद्ध भी? अगर मिल सके तो उसके कपड़े ले आओ और उसके कपड़े तुम पहन लो, तुम बच जाओगे। तुम्हारी मौत पास नहीं। वजीर बोलेः यह तो बहुत आसान सी बात है। इतनी बड़ी राजधानी है, इतने सुखी, इतने समृद्ध लोग हैं, महलों से... आकाश छू रहे हैं महल, आपको दिखाई नहीं पड़ता? यह वस्त्र हम अभी ले आते हैं।
फकीर हंसने लगा, उसने कहाः अगर तुम वस्त्र ले आओ तो सम्राट बच जाएगा।
वे वजीर भागे। वह उस फकीर की हंसी को कोई भी न समझ सका। वे गए नगर के सबसे बड़े धनपति के पास और उन्होंने जाकर कहा कि सम्राट मरणशय्या पर है और किसी फकीर ने कहा है कि वह बच जाएगा, किसी सुखी और समृद्ध आदमी के वस्त्र चाहिए, आप अपने वस्त्र दे दें। वह नगर सेठ की आंखों में आंसू आ गए। उसने कहाः मैं अपने वस्त्र ही नहीं, अपने प्राण भी दे सकता हूं अगर सम्राट बचते हों, लेकिन मेरे वस्त्र काम नहीं आ सकेंगे। मैं समृद्ध तो हूं, लेकिन सुखी मैं नहीं हूं। सुख की खोज में मैंने समृद्धि इकट्ठी कर ली, लेकिन सुख से अब तक मिलन नहीं हो सका। और अब तो मेरी आशा भी टूटती जाती है। क्योंकि जितनी समृद्धि संभव थी मेरे पास आ गई है और अब तक सुख के कोई दर्शन नहीं हुए। मेरे वस्त्र काम नहीं आ सकेंगे। मैं दुखी हूं, मैं क्षमा चाहता हूं।
वजीर तो बहुत हैरान हुए। उन्हें फकीर की हंसी याद आई। लेकिन और लोगों
के पास जाकर पूछ लेना उचित था। वे नगर के और धनपतियों के पास गए। और सांझ होने लगी। और जिसके पास गए उसी ने यह कहा कि समृद्धि तो बहुत है लेकिन सुख, सुख से हमारी कोई पहचान नहीं है। वस्त्र हमारे काम नहीं आ सकेंगे।
फिर तो वे बहुत घबड़ाए कि सम्राट को क्या मुंह दिखाएंगे? सम्राट खुश हो गया है। और यह इलाज हमने समझा था कि सस्ता है, यह तो बहुत महंगा मालूम पड़ता है, बहुत कठिन। तभी उनके पीछे दौड़ता हुआ सम्राट का बूढ़ा नौकर हंसने लगा और उसने कहा कि जब फकीर हंसा था तभी मैं समझ गया था। और जब तुम सम्राट के सबसे बड़े वजीर भी अपने वस्त्र देने का खयाल तुम्हारे मन में न उठा और दूसरों के वस्त्र मांगने चले, तभी मैं समझ गया था कि यह इलाज मुश्किल है। ये वस्त्र मिलने कठिन हैं। क्योंकि सम्राट का बड़ा वजीर भी यह नहीं सोचता है कि अपने वस्त्र दे दूं। उस वजीर ने कहा कि मैं अपने वस्त्र कैसे देता? समृद्धि तो मेरे पास है लेकिन सुख, सुख से तो मेरा भी कोई संबंध नहीं हो सका है। फिर उन वजीरों ने सोचा कि सम्राट मरेगा ही, बचना कठिन है। उस फकीर ने धोखा दे दिया। लेकिन दिन की रोशनी में सम्राट को क्या चेहरा दिखाएंगे, तो उन्होंने सोचा कि रात हो जाए फिर अंधेरे में चलेंगे और रोकर और प्रार्थना कर देंगे कि नहीं, यह इलाज नहीं हो सकता। फिर जब सूरज ढल गया तो सम्राट के महल के पास पहुंचे। महल के पीछे ही गांव की नदी बहती थी। अंधेरे में नदी के उस पार से किसी की बांसुरी की आवाज सुनाई पड़ रही थी। वह संगीत बड़ा मधुर था। वह संगीत बड़ी शांति की खबर लिए हुए था। उस संगीत की लहरों के साथ आनंद की भी कोई धुन थी। उन वजीरों ने सोचा कि शायद इस बांसुरी बजाने वाले आदमी को सुख मिल गया। इससे और पूछ लें, इससे पहले कि सम्राट को इनकार करें। एक और कोशिश कर लें।
वे नदी पार करके उस आदमी के पास अंधेरे में पहुंचे। जैसे-जैसे पास गए वैसे-वैसे उन्हें लगा कि शायद यही वह आदमी है जिसके वस्त्र काम आ जाएंगे।

उसके संगीत में ही कुछ ऐसी बात थी कि उनके प्राण भी जो निराशा और उदासी से भरे थे वे भी पुलक उठे, वे भी नाचने लगे। वे उस आदमी के पास पहुंचे और उन्होंने कहा कि मित्र, हम बहुत संकट में हैं, हमें बचाओ, सम्राट मरणशय्या पर पड़ा है। हम तुमसे यह पूछने आए हैं कि तुम्हें जीवन में आनंद मिला है? वह आदमी कहने लगाः आनंद, आनंद मैंने पा लिया है। कहो, मैं क्या कर सकता हूं? वे खुशी से भर गए और उन्होंने कहा कि तुम्हारे वस्त्रों की जरूरत है। सम्राट मरणशय्या पर है और किसी सुखी और समृद्ध आदमी के वस्त्र चाहिए। वह आदमी हंसने लगा, उसने कहाः मैं अपने प्राण दे दूं, सम्राट को बचाना हो, लेकिन वस्त्र मेरे पास नहीं हैं, मैं नंगा बैठा हुआ हूं। अंधेरे में आपको दिखाई नहीं पड़ रहा।
उस रात वह सम्राट मर गया। क्योंकि समृद्ध लोग मिले, जिनका सुख से कोई परिचय न था। एक सुखी आदमी मिला, जिसके पास वस्त्र भी न थे। अधूरे आदमी मिले, एक भी पूरा आदमी न मिला। जिसके पास वस्त्र भी हों और जिसके पास आत्मा भी हो, ऐसा कोई आदमी नहीं मिला। इसलिए सम्राट मर गया।
पता नहीं यह कहानी कहां तक सच है। लेकिन आज तो पूरी मनुष्यता मरणशय्या पर पड़ी है। और आज भी यही सवाल है कि क्या हम ऐसा मनुष्य पैदा कर सकेंगे जो समृद्ध भी हो, शांत भी? जिसके पास वस्त्र भी हों और आत्मा भी? जिसके पास संपदा हो बाहर की और भीतर की भी? जिसके पास शरीर के सुख भी हों और आत्मा के आनंद भी?
पश्चिम ने वस्त्र पैदा कर लिए। विज्ञान वस्त्र ही पैदा कर सकता है। विज्ञान मनुष्य को आत्मा नहीं दे सकता। विज्ञान समृद्धि दे सकता है। और बहुत समृद्धि दे सकता है। और मनुष्य को अपूर्व समृद्धि से समृद्ध कर सकता है। पश्चिम ने समृद्धि इकट्ठी कर ली है और वस्त्र, और वस्त्र, और वस्त्र बढ़ते चले गए। लेकिन भीतर की आत्मा खो गई, भीतर की शांति खो गई। भीतर का आनंद खो गया। आदमी वहां खड़ा है घबड़ाया हुआ कि सब हमारे पास है, सिर्फ हमको छोड़ कर। भीतर सब खाली है, बाहर सब भर गया है। भीतर आदमी रिक्त होता चला गया और बाहर सामग्री बढ़ती चली गई।
आज आदमी को अपने ही द्वारा इकट्ठे किए गए सामान में खोजना कठिन हो गया है। वह पश्चिम ने अकेले विज्ञान की यात्रा की है, वह समृद्ध हो गया। पूरब दरिद्र से दरिद्र होता चला गया। उसके सब वस्त्र छिन गए, उसकी रोटी छिन गई। वह भूखा और गरीब होता चला गया। उसने कुछ शांति के स्वर पाए। उसने कोई बांसुरी बजाई भीतर की, उसने कोई संगीत अनुभव किया--किसी बुद्ध ने, किसी महावीर ने किन्हीं ऊंचाइयों पर किसी बहुत गहरे आनंद को प्रतीत किया। लेकिन अधिकतम लोग नंगे और उघाड़े होते चले गए। भूखे, दीन-हीन और दास होते चले गए। अकेले धर्म की यात्रा यही कर सकती थी। अकेले धर्म की खोज यही कर सकती थी कि आदमी दीन-हीन होता चला जाए।
भीतर के लिए, बाहर की कुर्बानी का यही परिणाम हो सकता था कि मुल्क, राष्ट्र, वे लोग जो भीतर की यात्रा में एकांगी रूप से पड़ गए हैं वे दास हो जाएं। जिनके पास शक्ति थी बाहर की, वे विजेता होते चले गए। जिनके पास बाहर की कोई शक्ति नहीं थी, वे पराजित होते चले गए।
अकेले धर्म ने पूरब को दीन-हीन कर दिया बाहर से। अकेले विज्ञान ने पश्चिम को दीन-हीन कर दिया भीतर से। अकेला पूरब मर गया धर्म के एकांगीपन से। पश्चिम मर रहा है विज्ञान के एकांगीपन से। क्या इन दोनों के बीच कोई सिंथेसिस, कोई समन्वय संभव नहीं?
पूरब समाप्त हो गया है, पूरब मर चुका है। और पूरब को अब एक ही रास्ता सूझता है कि वह पश्चिम का अनुसरण करे। पूरब को बचने का अब कोई और उपाय नहीं दिखता है कि वह पश्चिम का अनुयायी हो जाए। और यदि उसे दिखाई पड़ रहा है कि पश्चिम का अनुयायी होकर भी वह कहां पहुंचेगा? जहां पश्चिम पहुंचा है वहीं तो पहुंच सकता है।
वह भी कोई सुखद आशा नहीं मालूम पड़ती। वह भी कोई नियति, वह भी कोई भविष्य बहुत कामना-योग्य नहीं प्रतीत होता। लेकिन और कोई विकल्प नहीं दिखता। पश्चिम भी ऐसी जगह पहुंच गया है जहां वह पूरब का अनुयायी हो जाना चाहता है।

यह बड़े मजे की घटना घट गई है। पश्चिम के वैज्ञानिक का आदर पूरब में बढ़ता जाता है, पूरब के संन्यासियों का आदर पश्चिम में बढ़ता चला जाता है।
यह कुछ बात ऐसी हो गई है जैसा एक गांव में एक बार हुआ था।
एक गांव में दो बहुत बड़े विद्वान थे। एक आस्तिक था, एक नास्तिक था। उन दोनों में भारी विवाद था। उनके विवाद से गांव परेशान आ गया था। विद्वानों से गांव अक्सर परेशानी में पड़ जाते हैं।
वह गांव बहुत परेशान हो गया था। वह ऊब गया था, वह घबड़ा गया था। क्योंकि
वे दोनों किसी को भी चैन नहीं लेने देते थे। वह आस्तिक आस्तिकता समझाए चला जाता था, नास्तिक नास्तिकता समझाए चला जाता था। लोगों का मन और भी उलझन में पड़ गया था। कुछ साफ नहीं रहा था कि क्या सच है? क्या झूठ? वे गांव के लोग जब बहुत घबड़ा गए, और उनकी शांति और उनकी नींद हराम हो गई, और वे दोनों विद्वान उनका पीछा करने लगे, तो उन्होंने आकर उन दोनों से प्रार्थना की कि हमारी प्रार्थना है: यह सारा गांव इकट्ठा हुआ जाता है, आप दोनों विवाद कर लें। और जो जीत जाए हम उसी के साथ हो जाएंगे। हम उपद्रव में नहीं पड़ना चाहते।
अंततः एक पूर्णिमा की रात्रि उन विद्वानों का विवाद हुआ। सारा गांव इकट्ठा हो गया। आस्तिक ने आस्तिकता के लिए बड़े शक्तिशाली प्रमाण दिए, बड़े तर्क दिए। नास्तिक ने भी उतने ही शक्तिशाली प्रमाण दिए, उतने ही तर्क दिए। तर्क के साथ यह मजा है कि वह किसी का भी प्रमाण बन सकता है और किसी का
भी साथी बन सकता है। तर्क वेश्या जैसा है। वह किसी के भी साथ हो सकता है। वह किसी का नहीं है।
दोनों ने बहुत तर्क दिए, बहुत प्रमाण दिए। सुबह होते-होते एक अदभुत घटना घट गई। उस गांव में आस्तिक नास्तिक से प्रभावित हो गया, नास्तिक आस्तिक से प्रभावित हो गया। गांव की मुसीबत वही बनी रही। दूसरे दिन आस्तिक नास्तिक हो गया, नास्तिक आस्तिक हो गया। और गांव की पंचायत वही रही, वह फिर विवाद चलने लगा। वे फिर दोनों समझाने निकल पड़े।
ऐसी हालत आज दुनिया में हुई जा रही है। पूरब पश्चिम हो जाएगा और पश्चिम पूरब हो जाएगा। और बेवकूफी वही की वही रहेगी। आदमी उतना ही परेशान रहेगा। यहां आइंस्टीन प्रभावी होते चले जाते हैं, वहां विवेकानंद प्रभावी होते चले जाते हैं। लेकिन पागलपन वही रहेगा, उससे कोई फर्क नहीं पड़ने वाला। क्योंकि विवेकानंद भी किसी अधूरी संस्कृति के पक्षपाती हैं और आइंस्टीन भी किसी अधूरी संस्कृति का पक्षपाती।
जिस अति से हम ऊब जाते हैं उससे हम दूसरी अति पर जाने को उत्सुक हो जाते हैं। गरीब आदमी गरीबी से ऊब जाता है अमीर होने की कोशिश करने लगता है। जो बहुत अमीर हो जाते हैं, वे अमीरी से ऊब जाते हैं, फकीर हो जाते हैं। महावीर और बुद्ध दोनों राजपुत्र थे, वे फकीर हो गए। फकीर अमीर होना चाहता है, अमीर गरीब होना चाहता है। अमीर अमीरी से ऊब जाता है, गरीब गरीबी से ऊब जाता है। आस्तिक आस्तिकता से ऊब जाते हैं, नास्तिक नास्तिकता से ऊब जाते हैं।
पूरब पूरब से ऊब गया, पश्चिम पश्चिम से ऊब गया। धार्मिक लोग धर्म से
ऊब गए हैं, वैज्ञानिक लोग विज्ञान से ऊब गए हैं। और वे अति बदल लेना चाहते हैं। और आदमी का मन घड़ी के पेंडुलम की तरह है। एक एक्स्ट्रीम से दूसरी एक्स्ट्रीम पर चला जाता है, फिर दूसरी एक्स्ट्रीम पर चला जाता है। बीच में कभी भी नहीं रुकता है।
इससे बहुत खुश होने की जरूरत नहीं है। अगर पूरब का एकाध योगी पश्चिम में चला जाता है और वहां के छोकरे उसके पीछे गिरोह बना कर घूमने लगते हैं, इससे बहुत खुश मत हो जाना। यह वही पागलपन का लक्षण है, जैसे आपके छोकरे विज्ञान के पीछे घूम रहे हैं। ऐसे उनके छोकरे योगियों के पीछे घूम रहे हैं। इसमें कोई खास खूबी की और आदर की और इज्जत की कोई भी बात नहीं है। आपके लड़के अगर सिनेमागृहों के पास भीड़ कर रहे हों और पश्चिम के लड़के अगर मंदिरों के आस-पास इकट्ठे होने लगें, तो बहुत हैरान मत हो जाना। ये एक सी बातें हैं, इनमें कोई भी भेद नहीं है। उनका मन उनकी अति से ऊब गया, आपका मन

आपकी अति से ऊब गया है। लेकिन अब तक अति से किसी का भी मन नहीं ऊबा है। तो एक अति से हम दूसरी अति को चुन लेते हैं।
मैं यह कहना चाहता हूं, एक ज्यादा सिंथेटिक कल्चर, एक ज्यादा समन्वित संस्कृति, एक ऐसी सभ्यता विकसित होनी जरूरी है जो अतिवादी न हो, जो एक्सट्रीमिस्ट न हो। जो संतुलन, समन्वय और मध्य पर खड़े होने की सामर्थ्य रखती हो। जो विज्ञान को उसकी जगह दे सके और धर्म को उसकी जगह दे सके। जो इस बात को स्वीकार कर सके कि विज्ञान का अपना मूल्य है, विज्ञान असार नहीं है। संसार का अपना मूल्य है और संसार माया नहीं है। और जो इस बात को भी स्वीकार कर सके कि संसार के सत्य होने के बावजूद भी संसार से ऊपर भी सत्य है। परमात्मा इस कारण व्यर्थ नहीं है कि संसार सत्य है। परमात्मा इस कारण और भी सत्य है। संसार भी जब सत्य है तो परमात्मा इस कारण और भी गहरे सत्य को उपलब्ध होता है।
परमात्मा और संसार के बीच का जो विरोध और खाई है, वह समाप्त होनी चाहिए। मनुष्य के जीवन में जो सबसे बड़ा दुर्भाग्य सिद्ध हुआ है, जो सबसे बड़ी दुर्घटना हुई है वह यह कि हमने सत्य और संसार के बीच एक बड़ी खाई खोद रखी है। जो आदमी ईश्वर की तरफ जाना चाहता है वह संसार को छोड़ कर भागता है। वह कहता है संसार तो असार है, संसार तो सपना है, संसार तो माया है--छोड़ कर भागता है।
हालांकि उसका छोड़ कर भागना ही यह बताता है कि संसार असार नहीं है, संसार सपना नहीं है। क्योंकि सपनों को छोड़ कर भागने की कोई भी जरूरत नहीं रहती। जो असार है, उससे भागने की कोई भी जरूरत नहीं है। जो है ही नहीं, उससे भागने की कोई जरूरत है?
एक आदमी कहे कि मैं भूत-प्रेत नहीं मानता हूं, वे होते ही नहीं, और भाग रहा है कि भूत-प्रेतों से बचने के लिए भाग रहा हूं। हम क्या कहेंगे? कि या तो यह आदमी पागल है या यह जो कह रहा है उस पर इसका विश्वास नहीं है। एक आदमी कहता है कि सब संसार माया है, फिर भी कहता है, मैं संसार त्याग दिया हूं। जो नहीं है उसका त्याग कैसे हो सकता है?
नहीं, लेकिन संसार है। चाहे उसे भोगो, चाहे उसे त्यागो। चाहे उसमें डूबो, चाहे उससे भागो--वह है। उसके होने को नहीं पोंछा जा सकता।
एक भूल यह संन्यासी करता है, जो कहता है कि संसार असार है, इसे मैं छोड़ता हूं। मैं तो परमात्मा का प्यारा हूं, मैं परमात्मा की तरफ जाता हूं। ठीक इससे उलटी भूल वह जो पदार्थवादी है, वह करता है। वह कहता है: संसार सार है, संसार सार्थक है।
और जब संसार सार है तो परमात्मा नहीं हो सकता? क्योंकि परमात्मा जो मानता है, वह कहता है, संसार असार है। संसार की असारता पर वह परमात्मा के प्रमाण को मानता है। तो जो आदमी संसार में सार देखता है, वह परमात्मा को अप्रमाण मान ले तो कोई आश्चर्य नहीं।
ये दोनों तर्क एक से हैं। जिन लोगों ने संसार को माया कहा, उन्हीं लोगों ने परमात्मा को झूठा सिद्ध करवाने की कोशिश भी तय कर दी। क्योंकि जिन लोगों को संसार सार्थक दिखा, सत्य दिखा, सब्स्टेंशियल दिखा, फिर उनको लगा कि ठीक है, फिर इनका परमात्मा झूठा होना चाहिए कि दो में से एक ही बात सच हो सकती है।
यह बात गलत है कि दोनों में से एक ही बात सच हो सकती है। दोनों बातें
एक साथ सच हो सकती हैं और दोनों बातें एक साथ झूठ भी हो सकती हैं। दो में से एक ही सच हो इसका कोई सवाल नहीं है।
जीवन में अनेक तरह के सत्य हैं। पदार्थ का अपना सत्य है; पैसे का अपना सत्य है। प्रेम का अपना सत्य है; परमात्मा का अपना सत्य है। सत्यों में भी मूल्यांकन है कि हम निरंतर ऊपर से ऊपर सत्य की खोज में बढ़ते चले जाएं। लेकिन एक सत्य कोई दूसरे का खंडन नहीं है। सपनों की अपनी सच्चाई है और जागने की अपनी सच्चाई है। नींद की अपनी सच्चाई है और होश की अपनी सच्चाई। इन सच्चाइयों में कोई ऐसा विरोध नहीं है कि एक है तो दूसरा नहीं हो सकता है।

और जिस दिन कोई व्यक्ति इन दोनों सच्चाइयों की गहरी से गहरी सीमा को
छू लेता है उस दिन तो वह हंसता है, उस दिन तो वह हैरान हो जाता है। उस दिन वह पाता है कि जिनको मैंने दो समझा था, वे एक ही सत्य को दो तरफ से देखने के उपाय थे। वे दो दृष्टियां थीं, वे दो सत्य नहीं थे। एक ही चीज को बहुत तरह से देखा जा सकता है।
बुद्ध एक रात्रि प्रवचन किए। रोज का उनका नियम था कि प्रवचन के बाद वे भिक्षुओं को कहते थे कि अब आप जाएं और रात्रि के अंतिम कार्य में संलग्न हों। वह रात्रि का अंतिम कार्य था--रात्रि का ध्यान। भिक्षु जब विदा होते, तो रात्रि का ध्यान करते और सो जाते। तो बुद्ध रोज फिर इतना ही कहते थे। इसको कहने की रोज जरूरत न थी कि अब आप ध्यान करें। वे इतना ही कहते थे कि अब आप जाएं, और रात्रि के ध्यान में संलग्न हों--यह नहीं कहते थे। इतना ही कहते थे, रात्रि का अंतिम कार्य करें।
उस रात उस सभा में एक चोर भी आया हुआ था, एक वेश्या भी आई हुई थी। जैसे
ही बुद्ध ने कहा कि अब आप जाएं और अपना रात्रि का कार्य शुरू करें। वैसे ही चोर को खयाल आया कि अरे, मैं कहां बैठा हुआ हूं, रात हो गई और अपने काम का समय आ चुका? वेश्या ने भी सोचा कि बहुत रात हो गई, अब मेरी दुकान के खुलने का वक्त आ गया, मैं जाऊं। और भिक्षु ध्यान पर चले गए।
एक ही वाक्य था। एक ही बात कही गई थी। लेकिन तीन अर्थ हो गए उस बात के। तीन देखने वाले थे। तीन देखने की दृष्टियां थीं। तीन तरफ से वह बात देखी गई और अपना-अपना अर्थ ले लिया गया।
जीवन को हम जिस दृष्टि से देखते हैं, वह वैसा दिखाई पड़ना शुरू हो जाता है। जो लोग पदार्थ की दृष्टि से देखते हैं, उन्हें जीवन पदार्थ दिखाई पड़ता है। जो लोग चैतन्य की दृष्टि से देखना शुरू करते हैं, उन्हें जीवन चैतन्य दिखाई पड़ने लगता है। यह हम पर निर्भर है कि हम किस भांति देखते हैं।
एक कवि एक फूल को देखता है, वह कहता है, बहुत सुंदर है। उसके चित्त में सौंदर्य की न मालूम कितनी प्रतिमाएं घूम जाती हैं। हो सकता है उसे अपनी प्रेयसी का चेहरा याद आ जाए। हो सकता है उसे आकाश के तारे उन फूलों में चलते दिखाई पड़ जाएं। हो सकता है किसी झील पर उसे किसी लहर की स्मृति उसे फूल की पंखुड़ियों में दिख जाए। हो सकता है उस सुगंध के साथ उसे दूर की सुगंधों का बोध आ जाए। हो सकता है उस फूल के साथ न मालूम किन सपनों का गीत उसके मन में खुल जाए। फूल वही रह जाए, वह सपनों की दुनिया में चला जाए।
एक वैज्ञानिक फूल को देखता है, उसे न कोई सौंदर्य दिखाई पड़ता है, न कोई चांद-तारे दिखाई पड़ते हैं। उसे तो कुछ कैमिकल्स दिखाई पड़ते हैं। उससे अगर कोई कहे कि फूल बहुत सुंदर है, तो वह पूछेगा, यह सौंदर्य कहां है? मैं तो अपनी प्रयोगशाला में जाकर, काट-पीट करके देखता हूं तो कोई सौंदर्य नहीं मिलता। हां, कुछ कैमिकल्स मिलते हैं, कुछ खनिज मिलते हैं, कुछ और मिलता है। लेकिन सौंदर्य तो, हमने अपनी प्रयोगशाला में बहुत जांच-बीन की, आज तक मिला नहीं है।
फूल में सौंदर्य प्रयोगशाला में मिल भी नहीं सकता, तो कवि झूठा हो जाता है। लेकिन कवि को सौंदर्य ही मिलता है उस फूल में। उसे कोई खनिज नहीं मिलते, कोई कैमिकल, कोई रसायन नहीं मिलती, तो क्या वैज्ञानिक झूठा हो जाता है? फूल बड़ी सत्ता है। उसे हजार ढंग से देखने के उपाय हैं।
एक-एक चीज इतनी अनंत है, छोटी से छोटी चीज इतनी अनंत है कि उसे अनंत दृष्टियों से देखने के मार्ग सदा खुले हुए हैं। एक दृष्टि दूसरी दृष्टि को गलत नहीं कर जाती। एक दृष्टि केवल इतनी ही कहती है कि मैंने किस भांति देखा। जब कवि कहता है, मुझे फूल में सौंदर्य दिखाई पड़ा, तो वह यह नहीं कहता है कि फूल में सौंदर्य है। वह यह कह रहा है कि मैंने फूल को कवि की तरह देखा। और जब वैज्ञानिक कहता है कि मुझे फूल में खनिज मिले, रसायन मिली, कैमिकल्स मिले, तब वह यह नहीं कह रहा है कि फूल में कैमिकल्स ही हैं। तब वह यह कह रहा है कि मैंने फूल को एक वैज्ञानिक की तरह देखा है। ये हमारे देखने के ढंग हुए।
विज्ञान देखने के ढंग का एक रूप है; धर्म जीवन को देखने का दूसरा रूप है। और दोनों रूप जीवन के देखने की समृद्धि को बढ़ाते हैं। उन दोनों में से

एक भी विदा नहीं हो जाना चाहिए। विज्ञान जिस दृष्टि से जीवन को देखता है, उससे शक्ति बढ़ती है। धर्म जिस दृष्टि से जीवन को देखता है, उससे शांति बढ़ती है।
शक्ति भी चाहिए और शांति भी चाहिए। अकेली शक्ति खतरनाक है। और अशांत आदमी के हाथों में तो बहुत खतरनाक है। अशांत आदमी तो कमजोर हो तो अच्छा, अशांत आदमी शक्तिशाली हो तो खतरनाक है। क्योंकि अशांति के हाथ में शक्ति मिल जाए तो उपद्रव बढ़ेंगे।
नादिरशाह हिंदुस्तान की तरफ आता है। एक राजधानी में रुका और एक ज्योतिषी उससे मिलने आया। उस ज्योतिषी से नादिर ने पूछा कि मैं बहुत सोता हूं, मुझे नींद बहुत आती है। मैं कोई बारह-तेरह घंटे, चौदह घंटे सोता हूं। लोग कहते हैं इतना सोना बहुत बुरा है, आपका क्या खयाल है? आप बहुत बुद्धिमान आदमी हैं। आपका क्या खयाल है? उस ज्योतिषी ने कहाः बुरे आदमी का ज्यादा सोना अच्छा होता है। अच्छे आदमी का ज्यादा जागना अच्छा होता है। आप और सोएं और चौबीस ही घंटे सोए रहें तो बहुत अच्छा है। क्योंकि आप जैसा आदमी जितनी देर जागता है उतनी देर दुनिया में उपद्रव बढ़ते हैं। आपके जागने से कोई हित नहीं होता किसी का भी; न मुल्क का हित होता है, न किसी और का हित होता है।
उस ज्योतिषी ने कहा कि बुरा आदमी जितना सोया रहे उतना अच्छा। यह अच्छे आदमी के लिए कहा गया है कि वह जागा रहे। यह बुरे आदमी के लिए नहीं कहा गया है। शक्ति उन हाथों में हो जो शांत हैं, तब तो ठीक। अन्यथा कमजोर होना बुरा नहीं है। अशांत आदमी के हाथ में शक्ति आत्मघाती और परघाती सिद्ध होती है।
विज्ञान ने शक्ति दे दी और शांति नहीं दी, वह घातक सिद्ध हुई जा रही है। दो महायुद्ध हमने देख लिए, तीसरे की तैयारियां हैं। और तीसरा खतरनाक होगा, बहुत खतरनाक होगा।
आइंस्टीन से मरने के पहले किसी ने पूछा था कि तीसरे महायुद्ध के संबंध में आप कुछ बताएंगे? आइंस्टीन ने कहाः तीसरे के संबंध में बताना बहुत कठिन है। हां, चौथे के संबंध में कुछ बता सकता हूं। सुनने वाला बहुत हैरान हुआ। उसने कहाः आप तीसरे के बाबत बता नहीं सकते, चौथे के बाबत क्या बता सकते हैं? आइंस्टीन ने कहाः चौथे के बाबत एक बात निश्चित ही कही जा सकती है कि चौथा महायुद्ध कभी नहीं होगा। क्योंकि तीसरे में सभी आदमी समाप्त हो जाने को हैं। तीसरे के बाबत कुछ नहीं कहा जा सकता कि क्या होगा। तीसरे की जो तैयारी है, वह बहुत हैरान करने वाली है। मनुष्यता को ही नहीं, समस्त जीवन को नष्ट कर देने के हमने उपाय कर लिए हैं। जीवन को ही नहीं, हो सकता है पृथ्वी भी बिखर जाए और टूट जाए।
तो एक छोटी सी कल्पना आपको दूं तो खयाल हो सके कि अशांत हाथ में कितनी ताकत इकट्ठी हो गई है। इस समय पृथ्वी पर कोई पचास हजार उदजन बम तैयार हैं। पचास हजार की संख्या से हमें कुछ पता नहीं चलता कि पचास हजार उदजन बम का क्या अर्थ होता है?
एक उदजन बम चालीस हजार वर्गमील में समस्त जीवन को नष्ट करता है, समस्त जीवन को। मनुष्य के नहीं, पशु के, पौधे के, छोटे-छोटे बैक्टीरिया और अमीबा, छोटे-छोटे कीटाणुओं को--सबको नष्ट करता है। चालीस हजार वर्गमील में एक उदजन बम। पचास हजार उदजन बम इतने हैं जितने से हमारे बराबर पृथ्वियां-- सात, नष्ट की जा सकती हैं--एक नहीं। या ऐसा समझ लें कि एक-एक आदमी को अगर हमें मारना हो, तो हम सात-सात बार मार सकते है। वैसे एक आदमी एक ही दफा में मर जाता है, इतना कमजोर है। अब तक ऐसा सुना ही नहीं गया कि एक आदमी को दुबारा मारना पड़ा हो। मर गया तो एक ही दफा में मर गया, नहीं मरा तो बात दूसरी है। लेकिन एक दफा में ही मर जाता है, दुबारा मारने की जरूरत नहीं पड़ती।
लेकिन हम बहुत होशियार लोग हैं, सब इंतजाम कर लेना ठीक है। कोई एक दफा में बच जाए तो दुबारा मार सकते हैं, तिबारा मार सकते हैं। सात बार का इंतजाम काफी है। सात बार में कोई बच सकेगा, इसकी कोई कल्पना नहीं की जा

सकती। तो आदमी ने पूरा, सब कैल्कुलेशन, सब हिसाब लगा लिया है, पूरा इंतजाम कर लिया है। अब तैयारी कर रहे हैं कि हम कब सबको खत्म कर लें।
एक उदजन बम क्या करता है? मर जाए आदमी, यह भी बहुत कठिन बात नहीं है। न बहुत हैरान होने की बात है। लेकिन कितनी पीड़ा से गुजरेगा, इसकी भी हम कल्पना नहीं कर सकते।
सौ डिग्री पानी हम गर्म करें, सौ डिग्री पर तो पानी भाप बन कर उड़ता है।
उस पानी में हम किसी को डाल दें, उबलते हुए पानी में, तो उसको क्या होगा? लेकिन सौ डिग्री गर्मी कोई बहुत गर्मी नहीं है। पंद्रह सौ डिग्री गर्मी पर लोहा भी पिघल जाता है। उस लोहे में किसी को डाल दें, पिघले हुए लोहे में, लोहे में... तो उसका क्या होगा? क्या उसके प्राणों को अनुभव होंगे? कौन से आनंद उसको पता चलेंगे? उसका थोड़ा सोचें। किस परमात्मा की उसे उस वक्त याद आएगी? लेकिन पंद्रह सौ डिग्री गर्मी कोई बड़ी गर्मी नहीं है। पच्चीस सौ डिग्री गर्मी पर लोहा भी भाप बन कर उड़ने लगता है। उसमें किसी को डाल दें, तो उसको क्या होगा? लेकिन पच्चीस सौ डिग्री गर्मी भी कोई बड़ी गर्मी नहीं है।
एक उदजन बम से जो गर्मी पैदा होती है, वह होती है दस करोड़ डिग्री। इस
दस करोड़ डिग्री गर्मी की भट्टी में हम आदमी को डालने का इंतजाम कर लिए हैं। यह गर्मी उतनी ही है जितनी सूरज पर। तो अब तक सूर्य देवता वगैरह को आप नमस्कार करते थे, वह बहुत दूर है। हमने इंतजाम किया है कि वह आपके घर ही आ जाए, आपसे मिलन हो जाए, जिससे मुलाकात ही हो जाए सूर्य भगवान से आपकी--इसका वैज्ञानिकों ने इंतजाम कर दिया है।
यह जो इतना बड़ा नरक हम पृथ्वी को बनाने का आयोजन कर रहे हैं, यह किसलिए
और क्यों? यह अशांत मन के हाथ में शक्ति पहुंच गई है। शांत मन के हाथ में यह शक्ति पहुंचती, तो आज पृथ्वी स्वर्ग बन सकती है। जिसके लिए ऋषि-मुनियों ने सपने देखे थे। कहीं आकाश में, स्वर्ग में जाने की अब कोई जरूरत नहीं। मनुष्य के हाथ में इतनी बड़ी ऊर्जा, इतनी बड़ी शक्ति पर हाथ पड़ गया है उसका कि वह इस सारी पृथ्वी को पहली दफा स्वर्ग बना सकता है। आज पृथ्वी पर किसी के दरिद्र होने की कोई भी जरूरत नहीं है; सिवाय राजनीतिज्ञों की शैतानी के और कोई कारण नहीं है। आज पृथ्वी पर किसी के दीन-हीन, बीमार, कम उम्र होने की, असुंदर होने की, दुखी होने की, कष्ट में होने की कोई जरूरत नहीं है; सिवाय अशांत आदमियों के हाथ में शक्ति है, इसके अतिरिक्त।
आज पृथ्वी एक अनूठी जगह बन सकती है, इतनी शक्ति, इतनी ऊर्जा हमारे हाथ में है। आज पहली बार चांद-तारे हमारे हाथ में हैं। आज पहली बार पदार्थ के भीतर छिपी हुई सबसे बड़ी शक्ति हमारे हाथ में है। आज हम क्या कर सकते हैं इसका कोई अनुमान नहीं लगाया जा सकता। लेकिन हम कुछ भी नहीं कर पा रहे हैं, क्योंकि अशांत आदमी के हाथ में ताकत है। वह कहता है, हम तो मरने की तैयारी करेंगे और मारने की तैयारी करेंगे।
अशांति हमेशा मृत्यु की आकांक्षा को जन्म देती है। अशांति हमेशा दूसरे को मारने की और खुद को मारने की चेष्टा में संलग्न करती है। अशांति सुसाइडल है, आत्मघाती है। और जब भी अशांत आदमी के हाथ में ताकत मिल जाएगी, तो पहले दूसरों को मारेगा। और अगर कोई मारने को नहीं मिला या कोई मरने को राजी नहीं हुआ, तो खुद को मारेगा। कोई न कोई रास्ता मारने का करेगा। अशांति यात्रा है मृत्यु की तरफ।
विज्ञान ने शक्ति तो दे दी, लेकिन शांति विज्ञान के देने की सामर्थ्य नहीं है। उसका कोई सवाल ही नहीं है। उससे अपेक्षा भी नहीं करनी चाहिए। उससे मांग भी नहीं करनी चाहिए, वह कोई प्रश्न ही नहीं है। वह तो ऐसा है जैसे कोई गणित से कहने लगे कि कविता भी आप ही हमें दो। तो गणित कविता कैसे देगा? गणित गणित देगा, गणित की अपनी जरूरत है। लेकिन गणित कविता नहीं दे सकता। या कोई कविता से कहने लगे कि हमें फैक्ट्री बना दो, तो कविता फैक्ट्री कैसे बनाएगी? कविता गीत दे सकती है, प्रेम दे सकती है, आनंद की पुलक दे सकती है, नृत्य दे सकती है, लेकिन फैक्ट्री कैसे देगी? ये तो पागलपन की बातें हैं। कोई कान से कहने लगे कि देखो, और कोई आंख से कहने लगे कि सुनो--वैसी ही बातें हैं। विज्ञान से अपेक्षा भी नहीं करने का सवाल है।

शांति तो देगा धर्म। शांति का विज्ञान धर्म है। और शक्ति का विज्ञान विज्ञान है। अंतस्चेतना कैसे शांत होती चली जाए? कितनी निर्विकार, कितनी आनंद को उपलब्ध होती चली जाए, इसकी जो चेष्टा और साधना है, वह धर्म है। लेकिन धर्म केवल शांति दे सकता है, शक्ति नहीं दे सकता।
अकेली शांति निर्बल कर देती है, कमजोर कर देती है। अकेली शांति एक तरह
की इंपोटेंस पैदा करती है, एक तरह की नपुंसकता पैदा करती है। भारत जो इतना इंपोटेंट हो गया, उसका कोई और कारण नहीं है। भारत की इतनी दीनता, दरिद्रता और कमजोरी में भारत के उन धार्मिक लोगों का हाथ है जिन्होंने विज्ञान का निषेध करके धर्म को विकसित किया। कमजोर हो ही जाएगा। और शांत आदमी कमजोर हो जाए, यह उतना ही खतरनाक है जितना अशांत आदमी शक्तिशाली हो जाए--एक सी बातें हैं ये दोनों।
शांत आदमी कमजोर हो जाए, यह सारी दुनिया के लिए खतरनाक है। क्योंकि तब शांत आदमी दुनिया में परिवर्तन की सारी सामर्थ्य खो देता है। तब अच्छा आदमी, भला आदमी दुनिया को बदलने की सारी हिम्मत खो देता है। तब उसके पास एक ही काम रह जाता है कि अपने मंदिरों में बैठ जाए और भगवान की प्रार्थनाएं करता रहे। और वह भी तभी तक, जब तक कोई ताकतवर आदमी आकर उसके भगवान की मूर्ति को तोड़-फोड़ कर न फेंक दे, तभी तक प्रार्थनाएं करता है।
और जब कोई धीरे-धीरे कमजोर होता चला जाता है तो यह भी खयाल में ले लें
कि कमजोर आदमी बहुत दिन तक शांत भी नहीं रह सकता। दीन-हीन आदमी बहुत दिन तक शांत भी नहीं रह सकता। कष्ट में पड़ा हुआ आदमी बहुत दिन तक शांत भी नहीं रह सकता। तब फिर अशांति का जन्म शुरू हो जाएगा। और एक चक्कर शुरू होगा। अशांति का जन्म होगा तो विज्ञान की खोज शुरू हो जाएगी। और विज्ञान शक्ति लाएगा, और अशांत आदमी के हाथों में शक्ति आ जाएगी। यह चक्कर आज तक पूरी मनुष्यता को पीड़ित किए रहा है। एक विसियस सर्किल है। एक दुष्चक्र है। जिसमें आदमी पड़ गया। जैसे ही आदमी के हाथ में ताकत आती है, वह शांत होने की कोशिश शुरू कर देता है।
हिंदुस्तान में जब शांति की और धर्म की लहर चली, उस वक्त हिंदुस्तान बहुत समृद्ध था। बुद्ध और महावीर का वक्त हिंदुस्तान में स्वर्ण-वक्त था। बहुत समृद्ध था। एकदम सोने की चिड़िया थी। उस वक्त शांति की लहर और धर्म की बातें थीं।
शक्तिशाली आदमी शांत होने की कोशिश में लग जाए तो धीरे-धीरे निर्बल
हो जाता है। और निर्बल आदमी अशांत होता है तो अशांत होते से ही शक्ति की खोज में लग जाता है।
पूरब समृद्ध था, शांति की खोज की, दरिद्र हो गया। पश्चिम दरिद्र था, शक्ति की खोज की, समृद्ध हो गया। लेकिन अब तक शक्ति और शांति एक साथ निर्मित नहीं की जा सकी है। दोनों प्रयोग असफल हो गए। विज्ञान भी असफल हुआ, उससे हिरोशिमा और नागासाकी पैदा हुए। और अब तीसरा महायुद्ध पैदा होगा। धर्म भी अकेला असफल हो गया, उससे यह भारत के दीन-हीन, दरिद्र भिखारी पैदा हुए, गुलाम पैदा हुए, बड़े से बड़ा देश छोटे-छोटे देशों के हाथों में गुलाम बन गया। उनके चरण चूमता रहा, वे उसकी छाती पर जूते रख कर चलते रहे, वह पड़ा रहा। वह राम-राम जपता रहा, वह ओम-ओम करता रहा।
ये दोनों प्रयोग असफल हो गए, जो अब तक आदमी ने किए हैं। एक तीसरे प्रयोग में सारी संभावना और सारा भविष्य है। और वह तीसरा प्रयोग है कि धर्म और विज्ञान के बीच सारा विरोध समाप्त हो। विरोध का कोई कारण भी नहीं है, कोई जगह भी नहीं है, कोई वजह भी नहीं है। धर्म और विज्ञान एक संस्कृति के अंग बनें। यह कब होगा और कैसे होगा?
जब तक हम जगत और परमात्मा के बीच विरोध मानते हैं, यह नहीं हो सकता है। पदार्थ और परमात्मा के बीच एक गहरा संबंध, एक ही दिशा में, एक ही चीज के, एक ही सिक्के के--वे दो पहलू हैं। इस बात की स्वीकृति, धर्म संसार को असार कहना बंद कर दे, विज्ञान परमात्मा को व्यर्थ कहना बंद कर दे। और दोनों की सार्थकता संयुक्त हो, और एक साथ हो। शांति और शक्ति की एक साथ खोज हो। तो एक नये मनुष्य का और एक नई संस्कृति का जन्म हो सकता है।

मेरे देखे, दोनों में कोई भी विरोध नहीं है; न विरोध का कोई कारण है। विरोध हमारी नासमझी पर खड़ा हुआ था। और या तो हम अपनी नासमझी बचा सकते हैं अब, या अपने को बचा सकते हैं। दोनों अब एक साथ नहीं बच सकतीं। पूरब को, पूरब के लोगों को जगतगुरु होने का खयाल छोड़ देना चाहिए। वे पागलपन की बातें हैं। अधूरी संस्कृतियां जगतगुरु नहीं हो सकतीं। पश्चिम के लोगों को भी जगतगुरु होने का खयाल छोड़ देना चाहिए। अधूरी संस्कृतियां जगतगुरु नहीं हो सकतीं।
अब तो एक संस्कृति पैदा होगी, जो न पूरब की होगी; न पश्चिम की होगी। अब
तो एक संस्कृति पैदा होगी जो न विज्ञान की होगी; न धर्म की होगी। अब तो एक संस्कृति पैदा होगी जो पूरे मनुष्य की होगी, समग्र मानव की होगी; इंटिग्रेटिड, पूरे मनुष्य की होगी। मनुष्य की संस्कृति पैदा होने का पहली बार अवसर आया है। और यह अवसर तभी सफल हो सकता है जब विज्ञान और धर्म के बीच कोई समन्वय पैदा हो सके।
विज्ञान एक अति है, धर्म दूसरी अति। धर्म और विज्ञान संयुक्त, संश्लिष्ट, मध्य-बिंदु होंगे, वह गोल्डन मीन होगी। वह बीच का मज्झिम निकाय होगा, वह बीच का रास्ता होगा, वह समन्वय होगा।
एक छोटी सी घटना और मैं अपनी बात पूरी करूंगा।
बुद्ध के समय में एक राजकुमार बुद्ध के पास आकर दीक्षित हुआ, संन्यासी हुआ। राजकुमार अक्सर संन्यासी हो जाते हैं। एक अति से दूसरी अति पर चले जाते हैं। वह राजकुमार बहुत विलासी प्रवृत्ति का युवक था। कहते हैं, वह रास्तों पर भी चलता तो पहले कालीन बिछा दिए जाते। वह कभी नंगी भूमि पर नहीं चलता था। वह जब महलों में चलता तो फूलों पर चलता। वह जब सीढ़िया चढ़ता तो नग्न स्त्रियां सीढ़ियों के किनारे खड़ी रहतीं, जिनके कंधों के सहारे लेकर वह ऊपर जाता। वह दीक्षित हो गया और संन्यासी हो गया। तो बुद्ध के भिक्षु बहुत हैरान हुए। यह इतने जोर का परिवर्तन कि जो आदमी शिखर पर था भोग के, वह एकदम योग के दूसरे शिखर पर आ जाएगा? उन्होंने बुद्ध को पूछा, तो बुद्ध ने कहाः आदमी का मन अतियों में चलता है। और इसलिए अक्सर यह होता है कि जो लोग भोग के शिखर पर होते हैं, वे योगी होने की कल्पना करते रहते हैं। और जो लोग योगी हैं, वे भोगी होने के सपने देखते रहते हैं। यह अक्सर होता है।
अगर संन्यासियों के सपने निकाले जा सकें उनके दिमाग से, तो दुनिया बहुत हैरान हो जाएगी। अगर भोगियों के सपने निकाले जा सकें उनके दिमाग से, तो भी दुनिया बहुत हैरान हो जाएगी। कि जिस आदमी को हम इतना भोगी समझते थे, इसके मन में भी संन्यासी होने की कल्पनाएं दौड़ती रहती हैं। और जिस आदमी को हम इतना त्यागी समझते थे, इसके मन में भी भोग के ऐसे सपने उठते हैं। सपने सब्स्टीट्यूट हैं। जो हम बाहर करते हैं एक अति, दूसरी अति जो हम नहीं करते, उसके सपने चलते रहते हैं।
तो बुद्ध ने कहा, यह स्वाभाविक है। मैं तो सोचता ही था कि यह आदमी आज नहीं कल संन्यासी होगा। अब तुम देखना यह दूसरी अति पर जाएगा। और छह महीने के भीतर भिक्षुओं ने देखा कि वह दूसरी अति पर गया। दूसरे भिक्षु वस्त्र पहनते, उसने वस्त्र भी छोड़ दिए। दूसरे भिक्षु रास्ते पर चलते, पगडंडी पर चलते, राजपथ पर चलते जहां कांटे न होते। वह जान कर ऐसे रास्तों पर चलता जहां कांटे होते, जहां रास्ते न होते। उसके पैर लहूलुहान हो गए। उसके पैरों में फोले और घाव पड़ गए। उसका शरीर धूप में सूखने लगा। भिक्षु वृक्षों की छाया में ठहरते, वह भरी धूप में सूरज के नीचे बैठता। भिक्षु ठंड में गर्मी का सहारा खोजते, वह ठंड में, खुले में पड़ा रहता। छह महीने में उसका सुंदर शरीर सूख कर कांटा हो गया। छह महीने बाद उसे पहचानना मुश्किल था कि यह वही राजकुमार है। छह महीने बाद तो वह बिल्कुल ही दूसरा आदमी हो गया था। अत्यंत कुरूप हो गया था, बीमार, रुग्ण हो गया था।
बुद्ध उसके पास गए छह महीने बाद और उससे कहाः श्रोण, उसका नाम श्रोण था। मैं तुझसे एक बात पूछने आया हूं। मैंने सुना है कि जब तू राजकुमार था, तो तू वीणा बजाने में बहुत कुशल था। तो मैं तुझसे यह पूछने आया हूं कि अगर वीणा के तार बहुत ढीले हों, तो संगीत पैदा होता है या नहीं होता है? श्रोण

ने कहाः वीणा के तार ढीले हों, तो संगीत कैसे पैदा होगा? तार ढीले हों, तो उनमें टंकार ही नहीं हो सकती, उनको चोट ही नहीं की जा सकती, उनमें प्रतिध्वनि नहीं पैदा की जा सकती। तार ढीले हों, तो ढीले तारों में कैसे संगीत पैदा हो सकता है?

तो बुद्ध ने कहाः अगर तार बहुत कसे हुए हों तो, तो संगीत पैदा होगा? तो श्रोण ने कहाः बहुत कसे तार टूट जाते हैं, उनमें भी संगीत पैदा नहीं होता। तो बुद्ध ने कहाः संगीत कब पैदा होता है? तो उस श्रोण ने कहाः संगीत तो तब पैदा होता है जब तार न तो कसे होते हैं, न ढीले होते हैं, एक ऐसी अवस्था भी है तारों की जब कहा जा सकता है कि न तार ढीले हैं, न तार कसे हैं। वह मध्य-बिंदु है। वहां तार उस जगह होते हैं जहां संगीत पैदा होता है।
तो बुद्ध ने कहाः वीणा का जो नियम है, मैं तुझसे कहने आया, जीवन का नियम भी वही है। जीवन में भी संगीत वहां पैदा होता है जहां न तो तार बहुत ढीले होते हैं, न तार बहुत कसे होते हैं।
एक तरफ विज्ञान के ढीले तार हैं, जिन्होंने मनुष्य की आत्मा को बिल्कुल ढीला छोड़ दिया। एक तरफ धर्म के अत्यंत कसे हुए तार हैं, जिन्होंने मनुष्य की आत्मा को इतना कस दिया। और इन दोनों के बीच मर गया मनुष्य। इन दोनों के बीच टूट गई मनुष्य की वीणा। इन दोनों के बीच खो गया मनुष्य के जीवन का संगीत है।
मनुष्य के जीवन के तारों को वहां लाना है, जहां न तो वह पदार्थ की तरफ बहुत खिंचे होते हैं, न आत्मा की तरफ। जहां वे न तो भोग की तरफ दीवाने होते हैं, और न योग की तरफ। जहां वे उस मध्य-बिंदु पर होते हैं, जहां कहा जा सकता है कि यह मनुष्य न तो भोगी है, न योगी है। जहां कहा जा सकता है, यह मनुष्य न तो पदार्थवादी है, न परमात्मवादी है। जहां मनुष्य बिल्कुल मध्य के बिंदु पर होता है, वहां जीवन का परिपूर्ण संगीत उपलब्ध होता है। और ऐसे परिपूर्ण संगीत के अनुभव में ही वह जानता है कि पदार्थ भी परमात्मा है, परमात्मा भी पदार्थ है।

विज्ञान, धर्म और कला
आठवां प्रवचन

विधायक विज्ञान

मैं सोचता था क्या आपको कहूं? मनुष्य का जैसा जीवन है, मनुष्य की आज जैसी स्थिति है, मनुष्य का जैसा आज रूप हो गया है, आज जैसी विकृति हो गई है, आज जैसा मनुष्य खंड-खंड होकर टूट गया है, उसको स्मरण रख कर, उस संबंध में ही कुछ कहूं, ऐसा मुझे खयाल आया। मैं आपको देखता हूं और पूरे देश में अनेक लोगों को देखता हूं। लाखों आंखों में झांकने का मुझे मौका मिला। इसे दुर्भाग्य कहूं और दुख कहूं कि कोई ऐसी आंख दिखाई नहीं पड़ती जो शांत हो। कोई ऐसी आंख नहीं दिखाई पड़ती जिसमें जीवन की गहराई और सत्य प्रकट होता हो। कोई ऐसा व्यक्ति नहीं दिखाई पड़ता जिसका जीवन संगीत से और आनंद से भरा हुआ हो।
इससे बड़ा और कोई दुर्भाग्य नहीं हो सकता है। इससे बड़ी कोई दुर्घटना नहीं हो सकती है कि मनुष्य के जीवन के भीतर कोई संगीत न रह जाए, कोई शांति न रह जाए, कोई आनंद न रह जाए। हम जीएं और केवल मृत्यु की प्रतीक्षा करें। हम केवल मरने को जीएं, हम केवल समाप्त होने को बने रहें। और हमारी सारी चेष्टाओं का और सारे प्रयासों का अंत केवल मृत्युमय हो जाए। और हम जीवन से परिचित न हो पाएं। इससे बड़ी और कोई दुर्घटना नहीं हो सकती।
और इस दुर्घटना के पीछे कोई और, कोई दूसरे व्यक्ति का हाथ नहीं है। इस दुर्घटना के पीछे हमारा अपना हाथ है। हम उन लोगों की तरह हैं जो जिन डगालों पर बैठते हैं, उन्हीं पर कुल्हाड़ी चलाते हैं। और हम उन लोगों की तरह हैं जो अपने ही हाथ से अपने जीवन के सारे भवन को भूमिसात कर लेते हैं। यह, यह स्थिति इसलिए पैदा होती है कि हममें से शायद ही कभी किसी को बोध पैदा हो कि जीवन को भी निर्मित करना होता है--संकल्प से और साधना से। जीवन बना-बनाया रेडीमेड उपलब्ध नहीं होता।
हम और सारी चीजें सीखते हैं, जीवन को जीना नहीं सीखते। और सारी बातों
की शिक्षा है, जीवन की कोई शिक्षा नहीं है। हम सारे लोग बहुत कुछ सीखते हैं, लेकिन जो सीखने योग्य है उससे ही वंचित रह जाते हैं। वही हमें स्मरण में नहीं आ पाता। हम इतने खंड में, इतने सेग्मेंटरी, इतने टुकड़ों में जीते हैं कि हमें पता भी नहीं पड़ता कि अखंड जीवन क्या था? और उसे जीने का रास्ता क्या था?
कोई सांझ मुझे पूछता था, रोज ही कोई पूछता है। कोई संगीत को साधता है, कोई धन को साधता है, कोई यश को साधता है, कोई संपत्ति की तलाश करता है, कोई और कलाएं सीखता है। वैसे लोग मुझे खोजे नहीं मिलते जो जीवन सीखते हों और जो जीवन को साधते हों। और जो व्यक्ति जीवन को नहीं साधेगा, वह जीवन को कैसे उपलब्ध होगा? हम और सब कुछ साधते हैं, हम यह भूल जाते हैं कि केंद्रीय सत्य जो साधने का है, वह हमें स्मरण नहीं रह जाता।
नानक एक गांव में मेहमान थे। किसी व्यक्ति ने नानक को कहाः मेरे पास बहुत संपत्ति है, और यह संपत्ति मैं चाहता हूं कि दान कर दूं। और यह संपत्ति मैं चाहता हूं धर्म के किसी काम आ जाए। और मैं चाहता हूं आप इसका कोई उपयोग कर लें, मुझे आज्ञा दे दें। नानक ने कहाः सच, तुम्हें आज्ञा दूं, अब तक जितने संपत्तिशाली मुझे मिले हैं, उन सबको मैंने एक ही आज्ञा दी है, वही तुम्हें दूं। लेकिन स्मरण रखो, अब तक कोई उस आज्ञा को पूरा नहीं किया। तुम पूरा करोगे? उस व्यक्ति ने कहाः मैं अपना सब कुछ लगा दूंगा, ऐसी कौन सी आज्ञा होगी जिस पर मैं सब कुछ लगाऊं और पूरी न हो सके? और ऐसा क्या है जो न पाया जा सके? मेरे पास बहुत संपत्ति है, मैं सब लगाने को राजी हूं। नानक ने कहाः देखो, प्रयोग करो, संभव है बात बन जाए। और एक कपड़ा सीने की सुई उस आदमी को दी और कहा, इसे सम्हाल कर रखो, जब हम दोनों मर जाएं तो इसे वापस लौटा देना।
उस व्यक्ति ने नानक की आंखों में गौर से देखा। मुझे उन्होंने कहा होता मैं भी देखता, आपको कहा होता, आप भी देखते। उसने शायद सोचा होगा, नानक या तो पागल हैं या मजाक करते हैं। मरने के बाद सुई लौटा देना कैसे संभव

होगा? सारी संपत्ति भी लगाने पर यह कैसे संभव होगा। लेकिन वहां भीड़ थी और बहुत लोग थे, और उस आदमी ने नानक को कुछ कहना ठीक न समझा। वह घर गया, उसने बहुत सोचा। उसने अपने मित्रों को पूछा, जिन्हें वह विचारशील समझता था, उनके पास गया और उनसे कहाः कोई रास्ता हो सकता है क्या? मैं अपनी सारी संपत्ति लगाने को तैयार हूं। क्या इस छोटी सी सुई को मैं मृत्यु के पार ले जाने में समर्थ हो जाऊंगा? लोगों ने कहाः पागल हो, आज तक मृत्यु के पार कुछ भी नहीं गया। वह खाई अलंघ्य है। उस खाई के पार ले जाना कुछ भी संभव नहीं है। और तुम्हारी कितनी ही संपत्ति हो, और तुम्हारी कितनी ही शक्ति हो, और तुम्हारी कितनी ही समृद्धि हो, वह कोई भी समर्थ न होगी, यह सुई उस पार चली जाए। यह सुई वापस कर दो, यह ऋण मृत्यु के बाद नहीं चुकाया जा सकेगा।
वह आदमी सुबह, जब कि अभी अंधेरा था, नानक के पास गया और उसने कहाः यह सुई अपनी वापस ले लें, कहीं ऐसा न हो कि हम मर जाएं और यह उधारी हम पर रह जाए। यह ऋण ऊपर रह जाए, मरने के बाद हम इसे न चुका सकेंगे। नानक ने कहाः तुम्हारी संपत्ति का क्या हुआ? और तुम्हारी शक्ति का क्या हुआ? और तुम्हारे उस दर्प का और अहंकार का क्या हुआ? इतना छोटा काम कि एक सुई, जिससे छोटी और कोई चीज नहीं है, वह भी मृत्यु के पार ले जा नहीं सकोगे? तो उस व्यक्ति ने कहाः माफ करें, क्षमा करें। इस सुई ने मुझे बहुत दरिद्र बना दिया है। इस सुई ने मुझे बहुत दरिद्र बना दिया है। और मुझे पहली दफा पता चलाः हमारी कोई शक्ति नहीं, हमारी कोई संपत्ति नहीं, हमारा कोई सामर्थ्य नहीं। एक सुई को हम मृत्यु के पार न ले जा सकेंगे।
नानक ने कहाः और कुछ है तुम्हारे पास जिसे तुम पार ले जा सकोगे? उसने कहाः इस सुई ने सब दिखा दिया, कुछ भी मेरे पास नहीं है। तो नानक ने उस व्यक्ति को कहा था, तुम जो कमाते रहे, वह संपत्ति नहीं हो सकती। जो मृत्यु में साथ न आए, वह संपत्ति कैसे होगी? जो विपत्ति में साथ न आए, वह संपत्ति कैसे होगी? जो विपत्ति में साथ न आए, वह संपत्ति कैसे होगी? और विपत्ति क्या है?
जगत में सिवाय मृत्यु के और कोई विपत्ति नहीं है। बाकी सब सूचनाएं हैं। बाकी विपत्तियां नहीं हैं। बाकी सब टल जाती हैं, जो नहीं टल पाती वह अकेली मृत्यु है। बाकी सबसे हम जूझ लेते हैं, जिससे नहीं जूझ पाते वह मृत्यु है। इसलिए बाकी को विपत्ति न कहें, विपत्ति केवल मृत्यु है और जो मृत्यु में काम आ जाए, संपत्ति है। और हम जो कमाते हैं, वह मृत्यु में काम नहीं आएगा।
इसलिए नासमझ हैं जो उसे संपत्ति समझते होंगे। पर कुछ ऐसा भी कमाना संभव है जो मृत्यु में काम आ जाता है। और ऐसी भी संपदा है जो मृत्यु के पीछे पार हो जाती है। और ऐसी भी शक्ति है जिसे मृत्यु की लपटें नहीं जला पाती हैं। धर्म का संबंध उसी शक्ति से, उसी संपत्ति से है। और वह संपत्ति उस व्यक्ति को उपलब्ध होती है जो जीवन को साधता है। जो धन को साधता है, जो यश को साधता है, उसे उपलब्ध नहीं होती।
मृत्यु के पार होने की सामर्थ्य उसे उपलब्ध होती है जो जीवन को साधता है। क्योंकि जीवन की सिद्धि पर अमृत उपलब्ध होता है। जो जीवन को साधेगा, उसे अमृत उपलब्ध होगा। क्योंकि जीवन की अंतिम परिणति अमृत है। और जो जीवन को नहीं साधेगा, उसे मृत्यु ही केवल उपलब्ध हो सकती है। क्योंकि जीवन को न साधने का और परिणाम क्या होगा?
जीवन को न साधने का अर्थ अगर ठीक से समझें, तो मृत्यु को साधना है। जो धर्म को नहीं साध रहा है, वह केवल मृत्यु को साध रहा है। यह स्मरणपूर्वक दृष्टि में बैठ जाए, यह बात बहुत स्पष्ट दिख जानी चाहिए कि जो धर्म को नहीं साध रहा है, वह मृत्यु को साध रहा है। वह साधे या न साधे मृत्यु, मृत्यु के सिवाय उसके हाथ में अंत में कुछ भी आने को नहीं है।
जीवन के सामने एक ही प्रश्न है। और वह मृत्यु है। और कोई प्रश्न नहीं है। जीवन के सामने एक ही ज्वलंत प्रश्न है, वह मृत्यु है। वह यह है। जिन प्रश्नों को हम प्रश्न मान कर चलते हैं और जिनको हम जीवन भर सुलझाने की चेष्टा करते हैं, वे वास्तविक प्रश्न नहीं हैं। वे ऐसी समस्याएं नहीं हैं जिनका समाधान न हो। जिनके हम सब समाधान खोज लेते हैं।

लेकिन एक प्रश्न ऐसा है जिसका कोई समाधान नहीं मिलता। और उस समाधान
के लिए जो साहस करता है, वही केवल ठीक अर्थों में, ठीक अर्थों में मनुष्य है। जो उस चरम समस्या को सुलझाने के लिए, उस चरम समस्या के समाधान के लिए प्रयासरत होता है, वही केवल पुरुषार्थ को, वही केवल साहस को, वही केवल अपने मनुष्य होने की घोषणा करता है। शेष कुछ भी पुरुषार्थ नहीं है।
जो मृत्यु से घिरे हैं, उनके किए हुए कुछ का भी क्या मूल्य है? जो मृत्यु से घिरे हैं, उनके इकट्ठे किए हुए संग्रह का क्या मूल्य है? जो मृत्यु से घिरे हैं, उनके इकट्ठे किए हुए विचारों का क्या मूल्य है? जो मृत्यु से घिरे हैं, उनके यश का, सम्मानों का क्या मूल्य है? मृत्यु उनकी सारी चेष्टाओं को निष्फल कर देगी। और वे पाएंगे कि उनके हाथ में कुछ भी न था। जैसे रात्रि कोई सोए और स्वप्न देखे और स्वप्न में बहुत कुछ होने की आकांक्षाओं की तृप्ति देखे, और बहुत सी कामनाओं की पूर्ति देखे, और सुबह जाग कर पाए, वह कुछ भी हाथ में नहीं है।
वैसे ही एक दिन प्रत्येक व्यक्ति को मृत्यु का जागरण सारे स्वप्न को खंडित करके जगा देता है। और उसे ज्ञात होता है, जिन बातों को हमने समझा था कि हमारी मुट्ठियों में हैं, वे हमारी मुट्ठियों में नहीं हैं। और जिन चीजों को हमने समझा था, वे हमारी हैं, वे हमारी नहीं हैं। और जिन लोगों के साथ-साथ था, जिस संपत्ति के साथ मालकियत थी, वह कुछ भी हाथ में नहीं है। हम पुनः नग्न और दरिद्र खड़े हुए हैं।
मृत्यु जिस दरिद्रता को उघाड़ देगी, विवेकशील उसे मृत्यु के पहले उघाड़ लेता है। मृत्यु जिस असत्य को उघाड़ देगी, विवेकशील उसे मृत्यु के पहले उघाड़ लेता है। और मृत्यु जिन सपनों को तोड़ेगी, विवेकशील उन सपनों को पहले तोड़ देता है।
साधना का और धर्म का इससे ज्यादा कोई अर्थ नहीं है कि उन सपनों को जिसे मृत्यु तोड़ेगी, हम अपने हाथ से तोड़ दें। और उन संपत्तियों को जिन्हें मृत्यु छीनेगी, हम अपने हाथ से खुद जान लें कि वे हमारे पास नहीं हैं। जो इस भांति जाग सकता है मृत्यु के पहले, जो मृत्यु करेगी जो स्वयं पर कर सकता है, वही साधक है। वही धर्म में उत्सुक है। वही जीवन को साधने की तरफ उत्सुक हुआ है।
और हम हैं, और हमें प्रतीत होता है कि जीते हैं, और हम सब इस भ्रम में होते हैं कि हम जी रहे हैं। मैं यह भ्रम आपका तोड़ दूं, इससे बड़ा, इससे बड़ा और कोई साथ आपको नहीं दे सकता हूंः यह भ्रम आपका खंडित हो जाए। यह भ्रम खयाल से उतर जाए कि हम जिसे जीवन समझ रहे हैं वह जीवन है? तो यह, यह सबसे बड़ी बात हो सकती है जो कोई आपको साथ दे दे। महावीर ने या बुद्ध ने या कृष्ण ने और कुछ भी नहीं किया है, लोगों का भ्रम तोड़ा है। यह भ्रम तोड़ा कि वे जिसे जीवन समझ रहे हैं, वह जीवन नहीं है। यह भ्रम तोड़ा कि जिसे वे सब कुछ समझ रहे हैं, वह कुछ भी नहीं है। और यह भ्रम तोड़ा कि जिसे वे सत्य समझ रहे हैं, वह स्वप्न से ज्यादा, स्वप्न से ज्यादा उसकी कोई सत्ता नहीं है।
थोड़ा कभी सोचें, किसी विवेक के और विचार के क्षण में कभी पीछे लौट कर देखें। अभी थोड़ा विचार करें कि कल जो दिन व्यतीत हो गए हैं, क्या आज वे स्वप्न से ज्यादा मालूम होते हैं? क्या आज बहुत निश्चित हैं कि वे दिन कभी थे? आज बैठ कर देखें, पीछे एक नजर डालें, एक सिंहावलोकन करें, पीछे गर्दन को मोड़ें और देखें कि जो दिन बीत गए हैं, क्या उन दिनों में और जो सपनों में बीत गई हैं घटनाएं, उनमें कोई भेद है? आज लौट कर देखने पर अतीत और स्वप्न में कौन सा अंतर है? जो सच में जाना हो वह और जो स्वप्न में देखा था, उसमें कौन सी भेद-रेखा है?
क्या अतीत की स्मृति स्वप्न में घटी नहीं हो गई? क्या सारा अतीत स्वप्न नहीं हो जाता है? क्या जो हम जी लेते हैं वह स्वप्न में परिणित नहीं हो जाता है? और अगर अतीत स्वप्न में बदल गया हो, तो जिसे हम वर्तमान समझ रहे हैं, वह कितनी देर सच होगा? वह भी स्वप्न में परिणित हो जाएगा। और जिसे हम भविष्य समझ रहे हैं, वह कितनी देर सच होगा। वह भी स्वप्न में परिणित हो जाएगा। सब चूंकि अतीत हो जाता है, वर्तमान भी और भविष्य भी; इसलिए सब स्वप्न हो जाता है।

मृत्यु की घड़ी में जाकर, जब कोई पीछे लौट कर देखता है तो क्या दिखाई पड़ेगा? कोई सत्ता दिखाई पड़ेगी, कोई सत्य दिखाई पड़ेगा, जीवन एक कथा दिखाई पड़ेगी। पता नहीं, जो जीया भी गया या नहीं जीया गया। क्या यह खयाल करते हैं कि मृत्यु की घड़ी में यह नहीं दिखाई पड़ेगा कि जिसे हमने जीवन समझा था, वह जीए भी या नहीं भी जीए। कौन सा अंतर पड़ेगा? हो सकता है वह सब स्वप्न में देखा गया हो।
टाल्सटाय ने मरते वक्त अपनी डायरी में लिखा है: अब मैं पीछे लौट कर देखता हूं, तो मुझे यह शक होता है, या तो मेरी स्मृति खराब हो गई है या तो मेरी बुद्धि खराब हो गई है, लेकिन मुझे शक होता है कि पीछे जिंदगी जो मैं जीया था, वह सच में जीया था या मैंने किसी स्वप्न में देखी थी? च्वांगत्सु चीन में एक बहुत अदभुत साधु हुआ। उसने लिखा एक रात मैंने स्वप्न में देखा कि मैं तितली हो गया हूं। फिर मैं सुबह जागा तो मुझे यह डर लगा, कहीं अब ऐसा तो नहीं है कि तितली स्वप्न देख रही हो कि वह मनुष्य हो गई है? च्वांगत्सु ने लिखा है, एक रात मैंने स्वप्न देखा कि मैं तितली हो गया हूं। फिर सुबह जब मैं जागा, तो मुझे लगा कि कहीं अब ऐसा तो नहीं है कि तितली स्वप्न देख रही हो कि वह मनुष्य हो गई है। और उसने लिखा, उसके बाद मैं तीस वर्ष जीया हूं, लेकिन मुझे यह शक बना ही रहा कि पता नहीं यह तितली स्वप्न देखती हो कि मनुष्य हो गई। जैसे मनुष्य स्वप्न देख सकता है कि तितली हो गया; तितली स्वप्न देख सकती है कि मनुष्य हो गई।
च्वांगत्सु की बात हंसने जैसी लग सकती है। लेकिन सच में रोने जैसी है। हम भी बहुत गौर करें, हम जो स्वप्न में देखते हैं उसमें, और जो हम चारों तरफ देख रहे हैं उसमें कोई बहुत बुनियादी अंतर है? जब हम स्वप्न में होते हैं तब जो स्वप्न में दिखाई पड़ता है, बिल्कुल सच मालूम होता है। आज तक किसी को भी स्वप्न में पता नहीं चला कि वह जो देख रहा है वह स्वप्न है। क्या आपको कभी पता चला? आज तक इस पूरी जमीन पर करोड़-करोड़ लोगों ने करोड़ों सपने देखे हैं, लेकिन किसी ने स्वप्न में यह नहीं जाना कि जो वह देख रहा है, वह स्वप्न है।
स्वप्न में स्वप्न सत्य होता है। जागने पर पता चलता है कि वह असत्य था। तो अभी हम जो देख रहे हैं सोए हुए, वह हमें सच मालूम होता है। लेकिन कुछ लोग इस स्वप्न से भी जागे हैं। और उन्होंने कहा, यह भी स्वप्न है। महावीर या बुद्ध ऐसे ही जागे हुए लोगों में हैं, जिन्होंने कहा, यह भी स्वप्न है। और मृत्यु पर यह जागरण प्रत्येक के जीवन में घटित होता है। जब उसे लगता है कि सब जो उसने जाना था, एक कथा हो गई, एक झूठी बात हो गई। पता नहीं हुई या नहीं हुई। और हुई हुई हो या न भी हुई हो, तो भी बराबर है। तो जो अंत में जी लेने पर व्यर्थ हो जाता हो, उसे जीवन नहीं कहा जा सकता। जो है, वह सदा "है" रहेगा, वह नहीं नहीं हो सकता। और जो नहीं है वही एक दिन नहीं हो जाता है। जो स्वप्न है वही केवल किसी दिन स्वप्न मालूम हो सकता है, जो सत्य है वह हमेशा सत्य है।
जब रात मैं स्वप्न देखता हूं तब भी मुझे कितना ही मालूम पड़े कि वह सत्य है, तब भी स्वप्न है। जब सुबह जाग कर मैं देखूंगा तो पता चलेगा स्वप्न था। तो जागने पर थोड़े ही स्वप्न हो गया, स्वप्न तब भी था जब मैं सोया था और सत्य समझता था। जो एक दिन स्वप्न प्रतीत हो वह हमेशा स्वप्न था; जो किसी दिन स्वप्न प्रतीत न हो वही केवल सत्य है। जो किसी भी क्षण स्वप्न प्रतीत हो, वह हमेशा स्वप्न था। जो किसी क्षण भी स्वप्न प्रतीत न हो, जो किसी भी क्षण सत्य प्रतीत हो, वही सत्य है।
जिस जीवन को हम जीते हैं, वह जी लेने के बाद स्वप्न हो जाता है। उसे जीवन नहीं कहा जा सकता। वह एक सपना है। वह एक स्वप्न है। और जो वास्तविक जीवन को साधेगा उसे इस स्वप्न को छोड़ना होगा, तो ही वास्तविक जीवन साधा जा सकता है। जो जागना चाहता है उसे नींद तोड़नी होगी और सपने खोने होंगे। हो सकता है कोई बहुत सुखद सपने देख रहा हो, और हो सकता है कोई बहुत दुखद सपने देख रहा हो। हो सकता है कोई बहुत सम्मान के सपने देख रहा हो, और कोई बहुत अपमान के सपने देख रहा हो। लेकिन सपने सब बराबर हैं। और सपने में दरिद्र और समृद्ध में भेद नहीं है। क्योंकि सपना सपना है--चाहे वह दरिद्रता का हो,

चाहे समृद्धि का हो। सब सपने बराबर हैं। सम्मान के और अपमान के और दरिद्रता के और समृद्धि के और यश के और अपयश के।
इन स्वप्न को छोड़े बिना कोई सत्य में जाग नहीं सकता है। और उस निद्रा
को तोड़े बिना कोई परम जीवन को उपलब्ध नहीं होता है। इस निद्रा को तोड़ने के लिए क्या किया जा सके? यह नींद कैसे तोड़ी जा सकती है? ये स्वप्न कैसे तोड़े जा सकते हैं? हम कैसे स्वप्न के बाहर जाग सकते हैं?
प्रभु को, आत्मा को या सत्य को जो जानना चाहता है: उसे केवल एक ही बात,
एक ही शर्त पूरी करनी होती है। एक ही शर्त, एक ही सौदा पूरा करना होता है। और सौदा बड़ा सस्ता और बड़ा अजीब है। स्वप्न खोने होते हैं जो सत्य को पाने को उत्सुक हों। और स्वप्न भी खोना क्या कोई खोना है। जो नहीं था उसे खोना है, ताकि हम उसे अनुभव कर सकेंजो--है। स्वप्न के मूल्य पर सत्य मिलता है। हम उसको भी राजी न हों, तो हम फिर किस बात को राजी होंगे।
लोग समझते हैं महावीर ने संपत्ति छोड़ी, परिवार छोड़ा, धन छोड़ा, राज्य छोड़ा। मैं नहीं सोचता। स्वप्न भर छोड़ा। जो सोचता हो, धन छोड़ा, संपत्ति छोड़ी, यश छोड़ा, वह समझ नहीं रहा। असल में जो संपत्ति है वह तो छोड़ी नहीं जा सकती, केवल स्वप्न ही छोड़े और तोड़े जा सकते हैं। जो छोड़ा वह स्वप्न था, जो पाया वह संपत्ति थी। जो छोड़ा वह स्वप्न था, जो पाया वह संपत्ति थी। और हम देखते हैं, उन्होंने संपत्ति छोड़ी। और हम देखते हैं, उन्होंने राज्य छोड़ा। मैं आपको कहूं, जो पाया वह राज्य था, जो छोड़ा वह स्वप्न था। और हम देखते हैं, उन्होंने अधिकार छोड़े। और मैं आपको कहूं, जो पाया वह अधिकार था, जो छोड़ा वह कोई अधिकार न था। अब तक इस जगत में स्वप्न के सिवाय कोई कुछ छोड़ नहीं सकता। सत्य तो छोड़ा नहीं जा सकता, स्वप्न ही छोड़े जा सकते हैं। और निद्रा के सिवाय कोई कुछ त्याग नहीं सकता। और त्यागने को कुछ है भी नहीं। स्वप्न छोड़ना है और भूमिका तैयार करनी है ताकि सत्य का अवतरण हो सके। इसलिए बात महंगी नहीं है, इसलिए सौदा बहुत सस्ता है। और वे लोग होशियार हैं जो इस सौदे को कर लेते हैं। और वे नासमझ हैं जो सौदे को नहीं कर पाते हैं। वे समझदार हैं इस अर्थ में जो सौदे को कर लेते हैं, क्योंकि वे छोड़ते कुछ भी नहीं और पा सब लेते हैं। और नासमझ वे हैं जो स्वप्न को पकड़े रहते हैं और सत्य को खो देते हैं। अगर त्याग ही कहना हो, तो हम जो कर रहे हैं, वह त्याग है। अगर त्याग ही कहना हो, तो हम जो कर रहे हैं, वह त्याग है--सत्य को छोड़े हुए हैं, स्वप्न को पकड़े हुए हैं।
महावीर और बुद्ध जो करते हैं, वह त्याग नहीं है। वह त्याग कैसे हो सकता है? सपनों को छोड़ते हैं और सत्य को पाते हैं। अगर स्वप्न को छोड़ना और सत्य को पाना त्याग है, तो जो मिट्टी को छोड़ दे और सोने को पा ले, उसको त्याग समझेंगे? हम त्यागी हो सकते हैं, वे त्यागी नहीं हैं। और हम अज्ञानी हैं इसलिए त्यागी हैं। जो ज्ञानी है, वह छोड़ता नहीं, पा लेता है। और जो अज्ञानी है, वह छोड़े बैठा रहता है और पाने से वंचित हो जाता है। अज्ञान है, त्याग है--ज्ञान तो उपलब्धि है। पर हमें वह त्याग जैसा दिखाई पड़ेगा। जैसे बहुत लोग सोए हों और कोई एक व्यक्ति जाग जाए, और उनको पता चले कि उसने नींद का त्याग कर दिया है। जैसे बहुत लोग भ्रम में हों, कोई एक आदमी का भ्रम टूट जाए और लोगों को पता चले, उसने त्याग कर दिया है।
एक कहानी मैं पढ़ता था। एक कहानी कहता था। एक गांव में एक जादूगर गया
और उसने एक कुएं में एक मंत्र फूंक कर कुछ डाल दिया और कहाः अब इस कुएं का पानी जो भी पीएगा, पागल हो जाएगा। उस गांव में केवल दो ही कुएं थे। एक कुआं गांव का था और एक राजा के महल में था, राजा का था। गांव का कुआं विषाक्त हो गया। और उस फकीर ने कहा कि अब जो भी इस पानी को पीएगा वह पागल हो जाएगा। लेकिन मजबूरी थी। गांव के लोगों को उस कुएं का पानी पीना ही पड़ा। और सांझ तक सारा गांव पागल हो गया। क्योंकि बिना पानी के जीना कैसे संभव था? और सारे लोगों को पानी पीना पड़ा। और सांझ होते-होते सारा गांव पागल हो गया। लेकिन राजा के घर का अपना कुआं था। राजा ने, उसकी रानियों ने, उसके वजीरों ने उसका पानी पिया। और वे पागल होने से बच गए। लेकिन सांझ गांव में एक खबर फैल गई कि राजा का दिमाग खराब हो गया है। सांझ गांव में एक खबर फैल गई कि राजा का दिमाग खराब हो गया है। कुछ राजा गड़बड़ बातें कर रहा है। कुछ राजा के

ढंग, भाव पता नहीं चलते। और सारे गांव के लोगों ने महल के सामने इकट्ठे होकर आवाज लगाई कि राजा का दिमाग खराब हो गया है। आप सिंहासन छोड़ दें, अब हम किसी ठीक आदमी को सिंहासन पर बिठाएंगे।
राजा बहुत घबड़ाया। वह अपनी छत पर खड़ा हुआ। तो उसने अपने वजीरों को कहाः अब क्या किया जाए? यह तो बड़ी मुश्किल हो गई। यह गांव पागल हो गया है। लेकिन इस पागल गांव में हम अकेले अगर पागल नहीं हैं तो स्वाभाविक है कि हम पागल मालूम पड़ें। तो अब क्या करें? उसके वजीरों ने कहाः एक ही रास्ता है। उसी कुएं का पानी हम जल्दी पी लें। और राजा ने और उसके वजीरों ने उस कुएं का रात पानी पिया। और फिर रात देर तक गांव में जलसा होता रहा है कि राजा का दिमाग ठीक हो गया है।
तो उस दुनिया में जहां अज्ञान की बहुत भीड़ है और अंधकार घना है, जो अंधकार को छोड़ते हैं और प्रकाश को उपलब्ध होते हैं, वे त्यागी मालूम होते हैं। इस पागलों की भीड़ में, जो व्यर्थ को छोड़ते हैं और सार्थक को पाते हैं, वे त्यागी मालूम होते हैं। जब कि सच यह है कि त्यागी हम हैं। और ठीक-ठीक जीवन के अर्थ को उपलब्ध करने वाले वे लोग हैं जिन्हें हम त्यागी कहते हैं। त्याग कुछ छोड़ता नहीं है, त्याग वस्तुतः पाता है। और जैसे मेरे हाथों में मिट्टी भरी हो और कोई मुझे हीरे-जवाहरात दे दे और मैं मिट्टी को छोड़ दूं, हीरे-जवाहरातों के लिए खाली करने को मुट्ठी, ताकि हीरे-जवाहरात झेल सकूं। नीचे खड़े हुए लोग देखें कि मैंने मुट्ठी खोल दी है और मैंने सारी मिट्टी त्याग कर दी जो मेरे हाथों में थी। जैसी उनकी नासमझी होगी, वैसी ही हमारी नासमझी है। जब हम समझते हैं कि महावीर ने त्याग किया, महावीर को जो मिल रहा है वह हमें दिखाई नहीं पड़ता, हम उसके प्रति अंधे हैं। और महावीर जो छोड़ते हैं वही हमें दिखाई पड़ता है। उसी के प्रति हममें आंखें हैं।
महावीर सपनों को छोड़ रहे हैं वह हमें दिखाई पड़ता है, क्योंकि हम केवल सपने देख रहे हैं। और महावीर जिस सत्य को पा रहे हैं वह हमें दिखाई नहीं पड़ता, क्योंकि सत्य को देखने की हमारे पास कोई आंख नहीं है। इसलिए महावीर त्यागी मालूम पड़ते हैं। बुद्ध त्यागी मालूम पड़ते हैं। संन्यासी छोड़ता हुआ मालूम पड़ता है। जब कि सच में जो संन्यासी है वह छोड़ता कुछ भी नहीं, केवल सपने छोड़ता है और पाता सब कुछ है।
तो मैं आपको कहूं, सस्ता, बहुत सस्ता सौदा है। और कुछ त्यागने को नहीं कहता, कुछ पाने को कहता हूं। त्याग की भाषा ही गलत है। त्याग की भाषा ही गलत है। और जिन लोगों ने धर्म को त्याग की भाषा में खड़ा कर दिया है, उन्होंने धर्म को नुकसान पहुंचा दिया। क्योंकि हम सारे लोग छोड़ने की हिम्मत ही नहीं कर पाते हैं। मैं आपको कहता हूं, पाने की हिम्मत तो कर सकते हैं। छोड़ने की हिम्मत छोड़ दें। मैं आपको कहता हूं, धर्म को त्याग समझें ही नहीं। वह त्याग है भी नहीं। धर्म तो उपलब्धि है। धर्म तो पाजिटिव एचीवमेंट है। धर्म तो विधायक उपलब्धि है। कुछ पाना ही है वहां, खोना वहां कुछ भी नहीं है।
जिन लोगों ने शक्ल दी है धर्म को नकार की, खोने की, छोड़ने की, उन्होंने नुकसान पहुंचाया है। इस जमीन पर जो नुकसान पहुंचा है धर्म को वह नास्तिकों के द्वारा नहीं पहुंचा, वह उन लोगों के द्वारा नहीं पहुंचा जो कहते हैं ईश्वर नहीं है, जो कहते हैं आत्मा नहीं है। वह उन लोगों के द्वारा नहीं पहुंचा जो कहते हैं मोक्ष, स्वर्ग, नरक। यह सब बकवास है। वह उन लोगों के द्वारा नहीं पहुंचा जिन्होंने विज्ञान के बड़े चमत्कार किए हैं और विज्ञान से बड़ी शक्तियों की ईजाद की है। न विज्ञान के द्वारा, न नास्तिकता के द्वारा।
धर्म को नुकसान पहुंचा उन लोगों के द्वारा जिन्होंने धर्म को नकार की भाषा में, निगेशन की भाषा में, छोड़ने की भाषा में, त्यागने की भाषा में प्रस्तावित किया है। और जब छोड़ने, छोड़ने की बात हो तो हमारा मन राजी नहीं हो पाता। समझ नहीं पाते हम। सब छोड़ दें--पाने की कोई दृष्टि नहीं दिखाई पड़ती, छोड़ने की बात दिखाई पड़ती है। सब छोड़ना मालूम पड़ता है। और उस सब छोड़ने की वजह से हम वंचित हो जाते हैं। हम रुक जाते हैं।

मैं आपको दूसरे कोने से धर्म की बात कहना चाहता हूं। धर्म छोड़ना बिल्कुल नहीं है। और इसलिए कमजोर से कमजोर पाने को राजी हो सकता है, ताकतवर से ताकतवर छोड़ने को राजी नहीं हो पाता। और इस दुनिया में हम सारे कमजोर लोग हैं। और जब हमसे छोड़ने की भाषा में बातें कही जाती हैं, तो सब गलत हो जाता है। वे हम पर बहुत भारी और बोझिल हो जाती हैं।
मैं आपसे छोड़ने को तो सिर्फ स्वप्न कहता हूं। कमजोर से कमजोर भी स्वप्न छोड़ने को राजी हो जाएगा। अत्यंत कमजोर भी स्वप्न छोड़ने को राजी हो जाएगा। इतना कमजोर कोई भी नहीं है इस जमीन पर जो स्वप्न न छोड़ सके। व्यक्ति ही इतना कमजोर इस जमीन पर कोई भी नहीं है जो स्वप्न न छोड़ सके। और अगर इतना कमजोर कोई हो फिर उसके लिए कोई रास्ता नहीं है। पर इतना कमजोर कोई है नहीं, इसलिए सबके लिए रास्ता है। इतना कमजोर सच में कोई नहीं है, इसलिए सबके लिए रास्ता है। इतना, और इतनी आकांक्षा से शून्य भी कोई नहीं है कि पाने को उत्सुक न हो। इतनी आकांक्षा से शून्य भी कोई नहीं है कि पाने को उत्सुक न हो। वे लोग जो धन पाने को इतने उत्सुक हैं, वे लोग जो यश पाने को इतने उत्सुक हैं, क्या वे लोग परमात्मा को या आत्मा को पाने को उत्सुक नहीं हो सकते?
वे निश्चित ही उत्सुक हो सकते हैं। क्योंकि परमात्मा धन से बहुत बड़ा है। और आत्मा यश से बहुत बड़ी है। जो यश को पाने को उत्सुक हैं, वे विराट आत्मा को पाने को उत्सुक न होंगे, यह मेरी समझ में नहीं आता। बल्कि मैं आप से कहूं कि हम जब भी कुछ पाना चाहते हैं, तब मूलतः हमारी प्यास परमात्मा को ही पाने की होती है।
एक आदमी यश पाना चाहता है। उससे पूछें, कितने यश से तृप्त हो जाओगे? उससे पूछें, कितने यश से तृप्त हो जाओगे? उससे कहें, ठीक-ठीक सीमा बताओ, कितने यश से तृप्त हो जाओगे? और क्या आप सोचते हैं वह कोई सीमा बताने को राजी हो जाएगा? अगर वह सीमा भी बताए और फिर उससे कहें कि थोड़ा और सोच लो, क्या इतने से तृप्त हो जाओगे। वह और थोड़ी सीमा आगे बढ़ा देगा।
क्या आप सोचते हैं, आज तक कोई भी व्यक्ति यश से तृप्त हुआ है, किसी भी सीमा पर? क्यों नहीं हुआ? शायद आप सोचते होंगे, क्यों नहीं हुआ? कितने धन से कोई आदमी तृप्त हो सकता है? कितने ही धन से तृप्त नहीं हो सकता, कितने ही। और कितनी शक्ति और समृद्धि से तृप्त हो सकता है? कितनी ही शक्ति और समृद्धि से तृप्त नहीं हो सकता, क्यों?
क्योंकि हमारे भीतर जो आकांक्षा है, वह अनंत संपत्ति को पाने की है।
वह छोटी-मोटी संपत्ति से तृप्त नहीं होती। और हमारे भीतर जो आकांक्षा है, वह अनंत राज्य को पाने की है। छोटे-मोटे राज्य को पाने से तृप्त नहीं होती। और हमारे भीतर जो आकांक्षा है वह मूलतः परमात्मा को पाने की है, उससे पहले तृप्त नहीं हो सकती। तो मैं आपको कहूं आपकी छोटी-छोटी वासना के पीछे भी, उसी अनंत की वासना छिपी बैठी है। और आपकी छोटी-छोटी आकांक्षा के पीछे ही वही परम अभीप्सा, वही अंतिम एंबीशन, वही महत्वाकांक्षा बैठी है। मैं आपको दो बातें कहना चाहता हूं। एक बात तो यह कहना चाहता हूं कि धर्म छोड़ना बिल्कुल नहीं है, धर्म पाना है। और पाने की भाषा में सोचें। और दूसरी बात मैं आपको कहूं, आपकी प्रत्येक आकांक्षा और वासना में, चरम रूप से वही छिपा है--जो परमात्मा, या आत्मा, या सत्य की आकांक्षा है। अगर आप अपनी वासनाओं को खोदें और उघाड़ें तो आप उनके भीतर परमात्मा की वासना को अनुभव करेंगे। और अगर आप धर्म के प्राण को समझें तो आप पाएंगे वहां छोड़ना कुछ भी नहीं है, पाना सब कुछ है।
एक बहुत, बहुत दिन हुए, कोई चौदह सौ, पंद्रह सौ वर्ष हुए, एक भारतीय साधु चीन गया था। वह वहां एक आश्रम में मेहमान था। उस आश्रम में बहुत साधु थे। उन साधुओं के गुरु ने इस साधु का स्वागत किया। भारतीय साधु का स्वागत किया। और उसके स्वागत में एक सभा की। और उस सभा में उसने बताया, अपने आश्रम के परिचय में बताया कि हमारे साधु शराब नहीं पीते हैं, मांस नहीं खाते हैं, चोरी नहीं करते हैं, बेईमानी नहीं करते हैं, परिग्रह नहीं रखते हैं। यह नहीं करते हैं, वह नहीं करते हैं। उसने बहुत बातें बताईं। वह भारतीय साधु बैठा सुनता रहा, और वह बीच में खड़ा हुआ और उसने कहाः क्षमा करें, मैं एक बात

पूछूं? मैं यह तो समझ गया, ये साधु क्या-क्या नहीं करते हैं, क्या मैं यह पूछूं कि ये करते क्या हैं? उसने कहाः क्या मैं यह पूछूं कि ये करते क्या हैं? मैं यह तो समझ गया ये क्या-क्या छोड़ते हैं, क्या मैं यह पूछूं कि ये पाते क्या हैं?
क्या आप सोचते हैं कि सिर्फ छोड़ने पर कोई जीवन खड़ा हो सकता है? छोड़ना नकार है, छोड़ना शून्य है। छोड़ने पर कोई जीवन खड़ा नहीं हो सकता। छोड़ना तो मृत्यु है। छोड़ने पर तो मृत्यु खड़ी हो सकती है। जीवन खड़ा नहीं हो सकता। मृत्यु का मतलब ही है, जहां सब छूट जाए। छोड़ने पर मृत्यु खड़ी हो सकती है, जीवन नहीं। जीवन तो पाने पर खड़ा होता है। जीवन तो उपलब्धि पर खड़ा होता है। जीवन तो विराट से विराट की उपलब्धि पर खड़ा होता है।
परम संन्यासी वह नहीं है जिसने संसार छोड़ दिया। परम संन्यासी वह है जिसने ब्रह्म को, परमात्मा को उपलब्ध कर लिया। संसार का छोड़ना उस उपलब्धि के लिए कोई अर्थ नहीं रखता, कोई मायने नहीं रखता। वह वैसे ही है जैसे हमने एक कमरे में प्रकाश किया और अंधकार विलीन हो गया। कोई कहे हमने अंधकार छोड़ दिया। अंधकार छोड़ा नहीं है, हमने केवल प्रकाश किया। हमने प्रकाश को पाया, अंधकार नहीं छोड़ा। अंधकार छोड़ा भी नहीं जा सकता। छोड़ने का प्रयास हो तो भी नहीं छोड़ा जा सकता। अंधकार को छोड़ते कभी किसी को देखा है। कभी अंधकार का त्याग करते किसी को देखा है। कभी अंधकार को घर के बाहर विदा करते किसी को देखा है। अंधकार की न विदा हो सकती है, न त्याग हो सकता है, न अंधकार छोड़ा जा सकता है, न अंधकार का विनाश हो सकता है। अंधकार का विनाश करते भी कभी किसी को नहीं देखा होगा।
हां, प्रकाश का आगमन होता है, प्रकाश का स्वागत होता है, प्रकाश की उपलब्धि होती है; और अंधकार नहीं पाया जाता। अंधकार था ही नहीं। अंधकार केवल प्रकाश के न होने का नाम था। संसार की जो पकड़ है वह ब्रह्म की उपलब्धि का अभाव है। संसार पर जो हमारी जकड़ है, जो आसक्ति है, जो जोर है, जो उसे पकड़े रहने का मन है, वह जो हम सपनों को पकड़े हैं--वह केवल जागरण का अभाव है। अन्यथा कोई सपनों को पकड़ने को राजी नहीं होगा।
अभी इस कक्ष में अंधकार भर जाए और हम उसे निकालने लग जाएं, तो क्या होगा? क्या हम निकाल पाएंगे? हम टूट जाएंगे, अंधकार यहीं होगा। और कोई कहे कि अंधकार को निकालो, और अगर हम निराश हो जाएं, और अंधकार न निकले, और हम सोचें कि अंधकार बहुत शक्तिशाली है और हम बहुत कमजोर हैं, तो नासमझी होगी। अंधकार बिल्कुल भी शक्तिशाली नहीं है। लेकिन अंधकार को निकालने का उपाय अंधकार का त्याग करना नहीं है। अंधकार को निकालने का उपाय प्रकाश को उपलब्ध करना है। उपलब्धि पहले है, उपलब्धि पहले है, उपलब्धि प्राथमिक है। और त्याग उसका अनुसरण करता है। छोड़ना उसके पीछे आता है, छाया की तरह त्याग आता है। पाना, पाना पहले आता है, त्याग उसके पीछे छाया की तरह है। पर हमको केवल छायाएं दिखती हैं, इसलिए त्याग दिखता है।
मैं आपको आज रात यही कहना चाहता हूं, धर्म त्याग नहीं, धर्म उपलब्धि है। और अगर यह दिखाई पड़े तो धर्म निगेटिव न रह कर पॉजिटिव साइंस बन जाए। फिर वह नकारात्मक न रह कर एक विधायक विज्ञान बन जाता है।
तो मैं आपको नहीं कहता कि चोरी छोड़ दें, मैं आपको नहीं कहता बेईमानी छोड़ दें, मैं आपको नहीं कहता झूठ छोड़ दें, मैं आपको नहीं कहता हिंसा छोड़ दें; मैं आपको कहता हूं आत्मा को उपलब्ध करें। मैं आपको कहता हूं आत्मा को उपलब्ध करने की दिशा में विधायक संघर्ष करें, छोड़ने का विचार न करें, कुछ पाने का विचार करें। और आप पाएंगे जैसे-जैसे पाने की गति बढ़ती है, वैसे- वैसे छोड़ना अपने आप घटित होता चला जाता है। प्रकाश की तरफ अग्रसर हों और यह विधायक संकल्प अपने भीतर करें कि प्रकाश को पाना है। अंधेरे का विचार न करें, अंधेरे के विचार की कोई जरूरत नहीं।
मैं देखता हूं जैसे ही किसी व्यक्ति को खयाल उठता है धर्म का, वैसे ही उसे छोड़ने का खयाल भी उठता है--क्या छोडूं? मुझे लोग जगह-जगह मिल जाते हैं, वे मुझसे पूछे हैं, हम क्या छोड़ें? हम क्या त्याग कर दें? मैं उनसे कहता हूं तुम्हारे पास कुछ होता, तो हम कहते भी कि त्याग कर दो। मैं उनसे कहता हूं, तुम्हारे पास कुछ होता तो हम कहते भी कि त्याग कर दो। तुम्हारे पास

सिवाय सपनों के और कुछ भी नहीं है। और तुम समृद्ध होते तो त्याग करते भी, तुम्हारे पास समृद्धि का तो कोई पता नहीं, सिवाय दरिद्रता के और कुछ पास नहीं है। दरिद्र छोड़ने के सपने देखते हैं। जिनके पास कुछ नहीं है, वे त्यागी होने का खयाल करते हैं। ऐसा आश्चर्यजनक है। मैं आपको नहीं कहता, मैं आपको नहीं कहता कुछ छोड़ने को, अभी कुछ है ही नहीं।
मैं आपको पाने को कहता हूं। और पाने के लिए, और पाने के लिए बड़ा भिन्न प्रयास होता है, छोड़ने के लिए बड़ा भिन्न प्रयास होता है। इसे स्मरण रखें, छोड़ने के लिए बड़ा भिन्न प्रयास होता है। यह बात इतनी नहीं है--अगर धर्म की नकारात्मक, निगेटिव पकड़ हो, तो सारे प्रयास दूसरे ढंग के होते हैं। और अगर धर्म की पॉजिटिव, विधायक पकड़ हो, तो सारे प्रयास दूसरे ढंग के होते हैं। बहुत भेद पड़ जाता है। एक में हम छोड़ने के खयाल में रहते हैं, कुछ थोड़ा बहुत छोड़ने की कोशिश करते हैं। दूसरे में छोड़ने का खयाल नहीं होता, हम कुछ पाने की फिकर करते हैं।
तो मैं स्मरणपूर्वक आपको यह खयाल, यह विचार, यह बोध देना चाहता हूं कि
आप धर्म को पाने के विचार से सोचें। और सोचें कि क्या पाना है। और सोचें कि मुझे क्या पाना है। और जब धर्म से पूछें कि हम क्या करें, तो पूछें कि हम क्या पाएं? यह न पूछें कि हम क्या छोड़ें? यह पूछे कि हम क्या पाएं? हम क्या उपलब्ध करें?
और जब आप यह पूछेंगे कि हम क्या उपलब्ध करें, तो बहुत भिन्न दिशा, बहुत भिन्न आयाम, और बहुत ही नये मार्ग का उदघाटन होगा। जो धर्म से पूछेगा, हम क्या छोड़ें? धर्म उसके लिए नीति की तरह उपस्थित होगा। और जो धर्म से पूछेगा, हम क्या पाएं? उसके लिए धर्म योग की तरह उपस्थित होगा। जो धर्म से पूछेगा, हम क्या छोड़ें? उसके लिए धर्म नीति की तरह उपस्थित होगा। चोरी छोड़ो, बेईमानी छोड़ो, यह न करो, वह न करो--इस भांति उपस्थित होगा। जो धर्म से पूछेगा, हम क्या करें? हम क्या पाएं? उसके लिए धर्म योग की तरह उपस्थित होगा।
धर्म की दो शक्लें हैं--एक नीति की शक्ल और एक योग की शक्ल। जब धर्म जीवित होता है, तो वह योग होता है। और जब धर्म मुर्दा हो जाता है, तो वह नीति हो जाता है। जो धर्म मर जाता है, वह नैतिक रह जाता है। और जो धर्म जीवित होता है, वह यौगिक होता है। वह अहिंसा नहीं साधता, अहिंसा उत्पन्न होती है। वह अपरिग्रह नहीं साधता, अपरिग्रह उत्पन्न होता है। वह साधता कुछ और है। वह योग साधता है, समाधि साधता है, ध्यान साधता है, वह कुछ और साधता है। दृष्टि बिल्कुल भिन्न हो जाती है। जब नकार से कोई पकड़ता है तो नीति हाथ में रह जाती है।
नैतिक मनुष्य होना बुरा नहीं है, लेकिन नैतिक मनुष्य होने मात्र से कोई सत्य को उपलब्ध नहीं होता। नैतिक होना बुरा नहीं है, लेकिन नैतिक होने से ही कोई धार्मिक नहीं होता। यह हो सकता है एक आदमी चोरी न करे, यह हो सकता है कि एक आदमी बेईमानी न करे, यह हो सकता है कि एक आदमी असत्य न बोले। लेकिन इतने से ही काफी नहीं है कि वह सत्य को जाने। इतने से काफी नहीं है कि उसे आत्मा का अनुभव हो। एक नास्तिक भी नैतिक हो सकता है; लेकिन धार्मिक नहीं हो सकता। एक नास्तिक बिल्कुल नैतिक हो सकता है। नैतिक होने में बाधा नहीं है। नैतिकता कोई क्रांति नहीं है। नैतिकता कोई नये सत्य के जगत से संबंधित नहीं करती है।
योग करता है।
और बड़े आश्चर्य की बात यह है कि कोई नैतिक कितना ही हो जाए, योग अपने
आप नहीं आता। लेकिन अगर योग को कोई साधे तो नीति अपने आप आ जाती है। यह असंभव है कि योगी और अनैतिक हो। यह बिल्कुल सहज है कि नैतिक योगी न हो। यह असंभव है कि योगी और अनैतिक हो। यह बिल्कुल संभव है। यह सहज ही संभव है कि नैतिक योगी न हो। योग का नीति से कोई वास्ता नहीं। इस अर्थों में कि नीति साधने से योग नहीं आता; लेकिन योग साधने से नीति अपने आप चली आती है।
धर्म को योग की भांति पकड़ें, धर्म को योग की दृष्टि से पकड़ें। और पाने
के लिए पूछें, तो सबसे पहली बात जब धर्म से पूछेंगे कि क्या पाना है? क्या उपलब्ध करना है? सबसे पहली बात तो यह खयाल में आएगी इसके पहले कि कुछ और

पाने में हम लगें, जीवन को पाना है। जिन्हें जीवन ही उपलब्ध नहीं है, वे और क्या उपलब्ध करेंगे। जिन्हें जीवन उपलब्ध नहीं है, वे क्या और उपलब्ध करेंगे। सबसे पहली बात कि जीवन को उपलब्ध करना है। अभी जिसे हम जानते हैं, मैंने कहा, जीवन नहीं है।
एक साधु हुआ। उसके पास एक व्यक्ति बहुत दिन तक आता था। बहुत वर्षों आता था। एक दिन उस व्यक्ति ने उस साधु को कहाः मैं बहुत वर्षों से आपके निकट आया और बहुत निकट से आपको देखा है। और बहुत गहरी आंख से आपको देखा है। कई तरह से कोशिश की कि कोई दोष, कोई भूल, कोई पाप आपमें दिख जाए, वह नहीं दिखता। अपनी तरफ मैंने सब तरह से देख लिया, कोई कालिमा आपमें दिखाई नहीं पड़ती। तो अब मैं आपसे पूछता हूं, बाहर से तो कुछ दिखाई नहीं पड़ता, लेकिन क्या भीतर भी आपके कोई कालिमा नहीं है? बाहर से तो कोई दोष दिखाई नहीं पड़ता, लेकिन भीतर भी क्या दोष के बीज बिल्कुल नष्ट हो गए हैं? और बाहर तो प्रकाश ही प्रकाश मालूम होता है, लेकिन कहीं दीये के तले अंधेरा तो नहीं? उस व्यक्ति ने उस साधु को पूछा--तो अब मैं आपसे ही पूछूं, क्योंकि मैं बाहर से देख सकता था, भीतर से तो आप ही अकेले देखते हैं। तो आपसे ही पूछ लेता हूं।
उस साधु ने कहाः इसके पहले कि इसका उत्तर दूं, एक और जरूरी बात बता देनी है, अन्यथा कहीं भूल न जाऊं। कल अचानक तुम्हारे हाथ पर मेरी दृष्टि पड़ी, तो पाया कि तुम्हारी उम्र समाप्त हो गई है, और सात दिन बाद ठीक सूरज डूबेगा और तुम भी डूब जाओगे। यह मैं भूल न जाऊं, इसलिए बता दूं। कल भी बातचीत में भूल गया था। अब फिर तुमने बातचीत शुरू की है, कहीं मैं भूल न जाऊं इसलिए बता दूं। अब तुम पूछो।
वह व्यक्ति बैठा था, वह उठ कर खड़ा हो गया। उस साधु ने कहा कि बैठो भी, तुम कुछ पूछते थे? वह बोलाः मुझे कुछ याद नहीं आता कि मैंने आपसे कुछ पूछा। अभी तो मुझे आज्ञा दें, फिर कभी समय हुआ तो मैं आऊंगा। उस साधु ने कहाः अब कभी समय नहीं होगा, पूछना हो पूछ ही लो। और अब मैं जानता हूं, अब तुम कभी नहीं आओगे। वह बोला, कि नहीं, समय मिला तो मैं आऊंगा। उस साधु ने कहा कि मैं तुम्हारे हाथ-पैर कंपते देख रहा हूं, मुझे डर है कि तुम घर तक भी पहुंच पाते हो कि नहीं। वह सीढ़ियां उतरता था, वह सीढ़ियों पर ही गिर पड़ा। उसे घर पहुंचाया गया, वह खाट से लग गया। सात दिन बाद सूरज डूबने को है, घर में सब उदासी है, सब रुदन है। मृत्यु आसन्न है, मृत्यु निकट है।
वह साधु उसके घर पहुंचा। वह आंखें बंद किए हुए करीब-करीब मृत ही पड़ा है। साधु ने उसे आवाज दी, बामुश्किल उसने आंख खोली; हाथ जोड़े, साधु को नमस्कार किया। साधु ने कहाः एक बात पूछने आया हूं, सात दिन में कोई पाप किया? सात दिन में भीतर कोई पाप उठा? वह व्यक्ति बोलाः आप एक मरते हुए आदमी से मजाक करते हैं। मौत इतनी निकट थी कि मेरे और मौत के बीच इतना फासला नहीं था कि पाप उठ सके। मौत इतने करीब थी कि बीच में अंतराल नहीं था, स्थान नहीं था खाली कि पाप उठ सके। खयाल ही नहीं आया सात दिन जी रहा हूं कि मर गया हूं, यही भूल गया। बार-बार ऐसा लगता कि जैसे मर गया, जैसे सात दिन पूरे हो गए। बस सात दिन केवल प्रतीक्षा की मृत्यु की और कुछ नहीं किया।
उस साधु ने कहाः अभी मृत्यु आई नहीं, केवल तुम्हारे प्रश्न का उत्तर दिया है। वह जो तुमने पूछा था कि भीतर कालिमा शेष तो नहीं है, उसका केवल उत्तर दिया है, मृत्यु तुम्हारी आई नहीं है। वह आदमी घबड़ा कर बैठ गया, वह बोला, सिर्फ उत्तर दिया है! तो उसने कहा, मेरी तो जिंदगी बदल गई, अब मैं वही आदमी दुबारा नहीं हो सकता। अब दुबारा वही आदमी नहीं हो सकता।
मृत्यु का बोध धर्म में प्रवेश देता है। और आप यह मत सोचें कि उसकी सात दिन बाद थी इसलिए परिवर्तन हुआ। सत्तर वर्ष बाद भी हो तो कोई फासला बहुत ज्यादा नहीं है। सत्तर वर्ष में और उस सात दिन में बहुत अंतर नहीं है--गणित में होगा, जिंदगी में नहीं। जिंदगी में सात दिन और सत्तर वर्ष और सात क्षण बिल्कुल बराबर हैं। गणित में फासले अलग-अलग हैं, जिंदगी में अलग नहीं।
इससे क्या फर्क पड़ता है कि मौत सात दिन बाद है या सत्तर वर्ष बाद। मौत
है, इससे फर्क पड़ना चाहिए। इससे कोई फर्क नहीं पड़ता कि मौत कब है। मौत है,

इससे फर्क पड़ना चाहिए। और मौत का होना हमें घबड़ा क्यों देता है? मौत का होना हमें घबड़ा इसलिए देता हैः जीवन को तो हम जानते नहीं, मौत हमें इसलिए घबड़ा देती है कि जीवन को हम जानते नहीं। अन्यथा मौत क्या घबड़ाएगी? जो जीवन को जानता है, उसे मौत नहीं घबड़ाएगी।
परीक्षा यही है: जिसे मौत न घबड़ाए उसने जीवन को जाना। जीवन को जानने
की और कोई परीक्षा नहीं है। जिसे मौत न घबड़ाए, उसने जीवन को जाना। जिसे मौत अर्थहीन हो जाए, उसने जीवन को पहचाना। जिसे मौत विलीन हो जाए, वह जीवन से संबंधित हुआ, वह जीवित हुआ। जिसकी मौत नहीं है, वह जीवित हुआ। जिसने जाना कि मेरी मौत नहीं है, वह जीवित हुआ। उसने जीवन से संबंध स्थापित किया। धर्म का जो विधायक विज्ञान है, उससे पहली बात तो पूछने की है कि जीवन क्या है? और हम उस जीवन से संबंधित कैसे हो जाएं? हम जिससे अभी संबंधित हैं वह मृत्यु से संबंधित हैं, जीवन से नहीं। हम जिन-जिन चीजों से संबंधित हैं, सब मृत्यु हमसे छीन लेगी। जो मृत्यु हमसे छीन लेगी वह स्वयं मृत्यु है। इस देह को हम समझते हैं हमारा होना, यह मृत्यु हमसे छीन लेगी। यह देह मृत है इसलिए मृत्यु छीन लेगी। जो मृत है, केवल मृत्यु उसी को छीन सकती है। जो मेरे भीतर शाश्वत है, जो मेरे भीतर चैतन्य है, जो मेरे भीतर जीवित है, उसे मृत्यु नहीं छीन सकती। वही अकेला शेष रह जाएगा।
तो अपने भीतर मुझे खोजना हैः क्या-क्या मृत है और क्या जीवित है। अपने भीतर एक भेद करना है, एक डिस्क्रिमिनेशन, एक फासला करना है अपने भीतर कि क्या-क्या मेरे भीतर मृत है और क्या मेरे भीतर जीवित है। उस सारे मृत को इनकार करना है अपने भीतर से जो जीवित नहीं है। और अंतिम रूप से केवल उसी शिखा को पकड़ लेना है जो जीवन है। यह योग है। यह धर्म का विधायक विज्ञान है। अपने भीतर निरीक्षण, अपने भीतर यह विवेक, अपने भीतर यह भेद, अपने भीतर यह बोध कि क्या-क्या मृत है।
कभी करें, इस करने का नाम ही साधना है। इसे चौबीस घंटे करें, इसे अखंडित रूप से... जीवन का यह हिस्सा बन जाए कि मैं यह जानूं और विचार करूं और विवेक करूं कि क्या-क्या मेरे भीतर मृत है। यह बहुत स्पष्टता से अनुभव हो जाता है।
क्या आपको नहीं दिखाई पड़ता--कभी आंख बंद करके बैठें--तो क्या यह दिखाई नहीं पड़ता कि मैं देह नहीं हो सकता हूं? क्या स्वप्न में, रात की निद्रा में आपको देह का पता रह जाता है? क्या आपको बोध रह जाता है रात को जब आप नींद में होते हैं कि देह भी आपकी है?
देह का तो स्वप्न में, निद्रा में कोई बोध नहीं रह जाता। लेकिन आपको अपना होने का बोध तो रहता है। जागते हैं तब पाते हैं कि देह भी है। लेकिन सो जाते हैं तब आप तो होते हैं, लेकिन देह नहीं होती। आपको अपना बोध तो होता है, लेकिन देह का बोध नहीं रह जाता। शायद आपको अपने चेहरे का भी कोई बोध नहीं रह जाता। शायद आपको अपने नाम का भी कोई बोध नहीं रह जाता। आप अपने घेरे को निद्रा की स्थिति में भूल जाते हैं। सुषुप्ति में तो बिल्कुल भूल जाते हैं। जब स्वप्न भी नहीं होते तब तो बिल्कुल भूल जाते हैं।
आपको अगर, आंख बंद करके कभी कुछ क्षण, कुछ घड़ी बैठ कर सिर्फ यह देखें, अपने भीतर खोजें कि क्या मैं देह हूं? सिर्फ यह देखें और खोजें, क्या मैं देह हूं? आंख बंद करके अपनी चेतना को घूमने दें और खोजने देंः क्या मैं देह हूं? पैर से लेकर सिर तक उसे घूमने दें और खोजने दें, और आप बहुत स्पष्ट अनुभव करेंगे कि देह आप नहीं हो सकते, देह आप नहीं हैं।
क्योंकि जो चेतना देह के प्रति जाग्रत हो रही है, जो चेतना देख रही है
कि देह है, वह चेतना स्वयं देह नहीं हो सकती। जो भी देखा जा सकता है, देखने के कारण ही हम उससे पृथक हो जाते हैं। जिसके प्रति भी अवेयरनेस हो सकती है, जिसके प्रति भी हम जाग सकते हैं, जागने के कारण ही उससे अन्यथा और अलग हो जाते हैं। मैं आपको देख रहा हूं यह काफी है कि मैं आप नहीं हूं। मैं इन दीवालों को देख रहा हूं यह तय है कि मैं यह दीवाल नहीं हूं। क्योंकि जो देख रहा है मेरे भीतर, वह जो चेतना मेरे भीतर जाग कर देख रही है दीवाल को, वह दीवाल ही कैसे हो सकती है? अगर मैं जाग कर अपनी देह को देखूं, तो आप पाएंगे

कि देह एक, एक खोल की तरह है। स्पष्ट दिखाई पड़ेगा कि देह एक खोल की तरह है।
और आपकी चेतना बहुत भीतर है।
देह से जागना पहला चरण है जीवन की तरफ प्रवेश के लिए। देह में सोना होना स्वप्न में प्रवेश है। देह से जागना सत्य में प्रवेश का पहला द्वार है--देह के प्रति जागना, देह के प्रति बोध से भरना।
उस एकाग्र क्षण में जब आप अपने भीतर खोजते हैं, और चेतना भटकती है, और देह की दीवालों से लग-लग कर लौट आती है वापस, तो आप बहुत स्पष्ट अनुभव करेंगे कि देह एक खोल की तरह है और आप पृथक हैं। आपके भीतर एक नये बिंदु का, जो कि देह नहीं है--बोध होना शुरू हो जाएगा।
पहला चरण मैं देह नहीं हूं, इसके बोध का है। फिर और गहरा चरण उठाना पड़ेगा और देखना पड़ेगाः क्या मैं विचार हूं? क्या मैं मन हूं? स्वप्न में देह तो भूल जाती है, लेकिन मन काम करता है। लेकिन फिर स्वप्न भी बंद हो जाते हों और गहरी सुषुप्ति में आदमी जाता है, वहां मन भी काम नहीं करता, वहां मन भी नहीं होता। लेकिन हम होते हैं। सोते हैं, तो देह का विस्मरण हो जाता है। फिर सुषुप्ति में जाते हैं, तो फिर मन का भी विस्मरण हो जाता है। लेकिन हम होते हैं, हमारी सत्ता होती है, हमारे प्राण स्पंदित होते हैं। एक द्वार है कि हम पहचानें कि हम देह नहीं हैं। फिर उसी निरीक्षण से जिससे हमने देह को पहचाना, उसी निरीक्षण से विचार को पहचानें, वह एक पतला घेरा है। देह एक स्थूल घेरा है। देह बहुत स्थूल घेरा है, जो हमें बाहर से घेरे हुए है। फिर मन का, वासनाओं का और विचारों का एक सूक्ष्म घेरा है, जो हमें भीतर घेरे हुए है। जो देह के प्रति जागेगा, उसे दूसरा प्रयोग मन के प्रति जागने का करना होगा। और उसे देखना होगा विचार को, मन को और पहचानना होगा--क्या मैं मन हूं? और मन के भीतर चक्कर काटना होगा। और एकाग्रता के उस क्षण में जब मन के भीतर कोई जाग कर देखेगा, तो उसे स्पष्ट दिखाई पड़ेगाः देह भी एक घेरा है, जो मुझसे बाहर है। और मन का भी एक घेरा है, जो मुझसे बाहर है। एक द्वार देह का, दूसरा द्वार मन का। इन दो द्वारों को जो पार करता है,
वह चैतन्य में प्रविष्ट होता है। चैतन्य में प्रवेश जीवन में प्रवेश है। क्योंकि चेतना भर नहीं मरती और सब मर जाता है। चेतना भर अमृत है, बाकी सब मृत है। उस चेतना को अनुभव कर लेना--जैसे कोई अंधेरे घर में दीया जला ले, वैसा ही उसका अनुभव होता है। सारे जीवन के अंधकार में एक दीया जल जाता है चैतन्य का।
और उस चैतन्य से जो तादात्म्य हो जाता है, तो सारा जीवन बदल जाता है। फिर त्याग अपने आप चला आता है उन सबका जिन्हें हमने छोड़ना चाहा था और नहीं छोड़ सके। और जिन्हें हमने बुरा जाना था, लेकिन बुरा जान कर भी करते थे। और जिन्हें हम विकृतियां मानते थे, लेकिन फिर भी जो हमें घेरे थीं और पकड़े थीं। और सारे दोष, और सारे पाप, जिनकी हमने कितनी आकांक्षा की थी कि छूट जाएं, वह हम पाते हैं कि झड़ गए, जैसे पके पत्ते वृक्ष से झड़ जाते हैं। वैसे जिसके भीतर चैतन्य का दीया जागता है उसके बाहर दोष अपने आप विलीन हो जाते हैं और झड़ जाते हैं। जैसे अंधकार विसर्जित हो जाता है, वैसे जीवन का अंधकार विलीन हो जाता है।
जीवन के अंधकार को विलीन करने का विधायक उपाय है--योग। योग का सरलतम सीधा सा अर्थ हैः मृत जो है उससे तादात्म्य को छोड़ना, उससे आइडेंटिटी को छोड़ना। और वह जो जीवित है भीतर, उससे आइडेंटिटी खोजना, उससे तादात्म्य खोजना। मृत से दूर होना और चैतन्य के निकट होना। मृत से पृथक होना और चैतन्य में प्रतिष्ठित होना। यही ध्यान है। यही प्रार्थना है। यही धर्म है। और यह व्यक्ति को जीवन में ले जाता है। और जो जीवन में जाता है, जो जीवन को जानता है, उसके आनंद का, उसकी शांति का, उसके संगीत का, उसकी इन सारी बातों का अनंत-अनंत द्वार खुल जाता है।
वह पहली दफा जान पाता है यह सारा जीवन, यह सारा जगत कितने आनंद से भरा है। वह पहली दफा जान पाता है कितनी शांति है और कितना संगीत है और कितना सौंदर्य है। और तब, तब एक कृतार्थता और एक धन्यता मालूम होती है। तब जीना, श्वास लेना भी एक आनंद है। और तब इस जगत में कोई दुख नहीं है। जिस व्यक्ति

ने जान लिया मृत्यु नहीं है, उसने जान लिया इस जगत में कोई दुख नहीं है। और जिसने जान लिया मृत्यु नहीं है, उसने सब जान लिया। उसने अमृत को जान लिया। धर्म का संबंध इस विधायक विज्ञान से है। धर्म का संबंध छोड़ने, छोड़ने
और छोड़ने की भाषा से नहीं है; धर्म का संबंध पाने से है। जो पाएगा, उससे कुछ छूट जाता है। जिसने कुछ पाया नहीं वह पागल अगर छोड़ दे, तो और मुश्किल में पड़ जाता है। जिसने कुछ पाया नहीं वह अगर छोड़ दे, तो और मुश्किल में पड़ जाता है। सपने की नाव थी, वह भी गई। और असली नाव उपलब्ध भी न हुई। उसकी स्थिति बहुत मझधार में हो जाती है।
मैं आपको छोड़ने को नहीं कहता, मैं आपको पाने को कहता हूं। और पाने की दृष्टि आप अगर पकड़ते हैं, तो धर्म पुनरुज्जीवित हो सकता है। धर्म मर गया उसकी नकारात्मक दृष्टि से। धर्म पुनरुज्जीवित हो सकता है विधायक दृष्टि से।
ये थोड़ी सी बातें मैंने आपको कहीं, इस आशा में कहीं कि शायद कोई बात, शायद कोई बात ठीक लग जाए। शायद कोई बात आपके काम आ जाए। यह मेरे जैसे लोगों की खेती बड़ी अजीब है, यह तो पता नहीं पड़ता बीज कहां फेकें, किस पर गए, नहीं गए, कुछ पता नहीं पड़ता। यह भी पता नहीं पड़ता कि उनमें कभी कोई अंकुर निकलता है कि नहीं निकलता। यह भी पता नहीं पड़ता वे कभी, उनमें फिर फूल आते या नहीं आते हैं। यह, यह खेती अजीब सी है। लेकिन अगर लाख बीज फेंके जाएं और एक बीज में भी फूल आ जाए, तो भी श्रम सार्थक हो जाता है।
तो मैं यही आशा करता हूं कि वह आपका हृदय, उस एक बीज का स्थान बनेगा जिसमें फूल आ जाते हैं। परमात्मा करे, फूल से आपका जीवन भरे। और परमात्मा करे, प्रकाश और ज्योति आपके जीवन में आए, यही मेरी कामना और प्रार्थना है।

मेरी बातों को इतने प्रेम से सुना, उसके लिए बहुत-बहुत अनुगृहीत हूं।

विज्ञान, धर्म और कला
नौवां प्रवचन

विज्ञान स्मृति है और धर्म ज्ञान

मेरे प्रिय आत्मन्!
एक बहुत घने अंधकार में, एक बहुत घनी पीड़ा में, एक बहुत दुख से भरे हुए समय में हम हैं। और मनुष्य के भीतर मनुष्य की हृदय की वीणा पर कोई संगीत, कोई गीत, कोई आनंद उपस्थित नहीं है। मैं आपके भीतर देखता हूं, तो मुझे ऐसा लगता है जैसे कोई वीणा जो अलौकिक संगीत पैदा कर सकती थी, किसी अंधेरे खंडहर में व्यर्थ ही पड़ी है और उससे कोई संगीत पैदा नहीं हो रहा है। मैं आपको देखता हूं, तो मुझे लगता है कि कोई दीपक जो अंधकार में प्रकाश कर सकता था, किसी खंडहर में बिना जला हुआ पड़ा है। और मैं आपको देखता हूं, तो मुझे लगता है कि ऐसे बीज जो फूल बन सकते थे और जिनसे सारा जगत सुगंध से और सुवास से भर सकता था, वे बीज भूमि को न पाने के कारण व्यर्थ हुए जा रहे हैं। हमारे भीतर इतनी संभावना है, इतनी संभावना है कि हम परमात्मा हो सकें। और हम जहां खड़े हैं वहां पशु होना भी... पशु भी वहां खड़े होना पसंद नहीं करेंगे। हमारे भीतर संभावना है कि हम परमात्मा हो सकें और हम जहां खड़े हैं वहां पशु भी खड़े होना पसंद नहीं करेंगे। ऐसी दुख की यह जो स्थिति है, ऐसी पीड़ा की और दुर्घटना की जो स्थिति है, इस संबंध में कुछ आपसे कहूं। इसके पार होने के रास्ते के संबंध में कुछ कहूं। ऐसा मेरा विचार है।
मेरा मन नहीं होता कि धर्म की बंधी-बंधाई परिभाषाओं के संबंध में कुछ कहा जाए। उन्हें आप बहुत जानते हैं। और मेरा मन नहीं होता कि दर्शनशास्त्रों के शाब्दिक जाल में कुछ बातें आपको कही जाएं, उनसे आप अच्छी तरह भलीभांति परिचित हैं। शास्त्रों से, संप्रदायों से, शब्दों से आप भलीभांति परिचित हैं। लेकिन वे शब्द आपके जीवन में कोई आंदोलन पैदा नहीं करते हैं, और न वे आपके भीतर ऐसी प्यास करते हैं पैदा, न ऐसी लपट पैदा करते हैं कि आपके जीवन में क्रांति हो जाए और आपके भीतर दूसरे आदमी का जन्म हो जाए।
तो अच्छा हो मैं धर्म के संबंध में तो बात करूं, लेकिन धर्म के शब्दों में बात न करूं। बंधे हुए शब्द धीरे-धीरे मृत हो जाते हैं, उनके प्राण निकल जाते हैं। और वे थोथे शब्द हमारे मन को घेर लेते हैं। और उनका संपर्क, उनका जीवित संपर्क हमसे दूर हो जाता है।
तो मैं धर्म के संबंध में तो बात करूंगा, लेकिन धर्म की भाषा में नहीं करूंगा। धर्म के संबंध में तो बात करूंगा, लेकिन ग्रंथों की भाषा में नहीं करूंगा। धर्म के संबंध में ही कहूंगा, लेकिन, शायद मालूम न हो कि मैं धर्म के संबंध में आपसे कुछ कह रहा हूं।
कल मैं बाहर निकलता था, किसी ने मुझसे कहा, आपने जैन धर्म के संबंध में कुछ नहीं कहा?
मैं सोचता हूं, क्या हम जैन धर्म का नाम लेंगे तभी हम समझ पाएंगे कि धर्म के संबंध में कुछ कहा गया है?
कल मैं बाहर निकलता था, किसी और ने पूछा, आपने बुद्ध के संबंध में कुछ बातें कहीं, लेकिन महावीर के संबंध में नहीं कहीं?
क्या नाम इतने महत्वपूर्ण हैं? क्या जो बुद्ध के संबंध में सच है वही महावीर के संबंध में सच नहीं है? क्या जो महावीर के संबंध में सच है वही क्राइस्ट के संबंध में सच नहीं है? लेकिन नाम बहुत महत्वपूर्ण हो गए हैं। और उनके पीछे के अर्थ हमारे लिए बहुत गौण हो गए हैं।
तो, न तो मैं महावीर के संबंध में कुछ कहने को हूं आपसे, न बुद्ध के संबंध में, न क्राइस्ट के संबंध में। असल में इन नामों के संबंध में इतनी बातें हुई हैं कि इन नामों के पीछे खड़े हुए लोग धार्मिक बिल्कुल नहीं रह गए हैं। जो क्राइस्ट को पकड़े हुए है वह धार्मिक नहीं हो सकता; जो महावीर को पकड़े हुए है वह भी धार्मिक नहीं हो सकता।
धार्मिक जो होगा, उसे ज्ञात होगा, उसे दिखाई पड़ेगा कि महावीर में, क्राइस्ट में, बुद्ध में, राम में, कृष्ण में कोई भेद नहीं है। उसे दिखाई

पड़ेगा, ये नाम अलग हैं, लेकिन इन नामों के पीछे जो सत्य है, वह एक है। उसे दिखाई पड़ेगा, ये लोग अलग हैं, लेकिन इन्होंने जो कहा है और इन्होंने जो दिया है, वह भिन्न नहीं है। अलग-अलग दीयों से प्रकाश गिरता है। दीये अलग हो सकते हैं, लेकिन प्रकाश अलग नहीं होता। अलग-अलग दीयों से अंधकार दूर होता है, दीये अलग हो सकते हैं, लेकिन प्रकाश अलग नहीं होता। तारों में सौंदर्य होता है, और फूलों में सौंदर्य होता है, और किन्हीं आंखों में भी सौंदर्य होता है। आंखें, और तारे, और फूल अलग होते हैं, लेकिन सौंदर्य अलग नहीं होता। आंखें, और तारे और फूल अलग होते हैं, लेकिन सौंदर्य अलग नहीं होता। जो प्राण हैं वह एक हैं, केवल देहें अलग हैं।
धर्मों की देह, धर्मों के शरीर भिन्न हैं, धर्मों की आत्मा एक है। और
उस आत्मा के संबंध में मैं कुछ आपसे कहूं। उन देहों के संबंध में नहीं, उन शरीरों के संबंध में नहीं, जिन्होंने हमें बहुत जोर से, बहुत जोर से दबा रखा है। और जिनके दबाव में हम धर्म को उपलब्ध नहीं हो पाते हैं।
मुझे दिखाई पड़ता है, जो आदमी बहुत गहरे रूप से जैन शब्द को पकड़ेगा, वह जैन हो जाए, लेकिन धार्मिक नहीं हो पाएगा। और जितना वह धार्मिक होने लगेगा, उतना पाएगा कि जैन शब्द विलीन होता चला गया है। महावीर को जैन कहना उनका अपमान करना है। बुद्ध को बौद्ध कहना उनका अपमान करना है। क्राइस्ट को क्रिश्चियन कहना उनका अपमान करना है। खंडों में वैसे अखंड पुरुष विभाजित नहीं होते हैं। खंडों में वैसे अखंड पुरुष विभाजित नहीं होते हैं। और टुकड़ों में वैसे परम पुरुष बंधते नहीं हैं। उनकी कोई सीमा नहीं होती, और उनके कोई संप्रदाय नहीं होते। और जो संप्रदायों में खड़े हैं, और सीमाओं में खड़े हैं, उन्हें जानना चाहिए कि वे सीमाओं में ही समाप्त हो जाएंगे और असीम का अनुभव नहीं कर सकेंगे। और उन्हें जानना चाहिए, वे संप्रदायों में ही नष्ट हो जाएंगे और सत्य का अनुभव नहीं कर सकेंगे।
तो मैं उस सत्य के संबंध में कहूं जिसकी कोई सीमा नहीं है। और उस सौंदर्य के संबंध में कहूं जो माध्यम से बंधता नहीं। और उस प्रकाश के संबंध में कहूं जो दीयों पर निर्भर नहीं होता। जो दीयों में जरूर होता है, लेकिन दीयों से मुक्त होता है और दीयों से अलग होता है।
और वह प्रकाश, और उस प्रकाश की चर्चा, और वह सौंदर्य और उस सौंदर्य की चर्चा आपके भीतर संभव है। कोई स्वर छेड़ दे, आपके हृदय के तारों में संभव है कोई कंपन पैदा कर दे। और आपकी सोई वीणा संभव है मुखर हो जाए, और आपके सोए हृदय में संभव है कोई आंदोलन पैदा हो। और आपके जीवन में एक नई दिशा, एक नया विकास, एक नई गति पैदा हो जाए। वह गति, उस दिशा में गतिमय हो जाना, लौकिक से अलौकिक की तरफ गतिमय हो जाना, और देह से आत्मा की तरफ गतिमय हो जाना, और संसार से परमात्मा की तरफ गतिमय हो जाना, उस गति को, उस उन्मुखता को, उस दिशा में चेहरे के फिर जाने को मैं धार्मिक होना कहता हूं। उस संबंध में ही थोड़ी सी बातें आज आपसे कहूंगा।
जैसा मैंने कहा, बहुत अंधकार है। इतना अंधकार कभी भी नहीं था। जैसा मैंने कहा, मनुष्य बहुत पशु जैसा हो गया है। शायद इतना पशु जैसा कभी नहीं था। पिछले महायुद्ध में हिरोशिमा पर जब अणुबम गिराया गया, जिस रात हिरोशिमा और नागासाकी में लाखों लोग मरे, उसके दूसरे दिन सुबह ट्रूमैन को किसी ने जाकर पूछा, किसी पत्रकार ने पूछा, रात आपको नींद आई? ट्रूमैन ने कहा, इतनी गहरी नींद इसके पहले कभी भी नहीं आई थी। कल बहुत निश्चिंत सोया। हम थोड़ा विश्वास करें, हम थोड़ा खयाल करें। अगर मेरी आज्ञा से एक लाख लोग समाप्त हो गए हों, क्या उस रात मैं सो सकूंगा? क्या उस रात के बाद फिर जीवन भर मैं सो सकूंगा? क्या उस रात के बाद फिर आनंद भी मेरे जन्म हो, तो मैं सो सकूंगा? लेकिन ट्रूमैन ने कहा, रात मैं बहुत गहरी नींद सोया, सारी चिंता से मुक्त होकर सोया।
क्या हम कहेंगे, यह जो भीतर से बोल रहा है, मनुष्य है? क्या हम कहेंगे,
यह मनुष्य की वाणी बोलती है? क्या हम कहेंगे, भीतर से कोई, भीतर से कोई ऐसी चेतना बोलती है?
भीतर से कोई चेतना नहीं बोलती, शायद हमारे भीतर जो निम्नतम पशु है, वही यह कह सकेगा।

और यह हुआ है। और यह ट्रूमैन के लिए नहीं कह रहा हूं, यह हम सबके साथ हुआ है। हम सबके साथ कुछ ऐसा हुआ है कि हम दूसरों के रास्तों पर कांटे फेंकने में आनंद लेने लगे हैं। हम सबके साथ कुछ ऐसा हुआ है, हम दूसरों के जीवन से फूल छीन लें, इसमें हमारा आनंद हो गया है।

और जो मनुष्य दूसरों के रास्ते पर कांटे डालने में आनंद लेता हो, वह मनुष्य मनुष्य नहीं रह जाता है। और यह भी स्मरण रखें, जो मनुष्य दूसरे के जीवन में कांटे डालता हो, उसके अपने जीवन में फूल नहीं हो सकते हैं। यह भी स्मरण रखें, हम जो देते हैं, वह हम पर वापस लौट आता है। यह जगत, यह जगत हमें वही वापस दे देता है जो हम इसकी तरफ फेंकते हैं।
इस जगत से हमें कुछ भी ऐसा नहीं मिलता जो हमने न फेंका हो। हम जो फेंकते हैं वापस लौट आता है। जो घृणा फेंकता है, घृणा वापस लौट आती है। जो प्रेम फेंकता है, प्रेम वापस लौट आता है। और यह सारा जगत हमारा प्रतिफलन बन जाता है। मेरी जो शक्ल होती है, वह इस चारों तरफ सारी दुनिया में छाए हुए लोगों में प्रतिबिंबित होकर मुझे दिखाई पड़ने लगती है।
अगर हम विकृत हो गए हों, तो चारों तरफ से विकृतियां हममें प्रविष्ट होने लगती हैं। और अगर हम घृणित हो गए हों, तो चारों तरफ से घृणा हममें प्रविष्ट होने लगती है। और अगर हमने कांटे फेंके हों, तो हमें कांटों की फसलें उपलब्ध होती हैं और जीवन नष्ट हो जाता है।
यह जो मैंने कहा, इतना अंधकार, इतनी घृणा और इतनी हिंसा मनुष्य के जीवन में कभी नहीं थी। वह आज है! लेकिन इसका यह अर्थ नहीं है कि हम निराश हो जाएं। इसका यह अर्थ नहीं है कि मैं निराश हूं। इसका केवल एक ही अर्थ है, जो लोग अंधकारमय हो सके हैं, वे अपने हाथ से अंधकार में हैं, अपने संकल्प से, अपने ही कारण से। और अगर चाहेंगे, तो वे प्रकाशमय हो सकते हैं। जो लोग अंधकार में खड़े हैं, उस अंधकार में खड़े होने का कोई दूसरा व्यक्ति कारण नहीं है, हम स्वयं कारण हैं। हम अपने हाथ से अंधेरे में खड़े हैं। और जब हमारा संकल्प हो, जब हममें आकांक्षा पैदा हो, अभीप्सा पैदा हो, हम प्रकाश में प्रविष्ट हो सकते हैं।
एक बात स्मरण रखें, अंधकार का पता केवल उसे चलता है जिसके पास आंख हो। अंधकार का पता केवल उसे चलता है जिसके पास आंख हो। अंधे आदमी को अंधकार का पता नहीं चलता।
शायद आपने कभी सोचा हो, जिनको आंखें नहीं होतीं, उनको अंधकार अंधकार मालूम होता होगा, तो आप गलती में हैं। अपनी धारणा बदल लें। अंधकार अंधे को पता नहीं चलता। अंधे को भी अंधकार का पता नहीं चल सकता, क्योंकि आंख चाहिए। अंधकार देखने को भी आंख चाहिए। प्रकाश देखने को ही आंख की जरूरत नहीं होती है, अंधकार देखने को भी आंख की जरूरत होती है।
जिसके पास आंख नहीं है, उसे प्रकाश तो नहीं ही दिखता, अंधकार भी नहीं दिखता। अगर हमें अंधकार दिखाई पड़ रहा हो, तो अंधकार का होना तो बुरा है, लेकिन अंधकार का दिखाई पड़ना आंख होने की सूचना है। अंधकार का होना, अंधकार का बोध होना आंख होने की सूचना है। और जो आंख अंधकार देख सकती है वह आंख प्रकाश देखने में समर्थ है।
तो अंधकार निराशा का कारण नहीं है, अंधकार आशा की किरण अपने भीतर लिए हुए है। वह आशा की किरण कैसे पैदा हो सकती है? और वह आंख जो अंधकार को देखते-देखते अंधकार में ही लीन हो गई है, जो अंधकार को देखते-देखते अंधकार में ही समाविष्ट हो गई है, अंधकार में ही सन्निविष्ट हो गई है--वह आंख कैसे प्रकाश के प्रति उन्मुख हो सकती है, उस संबंध में कुछ आपको कहूं।
सबसे पहली बात, जो आपसे मेरा कहने का मन है, वह यह है कि जैसे हम पैदा होते हैं, जैसा प्रकृति हमें पैदा करती है, अगर हम उस सीमा पर ही रुक जाएंगे, तो हम परमात्मा को अनुभव नहीं कर सकेंगे। प्रकृति जैसा हमें पैदा करती है, वह केवल एक संभावना है। उस संभावना को वास्तविकता में बदलने के लिए हमें कुछ करना होगा। प्रकृति और मनुष्य का पुरुषार्थ जब मिलता है, तो मनुष्य के भीतर अलौकिक का जन्म होता है। और जब केवल प्रकृति पर मनुष्य तृप्त हो जाता है, तो मनुष्य के भीतर अलौकिक का जन्म नहीं होता। प्रकृति

और मनुष्य का पुरुषार्थ जब मिलता है, प्रकृति पर जब पुरुषार्थ सक्रिय होता है, तो मनुष्य के भीतर अलौकिक का जन्म होता है।
इसे स्मरण रखें, जो प्रकृति पर तृप्त है, वह मृत है। जो प्रकृति पर तृप्त है, उसने जीवन को नहीं जाना। जो प्रकृति पर तृप्त है, वह पशु के तल पर समाप्त हो जाएगा। लेकिन जो प्रकृति पर पुरुषार्थ का प्रयोग करेगा, जो अपनी सामर्थ्य को और शक्ति को प्रकृति के साथ संलग्न करेगा और प्रयोग करेगा, वह एक दिन पाएगा कि प्रकृति और पुरुषार्थ के सम्मिलन से अलौकिक का जन्म होता है।
प्रकृति पर पुरुषार्थ की साधना से अलौकिक का जन्म होता है। और मनुष्य मनुष्य नहीं रह जाता, कुछ और हो जाता है। आनंद के किसी नये लोक में समाविष्ट हो जाता है। किसी बहुत गहरे संगीत को उत्पन्न कर पाता है और किसी बहुत गहरे सत्य को जान पाता है। और उस सत्य का जानना मनुष्य को मुक्त करता है। उस सत्य को जानना मनुष्य को मुक्त करता है स्वतंत्रता के एक बहुत अदभुत लोक में और आनंद के एक बहुत अदभुत लोक में प्रतिष्ठित करता है। प्रकृति है हमारे भीतर कुछ, हमारे भीतर पुरुषार्थ भी होना चाहिए। सामान्यतया हमारा पुरुषार्थ बहुत क्षुद्र बातों को पाने में व्यतीत हो जाता है। सामान्यतया हमारा पुरुषार्थ अत्यंत क्षुद्र बातों को साधने में समाप्त हो जाता है। और हम विराट को और श्रेष्ठ को नहीं साध पाते हैं। हम जरूर कुछ न कुछ साध रहे हैं। हमारा पुरुषार्थ जरूर कहीं न कहीं संलग्न है। कोई धन को साधता होगा, कोई यश को साधता होगा, कोई पद को, प्रतिष्ठा को साधता होगा, कोई कुछ और साधता होगा। लेकिन ये सारी साधनाएं ऐसी हैं जैसे कोई जीवन भर रेत पर महल बनाए। या कोई जीवन भर नदी के किनारे हस्ताक्षर करे रेत पर और सांझ को आंधियां आएं और हस्ताक्षरों को मिटा दें। सांझ को आंधियां आएं और हस्ताक्षरों को मिटा दें। ऐसा ही हमारा यह पुरुषार्थ है जो हम रेत पर कर रहे हैं। मृत्यु आएगी और सब पोंछ देगी। हमारा किया हुआ सब न किया हो जाएगा।
क्षुद्र वह पुरुषार्थ है जिसे मृत्यु नष्ट कर देती है। विराट वह पुरुषार्थ है जिसे मृत्यु नष्ट नहीं कर पाती। क्षुद्र वह पुरुषार्थ है जिसे मृत्यु पोंछ देगी। विराट वह पुरुषार्थ है जिसे मृत्यु नहीं पोंछ पाती है। और ठीक अर्थों में पुरुष वे हैं, ठीक अर्थों में पुरुष वे हैं, और ठीक अर्थों में उन लोगों ने अपने पुरुष का अपने भीतर की शक्ति का उपयोग किया है, जिन्होंने कुछ ऐसे हस्ताक्षर किए हैं जिन्हें मृत्यु नहीं पोंछ पाती, जिन्हें मृत्यु नहीं मिटा पाती है। जिन्होंने कुछ ऐसे भवन निर्मित किए... कौन सा भवन है, कौन सा निर्माण है, कौन सा सृजन है जो मृत्यु नहीं पोंछ पाएगी, उस पर अपने पुरुषार्थ को संलग्न करना है।
दो तरह के पुरुषार्थ मैंने कहे। एक क्षुद्र पुरुषार्थ है, जो आजीविका
के लिए होता है या यश के लिए होता है या प्रतिष्ठा के लिए होता है या धन के लिए होता है। एक और पुरुषार्थ है, जो आजीविका के लिए नहीं होता, जो जीवन के लिए होता है। और जो यश के लिए नहीं होता, धन के लिए नहीं होता; जो सत्य के लिए होता है, जो स्वयं की परम सत्ता के लिए होता है, जो स्वरूप के लिए होता है।
सबसे पहले अपने पुरुषार्थ को उस बिंदु पर केंद्रित करने की जरूरत है
जो मैं हूं, जो मेरी सत्ता है। और सबसे पहले मेरी सारी शक्तियों को, सारे संकल्प को, सारी आकांक्षाओं को, मेरी सारी कामनाओं को, मेरी सारी अभीप्साओं को उस एक बिंदु पर एकाग्र करने की जरूरत है जो मेरी सत्ता है। मैं अगर उस रहस्य के द्वार को खोल लूं। अगर मैं जान सकूं कि मैं कौन हूं? अगर मैं परिचित हो सकूं कि मेरा होना क्या है? अगर मैं जान लूं कि मेरी इस देह के भीतर जीवन की कौन सी ज्योति कैद है और बंद है? अगर मैं इस मिट्टी के घेरे के भीतर परम ज्योति को अनुभव कर लूं--तो ही मैंने विराट पुरुषार्थ की तरफ कदम उठाए, तो ही मैंने सत्य की तरफ कदम उठाए, तो ही मैंने अपनी शक्ति का उपयोग किया है, और अपव्यय नहीं किया है।
मनुष्य के भीतर अनंत संगीत की संभावना है। अगर पुरुषार्थ उसकी प्रकृति पर संलग्न हो। हम अपने भीतर देखें, तो हमें दिखाई पड़ेगा। हम करीब-

106

करीब जैसे पैदा होते हैं वैसे ही मर जाते हैं। हम दौड़ते बहुत हैं, हम चेष्टाएं बहुत करते हैं, हम श्रम बहुत करते हैं, लेकिन सारा श्रम निरर्थक हो जाता है। हम किसी एक ऐसे माध्यम पर श्रम कर रहे हैं, हम किसी एक ऐसे माध्यम पर श्रम कर रहे हैं जो कि स्वयं नश्वर है। जो नश्वर पर श्रम कर रहा है, उसका सारा श्रम निरर्थक हो जाएगा। जो अविनश्वर पर श्रम करता है, उसका श्रम ही सार्थक हो पाता है।
श्रम हम सब करते हैं, लेकिन माध्यम गलत चुन ले सकते हैं। कोई ऐसा माध्यम चुन ले सकता है जो, जो स्वयं माध्यम ही नश्वर हो। जो माध्यम ही क्षणिक हो। जो माध्यम ही मरणधर्मा हो। जो मरणधर्मा पर श्रम करेगा, उसका श्रम अगर निरर्थक हो जाए तो इसमें आश्चर्य क्या है।
अमृत पर श्रम करना, अमृत पर ही श्रम सार्थक होता है।
तो अपने भीतर यह स्मरणपूर्वक, विवेकपूर्वक देखने की जरूरत है कि क्या मरणधर्मा है और अपने भीतर क्या है जो अमृत है? उसके भीतर विवेक, उसके भीतर डिस्क्रिमिनेशन, उसके भीतर फासला, उसके भीतर भेद--यही एक व्यक्ति को सामान्य संसारी से साधक के जीवन में परिणति देता है--जो अपने भीतर मरणधर्मा को पहचान ले, और जो अपने भीतर उसे पहचान ले जो कि मरता नहीं है। और जो नहीं मरता उस पर श्रम संयुक्त हो जाए उसका, तो व्यक्ति साधक हो जाता है। और जो मरता है, मरणधर्मा है, उस पर जो अपने श्रम को लगाए, तो व्यक्ति संसारी हो जाता है।
संसार और संन्यास में स्थानों का भेद नहीं है। घर और जंगल का भेद नहीं है। संसार में और संन्यास में कुछ छोड़ कर भागने और कहीं पहुंच जाने का प्रश्न नहीं है। संन्यास और संसार में अपने भीतर मरणधर्मा को और अपने भीतर अमृत को पहचान लेने का प्रश्न है। संन्यास और संसार कोई क्रिया नहीं है, संन्यास और संसार ज्ञान है। संन्यास और संसार का भेद किसी क्रिया का भेद नहीं है।
संन्यास और संसार का भेद किसी ज्ञान का, किसी बोध का, किसी अवेयरनेस
का भेद है। इस बात का बोध कि मेरे भीतर कुछ मरणधर्मा है, उस मरणधर्मा से मैं अपने को असंलग्न करता हूं। इस बात का बोध कि मेरे भीतर जो मरणधर्मा है, मैं अपने श्रम को उस मरणधर्मा के प्रति समर्पित होने से इनकार करता हूं और उस तरफ समर्पित करता हूं जो अमृत है। अमृत पर समर्पित होकर श्रम भी अमृत हो जाता है। और अमृत पर संयुक्त होकर पुरुषार्थ मुक्ति में परिणित हो जाता है।
अपने भीतर यह विवेक कैसे संभव हो सके, और अपने भीतर यह बोध कैसे संभव
हो सके, और अपने भीतर इस अखंड चैतन्य का अनुभव कैसे हो सके--दो रास्ते हैं। ऐसा लोग कहते हैं कि दो रास्ते हैं। मुझे तो एक ही रास्ता दिखाई पड़ता है। लोग कहते हैं, दो रास्ते हैं। और दुनिया के सारे संप्रदाय और दुनिया के सारे विचारशील लोग उन दो रास्तों की बात करते हैं। एक रास्ता लोग कहते हैंः ज्ञान का है। एक रास्ता लोग कहते हैंः प्रेम का है या भक्ति का है। मेरे देखने में रास्ता एक ही है, दो नहीं हैं। और मेरे देखने में ज्ञान अधूरा है अगर उसमें प्रेम न हो। और प्रेम अधूरा है अगर उसमें ज्ञान न हो। ज्ञान अकेला हो, तो अधूरा है, सूखा है और शुष्क है, रसहीन है। और प्रेम अकेला हो, तो अंधा है, चक्षु-विहीन है, प्रकाश-शून्य है। अंधा प्रेम अधूरा है। रसहीन ज्ञान अधूरा है। ज्ञान और प्रेम जब संयुक्त होते हैं तो व्यक्ति के भीतर अमृत के स्वर बजने शुरू होते हैं। मेरे देखने में ज्ञान और प्र्रेम साथ ही साधने होते हैं, तब व्यक्ति के भीतर अमृत का अनुभव शुरू होता है। तो उन दोनों की साधना के बाबत थोड़ी सी बात आपसे कहूं।
सबसे पहले तो ज्ञान अनिवार्य है। इसके पूर्व कि हम अमृत को, आत्मा को
या परमात्मा को पा सकें, ज्ञान अनिवार्य है। ज्ञान का अर्थ, ज्ञान का अर्थ यह नहीं है कि हम बहुत सी बातें जान लें। एक आदमी बहुत सी बातें जान कर बिल्कुल अज्ञानी हो सकता है। बहुत सी बातें जानना अलग बात है। स्मृति और ज्ञान में भेद है। मेमोरी और नॉलेज में भेद है। बहुत सी बातें जानना स्मृति है। और उस परम सत्य को जो मेरे भीतर है, उसे जानना ज्ञान है। हमारी जितनी शिक्षा है, स्मृति की शिक्षा है, ज्ञान की शिक्षा नहीं है। बहुत समय

हुआ ज्ञान की शिक्षा बंद हो गई। बहुत समय से हम केवल स्मृति में प्रशिक्षित होते हैं। सब मेमोरी की ट्रेनिंग होती है। पूरे जीवन हमें स्मृति सिखाई जाती है, कुछ बातें सिखाई जाती हैं, वह हम याद कर लेते हैं। जिन बातों को हम याद कर लेते हैं और दोहराने में समर्थ हो जाते हैं, हमें यह भ्रम होता है कि हम उन्हें जानते हैं।
अगर हम आपसे पूछें ईश्वर के बाबत कुछ, जरूर आप कुछ कहेंगे। अगर हम पूछें, आत्मा के बाबत, जरूर आप कुछ कहेंगे। अगर हम पूछें किसी और मोक्ष के संबंध में, जरूर आप कुछ कहेंगे। वह आपका जानना नहीं है, वह आपकी स्मृति है। आपने सुना है, आपने पढ़ा है, आपको किसी ने कहा है, लेकिन आपने जाना नहीं है। स्मृति एक बात है और ज्ञान बिल्कुल दूसरी बात है। जो अमृत को साधना चाहता है, उसे ज्ञान को उपलब्ध होना पड़ेगा। और जो जड़ को साधना चाहता है, उसके लिए स्मृति काफी है। साइंस के लिए स्मृति काफी है। धर्म के लिए ज्ञान जरूरी है। साइंस स्मृति से जीती है और चलती है। धर्म ज्ञान से चलता है। इसलिए यह हो सकता है कि पीछे तीन सौ वर्षों में जितने वैज्ञानिक हुए हैं, आज का वैज्ञानिक उनको पढ़ ले और उनके संबंध में सब कुछ जान ले। यह आसान है। इसलिए साइंस में एक परंपरा होती है, एक ट्रेडीशन होती है। न्यूटन हुआ तो पीछे आइंस्टीन होगा। तो आइंस्टीन वहां से काम शुरू करेगा जहां न्यूटन ने छोड़ा। जहां न्यूटन का काम समाप्त होता है वहां आइंस्टीन का काम शुरू होगा। आइंस्टीन के बाद दूसरा वैज्ञानिक आएगा। वह वहां से काम शुरू करेगा जहां से आइंस्टीन ने छोड़ा।
लेकिन धर्म में ऐसा नहीं होता। महावीर ने जहां काम छोड़ा वहां से आप शुरू नहीं कर सकते हैं। आपको वहीं से शुरू करना होगा, जहां महावीर ने शुरू किया। जब भी जमीन पर कोई आदमी धर्म के सत्य को उपलब्ध होगा, उसे वहीं से काम शुरू करना होगा जहां किसी ने शुरू किया। उनके आगे शुरू नहीं कर सकता। धर्म में ट्रेडीशन नहीं होती, धर्म में परंपरा नहीं होती। धर्म-व्यक्ति सत्य है और विज्ञान-समाज सत्य है। समाज सत्य वही हो सकता है जो स्मृति से चलता हो। धर्म-समाज सत्य नहीं हो सकता, क्योंकि वह ज्ञान से चलता है।
स्मरण रखें, स्मृति दूसरों का ज्ञान होती है, और ज्ञान अपना ही ज्ञान होता है। तो विज्ञान स्मृति है और धर्म ज्ञान है। स्मृति से काम नहीं चलेगा।
मैं देखता हूं, बहुत से आश्रमों में गया, बहुत से साधुओं के वहां गया।
वे सब ग्रंथ याद करवाते हैं। वे सब ग्रंथों की पाठशालाएं चलाते हैं। उनके पास जो लोग इकट्ठे होते हैं, वे बिल्कुल शास्त्रों को रट कर बिल्कुल तोते हो जाते हैं। वे उनको दोहराने लगते हैं। वे उनको कहने लगते हैं। उनसे कुछ भी पूछिए, हर चीज का उत्तर तैयार है। जिनके पास एक भी उत्तर नहीं है, वे दूसरों के सब उत्तर इकट्ठे कर लेंगे और देना शुरू कर देंगे।
उससे अहंकार तो तृप्त होता है, लेकिन कोई ज्ञान को उपलब्ध नहीं होता।
तो मैं पहली बात आपको कहूं, ज्ञान स्मृति नहीं है। इसलिए किसी को याद
कर लें, किन्हीं ग्रंथों को, किन्हीं आगमों को रट लें, किन्हीं वेदों को, किन्हीं उपनिषदों को, गीता, कुरानों को याद कर लें, पूरा कंठस्थ कर लें, तो भी कोई मतलब नहीं है। वे केवल आपके बोझ हो जाएंगे, वे आपकी मुक्ति नहीं बन सकते हैं। और आप ऐसे लोगों की तरह होंगे, जो नावों को सिर पर लिए गांवों में घूमते हों, लेकिन जिन्होंने नाव पर कभी यात्रा नहीं की है।
नावों को सिर पर नहीं रखना होता, नाव में यात्रा करनी होती है। शास्त्रों को सिर पर नहीं ढोना होता, उनको चरण बनाना होता है। शास्त्रों को सिर पर नहीं ढोना होता, शास्त्रों को चरण बनाना होता है। जब वे चरण बनते हैं तब आप उनसे चलते हैं। और जब आप उनको सिर पर रख कर नमस्कार करते हैं तो आप उनसे नहीं चलते, वे आपसे चलते हैं। शास्त्र जब स्मृति बन जाती है तो व्यर्थ हो जाता है। और शास्त्र-ज्ञान सिवाय स्मृति के क्या हो सकता है? तो मैं आपको स्मृति के लिए नहीं कह रहा हूं। मैं आपको ज्ञान के लिए कह रहा हूं। और ज्ञान का जन्म बड़े विभिन्न ढंग से होता है। स्मृति संगृहीत की

जाती है, ज्ञान का जन्म होता है। स्मृति इकट्ठी की जाती है, ज्ञान का अविर्भाव होता है। स्मृति बाहर से लाई जाती है, ज्ञान भीतर से आता है।
जो जितना स्मृति को शून्य करेगा, उतना ज्ञान को उपलब्ध होगा। जो जितनी स्मृति को खाली कर देगा, उतना उसके भीतर ज्ञान का जागरण होगा। जैसे कोई कुआं खोदे, तो हम साधारणतया कहते हैं, हमने कुआं खोदा और पानी निकाला। लेकिन क्या कभी आपने खयाल किया, खोद कर कहीं पानी निकलता है? खोदने से कैसे पानी निकलेगा? खोदने से केवल मिट्टी दूर होती है। पानी तो मौजूद होता है, मिट्टी दूर हो जाती है तो दिखने लगता है। खोदने से पानी नहीं निकलता, खोदने से केवल मिट्टी दूर होती है। और अगर पानी न हो, तो लाख खोदिए, पानी नहीं निकलेगा।
इसलिए कभी भूल कर मत किसी से कहिएः हमने खोदा और पानी निकाल लिया। खोदने से पानी नहीं निकलता, खोदने से मिट्टी दूर होती है। और अगर पानी हो, तो पानी के दर्शन हो जाते हैं। ज्ञान खोदना पड़ता है? ज्ञान मौजूद है, केवल मिट्टी की पर्तें जो उसके ऊपर हैं, उनको अलग करनी होती हैं। वे मिट्टी की पर्तें हमारी स्मृति की पर्तें हैं।
अनंत जन्मों में हमने बहुत सी स्मृति इकट्ठी की है। स्मृति की पर्त
की पर्त इकट्ठी होती चली गई है और ज्ञान स्मृति के दबाव में अशुद्ध होता चला गया है। स्मृति की बहुत गहरी पर्तों के कारण, स्मृति और संस्कारों की बहुत गहरी पर्तों के कारण, ज्ञान का प्रकाश बाहर आना बंद हो गया है। अगर स्मृति की सारी पर्तें तोड़ दी जाएं, तो ज्ञान उत्पन्न हो जाएगा। उत्पन्न क्या हो जाएगा, ज्ञान का दर्शन हो जाएगा। ज्ञान मौजूद है। ज्ञान हमारा स्वरूप है, उसे कहीं से लाना नहीं है। बल्कि कुछ और हमारे और उसके बीच में आ गया है, इसलिए अवरोध हो गया है।
तो ज्ञान को लाने का रास्ता बिल्कुल एक अर्थ में नकारात्मक है। जैसे पानी को कुएं से खोदने का रास्ता नकारात्मक है। नकारात्मक इस अर्थ में कि मिट्टी आप अलग करते हैं, पानी को तो कुछ भी नहीं करते। जब आप कुआं खोदते हैं, पानी को तो कुछ भी नहीं करते। करते मिट्टी को कुछ हैं। मिट्टी अलग करते हैं, पानी आता है। वैसे ही ज्ञान का रास्ता एक अर्थ में नकारात्मक है।
ज्ञान को लाने के लिए तो कुछ भी नहीं करते, केवल स्मृति को, संस्कारों को, बोझ को जो चित्त पर है, उसे अलग करते हैं। जब चित्त निर्बोझ हो जाता है, जब चित्त बिल्कुल ही अनकंडीशंड हो जाता है, जब कोई संस्कार और कोई बाहर से आए हुए प्रभाव नहीं रह जाते और चित्त शून्य हो जाता है, तो जैसे किसी ने दर्पण पर धूल पोंछ दी हो। तो धूल तो पोंछी जाती है, दर्पण तो वैसे ही का वैसा है। जब धूल थी तब भी वैसा था, जब धूल नहीं है तब भी वैसा है। शायद दर्पण में कोई भी फर्क नहीं पड़ा, धूल ऊपर थी और ऊपर से अलग हो गई है। दर्पण जैसा था वैसा ही है। लेकिन धूल अलग होने से दर्पण स्पष्ट हो जाता है और तब दर्पण स्वच्छ हो जाता है। और दर्पण में प्रतिबिंब बनने संभव हो जाते हैं। ज्ञान स्मृति की धूल पोंछने से उत्पन्न होता है।
तो जो ज्ञान की साधना में संलग्न हैं, उन्हें शास्त्रों को स्मरण नहीं करना है। जो ज्ञान की साधना में संलग्न हैं, उन्हें जितने शास्त्र भीतर इकट्ठे हो गए हैं, उन सबको पोंछ कर साफ कर देना है। जो ज्ञान की साधना में संलग्न हैं, उन्हें सारी स्मृति से शून्य हो जाना है, ताकि सारी मिट्टी की पर्तें अलग हो जाएं और ज्ञान का आविर्भाव हो जाए।
स्मृति दो रूपों में हमें परेशान करती है। और दो रूपों में हमें बांधती है। साधारणतया अतीत हमारा पूरा हमें स्मृति में घूमता रहता है। अभी आप यहां बैठे हैं, लेकिन बहुत कम होंगे जो यहां बैठे हैं। बहुत होंगे जो कहीं पीछे किसी अतीत में होंगे। बहुत होंगे जो भविष्य में कहीं होंगे। साधारणतया हम वर्तमान में होते ही नहीं। या तो हमारा चित्त अतीत में होता है या भविष्य में होता है। अतीत की स्मृतियों में होता है या भविष्य की कल्पनाओं में होता है। और भविष्य की कल्पनाएं भी अतीत की स्मृतियों की संतान होती हैं। भविष्य की कल्पनाएं अतीत की स्मृतियों की

संतान होती हैं। तो या तो हम अतीत की स्मृतियों में होते हैं या अतीत की स्मृतियों की संतान भविष्य में होते हैं।
अतीत भी मृत है और भविष्य भी जीवित नहीं है। अतीत जा चुका है, भविष्य आया नहीं है। तो हम प्रेतों की तरह हैं, हमारा चित्त प्रेतों की तरह है। हम अतीत में होते हैं या भविष्य में होते हैं--और वर्तमान में नहीं होते। स्मृति और कल्पना हमें घेरे रहती है, और उनके बोझ के कारण ज्ञान का जन्म नहीं हो पाता। जब स्मृति और कल्पना शून्य होती है, तो ज्ञान का जन्म होता है। तो साधना स्मृति को और कल्पना को... और कल्पना स्मृति का ही रूपांतर है, वह स्मृति का ही कल्पित रूप है। स्मृति को और कल्पना के टेंशन को, स्मृति के और कल्पना के तनाव को छोड़ने से व्यक्ति के भीतर आविर्भाव होता है, आविर्भाव होता है ज्ञान का।
तो स्मरण करना है, जिसे ज्ञान को साधना है उसे स्मरण करना है कि वह अतीत की स्मृतियों से मुक्त हो। जब अतीत की स्मृतियां पीछा करें, तो उन्हें नमस्कार करें। और उन्हें कहें कि वह पीछा न करें। और जब अतीत की स्मृतियां आपके साथ हों, तब स्मरणपूर्वक अपने को उनसे अनासक्त करें। विवेकपूर्वक अपने को उनसे मुक्त करें। और विवेकपूर्वक यह ध्यान रखें कि उनकी मूर्च्छा में आप संलग्न तो नहीं हो जाते? अगर सतत इस बात का प्रयास हो, अगर सतत इस बात का संकल्प हो, अगर एकाग्रता से, अगर संलग्नता से इस बात की चेष्टा हो कि मैं अतीत की स्मृतियों में अपने को खोऊंगा नहीं, मैं अपने विवेक को अतीत की स्मृतियों में न दबने दूंगा, जो अतीत गया, वह गया। जो मर गया, वह मर गया। उसे मैं वापस अपने साथ खींचे हुए नहीं चलूंगा। तो आप धीरे- धीरे पाएंगे, अतीत की स्मृतियों की राख विलीन हो जाएगी। आप अतीत से मुक्त हो सकेंगे।
और जो अतीत से मुक्त नहीं है, वह कभी ज्ञान को उपलब्ध नहीं हो सकता। अतीत की स्मृतियों को छोड़ने की साधना करनी होती है। जिस स्थान से उठ गए, वहां से उठ जाएं। और जो बात हो गई, उसे हो ही जाने दें, अब वह चित्त में दुबारा न लौटे। अब उसके दुबारा आगमन को द्वार न दें।
हम तो मृत को घसीटते रहते हैं। जो मुर्दे हैं उनको इकट्ठे किए रहते हैं। हमारा मस्तिष्क मुर्दों से और लाशों से भरा रहता है। कल किसी ने गाली दी थी, वह आज भी हमारा पीछा करती है। परसों किसी ने सम्मान किया था, वह आज भी हमारा पीछा करता है। नरसों किसी ने गले में मालाएं पहनाई थीं, वे मालाएं सूख गईं और मुरझा गईं, लेकिन चित्त उनको अब भी पहने हुए है। अतीत हम पर भार बनता जाता है। वर्तमान का छोटा सा क्षण, छोटी सी चिंगारी अतीत की राख में दब जाती है और खो जाती है।
अतीत की राख को झाड़ देना जरूरी है। जैसे कोई अंगारे पर से राख को झाड़ देता है, वैसे ही चित्त पर से अतीत को झाड़ देना जरूरी है। जो मर गया, वह मर गया। अतीत का अर्थ हैः जो नहीं हो गया, उसे न हो जाने दें। उसे रोकें न। वस्तुतः तो वह मर जाता है। जगत में तो मर जाता है, लेकिन चित्त में बना रहता है। और यही वजह है कि चित्त का संबंध जगत के संगीत से टूट जाता है। जगत में अतीत जिंदा नहीं होता, प्रतिक्षण जगत नया होता चला जाता है। लेकिन मन, मन नया नहीं होता, मन पुराना बना रहता है।
जगत और मन के बीच जो विरोध है, जगत के संगीत से जो मन का स्वर नहीं मिल पाता, उसका कुल एक कारण है। जगत तो प्रतिक्षण नया है और मन प्रतिक्षण पुराना। मन इसलिए कभी भी जगत के संगीत में एकसार नहीं हो पाता। यह जो विराट सत्य चारों तरफ व्याप्त है, ये चांद-तारे, और फूल, और ये लहरें, और हवाएं--इनके साथ मन एक नहीं हो पाता। इनके साथ जब मन एक होता है तो जो समस्वरता पैदा होती है उसी से व्यक्ति परमात्मा से, परम सत्य से संबंधित होता है।
एक साधु के पास एक युवक गया था। एक पहाड़ी झरने के करीब उस साधु का आश्रम था। उस युवक ने बहुत आश्रमों में पर्यटन किया था, बहुत यात्राएं की थीं, बहुत तीर्थों में गया था। आखिर वह उस साधु के पास गया और उसने कहाः मैं थक गया हूं। मैं बहुत हैरान और परेशान हो गया हूं। मुझे कोई रास्ता नहीं मिलता, मैं क्या करूं कि परमात्मा में प्रवेश हो जाए? उस साधु ने

कहाः सच ही तुम प्रवेश करना चाहते हो? सच ही क्या तुम परमात्मा में प्रवेश करना चाहते हो? तो हमारे निकट ही द्वार है, हमारे आश्रम के पीछे ही द्वार है। वह युवक बहुत हैरान हुआ।
वह जमीन के बहुत हिस्सों में घूम आया था, कोई इतना पागल आदमी नहीं मिला था। एक से एक पागल साधु मिले थे, इतना पागल आदमी कोई नहीं मिला था जिसने कहा हो अपने आश्रम के पीछे ही दरवाजा है जहां से भगवान में जाया जा सकता है। उसे विश्वास नहीं पड़ा, उसने समझा कि और, उसने समझा किसी पागल से मिलना हो गया है।
लेकिन वह साधु बड़े विश्वास से कह रहा था। वह कह रहा था, आओ मेरे साथ, पीछे से दरवाजा है, वहां से निकल जाओ। वह अविश्वास से भरा हुआ युवक उसके पीछे गया, वहां तो कोई दरवाजा नहीं था। वहां एक पहाड़ी झरना था। उस साधु ने कहाः यह दरवाजा है, इसमें से प्रवेश कर जाओ।
वह युवक बोलाः आप पागल हैं, यह पहाड़ी झरना है, इसमें दरवाजा कहां है?
और मैं प्रवेश कैसे कर जाऊं? उस साधु ने कहाः इस झरने के पास बैठ जाओ और जब झरने के साथ तुम्हारी आत्मलीनता हो जाए तो समझना भगवान में प्रवेश हो रहा है। उस साधु ने कहाः जब झरने में और तुम में फासला न रह जाए और तुम्हें समझ न पड़े कि तुम झरना हो कि झरने से अलग हो। और जब तुम्हें बोध न रहे यह कि झरने को तुम देख रहे हो।...
तो ज्ञान की साधना अतीत का विसर्जन है। अतीत को मर जाने दें स्मरणपूर्वक, विवेकपूर्वक, मनःपूर्वक। इस बात को देखते रहें, इस बात के प्रति सजग हों कि अतीत तो नहीं पकड़ता है? अतीत मेरे ऊपर बोझ तो नहीं बनता है?
एक साधु को एक व्यक्ति एक दिन सुबह आया और कुछ गालियां दे गया। इतने गुस्से में भी आ गया कि उसने उस साधु के मुंह पर थूक दिया। उस साधु ने अपने कपड़े से थूक को पोंछ लिया और उस युवक को कहाः और कुछ कहना है? युवक हैरान हुआ। उसने कहाः आप क्या सोचते हैं, मैंने कुछ कहा है? उस साधु के शिष्य भी बहुत क्रुद्ध हुए, और उन्होंने कहाः आप यह क्या कर रहे हैं? इसने थूका, आपका अपमान किया। उस साधु ने कहाः इसने थूका है, ऐसा मैं नहीं देखता, इसने कुछ कहा। यह इतने क्रोध में है कि शब्द नहीं कह सकते थे, तो थूक कर कहा। शब्द कहने में असमर्थ थे, तो इसने थूक कर जाहिर किया। जो यह नहीं कह सकता था, उसके लिए कोई क्रिया थी, उसके लिए कोई इशारा किया। इसलिए मैं इससे पूछता हूं, और कुछ कहना है? और वह युवक और क्या कहता? वह आया था वैसे ही चला गया। लेकिन रात्रि उसे पश्चात्ताप हुआ। रात्रि उसे दुख हुआ कि उसने भूल की है, और एक ऐसे व्यक्ति के ऊपर उसने अपमानजनक व्यवहार किया है जिसने उसके थूकने को भी बातचीत समझा।
वह दूसरे दिन सुबह क्षमा मांगने गया। उसने साधु से कहाः मुझे क्षमा करें, मैं कल आपके ऊपर, आपके साथ बहुत बुरा व्यवहार कर गया हूं। वह साधु बोलाः उसके लिए क्षमा? हम उसके लिए क्रुद्ध ही नहीं हुए। और मैं तुमसे कहता हूं कि तुमने मेरे ऊपर थूका, यह उतनी बुरी बात नहीं है, जितना तुम चौबीस घंटे फिर उस पर विचार करते रहे हो। उस साधु ने कहाः तुमने मेरे ऊपर थूका यह बहुत बुरी बात नहीं है, क्योंकि मैंने उसको तभी पोंछ दिया। हमने देर नहीं की। तुमने तो थूका, हमने पोंछ दिया। उस साधु ने कहाः हमने देर नहीं की। तुमने थूका, हमने पोंछ दिया। क्योंकि जो काम करना है, तत्काल ही कर लेना चाहिए। लेकिन फिर चौबीस घंटे तुम उसे सोचते रहे, यह दुख की बात है। हमने पोंछा था, तुम भी पोंछ देते। तुमने थूका था, हमने पोंछ दिया। थूका हुआ हमने पोंछ दिया, तुम भी यह खयाल पोंछ देते कि थूका है।
उस युवक को शायद ही समझ में आया होगा। शायद ही खयाल में पड़ी होगी, वह साधु क्या कहता है। लेकिन साधु ने बड़ी गहरी और बड़ी महत्व की बात कही। काश हम पोंछ सकें, काश हम पोंछ सकें जो हो गया है, तो हमारा उससे संबंध होगा--जो है। जो व्यतीत हो गया है अगर हम उसे पोंछ सकें, तो उससे हमारा संबंध होगा जो वर्तमान है। और सत्य केवल वर्तमान में है। सत्य अतीत में नहीं है। और सत्य भविष्य में नहीं है। सत्य वर्तमान में है।

सत्य का अर्थ हैः जो सदा है और कभी नहीं नहीं होगा। अतीत तो नहीं हो जाता है। भविष्य अभी आया नहीं है। इसलिए सत्य न तो भविष्य में हो सकता है और न अतीत में हो सकता है। सत्य तो सदा है। इस अर्थ में सत्य को हम सनातन कहते हैं। सनातन का अर्थ है कि न वह कभी अतीत होता है, न वह कभी भविष्य होता है, वह नित्य वर्तमान है। वह इटर्नल है, वह शाश्वत है, सनातन है।
तो सत्य के शाश्वत और सनातन में जिसको प्रवेश करना है, उसे मन के इन काल्पनिक अतीत के घेरों को और भविष्य के घेरों को छोड़ देना होगा। जो अतीत को छोड़ेगा, वह हैरान होगा। भविष्य अपने आप उसी अनुपात में छूटता चला जाता है। जिस अनुपात में अतीत का बोझ कम होता है, उसी अनुपात में भविष्य अपने आप छूटता चला जाता है।
अतीत शून्य हो जाए, भविष्य शून्य हो जाता है और वर्तमान पूर्ण हो जाता है। उस घड़ी जब चित्त अतीत और भविष्य की राख से मुक्त होता है, मिट्टी की पर्तें दूर होती हैं, जलस्रोतों का जन्म होता है। उस वक्त ज्ञान का अवतरण होता है, या ज्ञान का उर्ध्वगमन होता है, उस वक्त ज्ञान का बोध होता है। उस ज्ञान को पाए बिना कोई व्यक्ति पूरे अर्थों में मनुष्य नहीं है। उस ज्ञान को पाए बिना कोई व्यक्ति पूरे अर्थों में जीवित नहीं है।
तो ज्ञान को तो नकारात्मक रूप से साधना होता है। ज्ञान को जो पाने का रास्ता है, वह निगेटिव है। निगेटिव इस अर्थों में कि कुछ हटाना पड़ता है और ज्ञान पैदा हो जाता है। जैसे मैंने कहा, दर्पण से धूल हटानी होती है और दर्पण स्वच्छ हो जाता है। लेकिन ज्ञान, मैंने कहा, अधूरा है, अकेला ज्ञान अधूरा है।
एक और बात भी साधनी होती है और वह प्रेम है। और प्रेम की साधना पॉजिटिव होती है, विधायक होती है। ज्ञान की साधना नकारात्मक होती है और प्रेम की साधना विधायक होती है, पाजिटिव होती है।
ज्ञान ऐसे साधना होता है जैसे दर्पण से कोई धूल हटाए। और प्रेम ऐसे साधना होता है जैसे बीज में से अंकुर फूटे। हमने एक बीज डाल दिया मिट्टी में, अगर मिट्टी को हटा देंगे, तो बीज निकल आएगा, पौधा नहीं बन पाएगा। मिट्टी नहीं हटानी पड़ेगी, बल्कि बीज को, अपनी शक्ति को, अपनी ऊर्जा को अंकुर के रूप में प्रकट करना होगा। बीज अंकुर के रूप में फूटेगा और मिट्टी के ऊपर आएगा और फिर फूल बनेगा। तो बीज को, अपनी ऊर्जा को फेंकना होगा, तब वह अंकुरित होगा। दर्पण को अपने लिए विकसित नहीं करना होगा, ताकि धूल झड़ जाए। धूल झड़ जाएगी तो दर्पण ठीक है। लेकिन बीज को कुछ हटाना नहीं है, बीज को अपने भीतर से किसी चीज को जन्माना है।
प्रेम बीज की तरह पैदा होता है और ज्ञान दर्पण से धूल हट जाए ऐसे पैदा होता है। प्रेम का रास्ता पॉजिटिव है, प्रेम का रास्ता विधायक है। प्रेम को अपने भीतर से फेंकना होता है, अपने भीतर की सारी शक्तियों को इकट्ठा करके प्रेम की ऊर्जा को फेंकना होता है। कैसे यह होगा? हम साधारणतया घृणा को फेंकते हैं, वैमनस्य को फेंकते हैं, द्वेष को फेंकते हैं, असत्य को फेंकते हैं, राग को फेंकते हैं, प्रेम को नहीं फेंकते।
एक साधु का मुझे स्मरण आता है। एक सुबह-सुबह साधु अपने आश्रम में है
और किसी व्यक्ति को कहता है कि जाओ, जूतों से और दरवाजे से क्षमा मांग कर आओ। कोई इसे सुनता है और हैरान होता है। वह एक व्यक्ति को समझा रहा है कि जाओ, दरवाजे से और जूतों से क्षमा मांग कर आओ। जो सुन रहा है वह बहुत हैरान होता है। और समझता है, यह क्या पागलपन की बात है, जूतों से, दरवाजे से क्षमा? और तब तो उसे और भी हैरानी होती है, वह व्यक्ति जाता है और दरवाजों से और जूतों से क्षमा मांग कर वापस लौटता है। सुनने वाले व्यक्ति ने साधु को पूछाः यह क्या पागलपन है? क्या जूतों से और दरवाजों से भी क्षमा मांगनी होगी? उस साधु ने कहाः इसने जब दरवाजा खोला, तो क्रोध से खोला। इसने धक्का दिया, उसमें क्रोध था। और इसने जब जूते खोले, तो बड़ा क्रोध था। अगर जूतों और दरवाजों पर क्रोध हो सकता है, तो प्रेम क्यों नहीं हो सकता?
एक कलम ठीक नहीं काम करती, आप उसे क्रोध से पटकते हैं। एक दरवाजा ठीक
से नहीं खुलता, उसे गुस्से से और गाली देकर खोलते हैं। अगर जड़ के प्रति घृणा और क्रोध फेंका जा सकता है, तो प्रेम क्यों नहीं फेंका जा सकता? सवाल

यह नहीं है कि प्रेम दरवाजा स्वीकार करेगा या नहीं, सवाल यह है कि आपने फेंका। सवाल यह नहीं है कि घृणा को और क्रोध को दरवाजे ने समझा या नहीं समझा, दरवाजा क्या समझेगा? लेकिन जब आपने घृणा फेंकी, तब आप छोटे हो गए। और अगर आप प्रेम फेंके तो आप विराट हो जाएंगे।
जो जितनी घृणा फेंकेगा उतना संकुचित और छोटा होता चला जाएगा। जो जितना प्रेम फेंकेगा उतना विराट, उतना विराट, उतना विस्तीर्ण होता चला जाएगा। घृणा के फेंकने के द्वारा अंतिम रूप से अहंकार रह जाएगा, और प्रेम फेंकने के माध्यम से अंतिम रूप से ब्रह्म का साक्षात होगा।
प्रेम विराट करता है और घृणा संकुचित करती है। क्रोध छोटा करता है, अक्रोध बड़ा करता है। और जो-जो पाप कहा है धर्मों ने, वह सब पाप इसीलिए है कि वह आपको संकीर्ण करता, छोटा करता, सिकोड़ता है। और जिन-जिन बातों को पुण्य कहा है, वे पुण्य इसीलिए हैं, वे आपको विस्तीर्ण करती हैं, फैलाती हैं और बड़ा करती हैं। एक घड़ी पर आपका अहंकार बिल्कुल विलीन हो जाता है और प्रभु हो जाते हैं। और जो, जो-जो राग, जो-जो द्वेष आपको संकीर्ण करते हैं और छोटा करते हैं, एक घड़ी पर आप बिल्कुल अकेले रह जाते हैं, बिंदु मात्र।
अकेले अहंकार में रह जाना नरक में होना है। अकेला रह जाना एक मात्र नरक है। अहंकार मात्र शेष रह जाए जिस व्यक्ति के भीतर, वह नरक में हो गया। और जिसका अहंकार परिपूर्ण विसर्जित हो जाए, वह मोक्ष को उपलब्ध हो गया। अहंकार नरक है। और निर-अहंकारिता कि मैं का बिंदु ही विलीन हो जाए। और प्रेम की साधना विधायक है इस अर्थों में, उसे फेंकना होता है। जैसे बीज अपने अंकुर को फेंकता है। सतत रूप से और सजग रूप से अपने चारों तरफ--जड़ के प्रति और जीवन के प्रति। प्रेम का भाव, प्रेम की भावना का सतत-सतत स्मरणपूर्वक विधायक रूप से अपने चारों तरफ प्रेम को फेंकना।
यह हमें खयाल में नहीं आता, हम प्रेम को कैसे फेंकेंगे? यह हमें खयाल में नहीं आता, हम प्रेम को कैसे फेंकेंगे? प्रेम कैसे फेंका जा सकता है? साधारणतया हमें यह दिखाई नहीं पड़ता। लेकिन हम यह खयाल करें, हम क्रोध कैसे फेंकते हैं? हम घृणा कैसे फेंकते हैं? जब हम क्रोध फेंकते हैं, तो क्या होता है?
जब हम क्रोध फेंकते हैं, तो हमारे भीतर केवल क्रोध की आग रह जाती है और
हम मिट जाते हैं। और हमारे भीतर से क्रोध की लपटें उस तरफ फिंकती हैं जिस तरफ क्रोध का केंद्र हो। हमारे भीतर जैसे लपटें बह रही हों और उस व्यक्ति को अग्निसात कर देना चाहती हों जिसके प्रति क्रोध जा रहा है। क्रोध में हम बिल्कुल ही लपट हो जाते हैं और उस व्यक्ति की तरफ फेंकते हैं। प्रेम को भी लपट की भांति फेंका जा सकता है--उठते-बैठते और चलते, चारों तरफ प्रेम फेंका जा सकता है।
ब्लावट्स्की एक महिला थी। वह भारत थी बहुत दिन। सारी दुनिया में घूमी, लोग हैरान थे। वह जब भी कहीं होती, किसी गाड़ी में, किसी सफर में, तो एक झोले में हाथ डालती और कुछ बाहर फेंकती। लोगों ने पूछाः क्या फेंकती हो? उसने कहाः फूलों के बीज। वह अपने चारों तरफ पूरे जीवन फूलों के बीज फेंकती रही। लोगों ने कहाः बिल्कुल पागल है। रास्ते के किनारे, ट्रेन के किनारे बीज फेंक भी दिए, पता नहीं उनमें से कितने पौधे आएंगे, कितने फूल बनेंगे? ब्लावट्स्की कहतीः यह सवाल नहीं है, मैंने फूल फेंकने की आकांक्षा की, इससे मुझे लाभ हो रहा है। यह सवाल नहीं है कि वे बीज फूल बनेंगे या नहीं, मैंने फूल फेंके। यह भाव ही कि मैंने फूल फेंके मुझे विस्तीर्ण करता है; और यह भाव कि मैंने कांटे डाले मुझे संकीर्ण करता है। कोई न कोई फूल उनमें से पैदा होगा और किसी न किसी को उस खिलते हुए, मुस्कुराते हुए फूल को देख कर आनंद होगा, तो मेरा श्रम सार्थक है।
मैं आपको नहीं कहता आप फूलों के बीज फेंकें, लेकिन फूलों की गंध फेंकी
जा सकती है। अपने चारों तरफ आप प्रेम को विस्तीर्ण कर सकते हैं और फेंक सकते हैं। प्रेम को फेंकने के बहुत रास्ते हो सकते हैं।
परसों रात मैं एक घटना कहता था। बहुत प्राचीन उपनिषदों के समय की घटना है। एक, एक, एक आश्रम में तीन युवक परिपूर्ण शिक्षा लेकर वापस लौटते हैं। वे अंतिम दिन, जब उनकी संपूर्ण शिक्षा पूरी हो गई और उनके गुरु ने

कहाः अब तुम जा सकते हो। उनमें से एक ने पूछाः लेकिन आप कहते थे, अभी कोई एक अंतिम परीक्षा और होनी है। उस गुरु ने कहाः उसकी तुम फिकर न करो, परमात्मा ने चाहा तो वह अंतिम परीक्षा भी हो जाएगी। लेकिन तुम्हारी शिक्षा इस आश्रम से पूरी हुई, अब तुम जा सकते हो।
उन्होंने अपनी चटाइयां लपेटीं, अपने शास्त्र लिए, और सांझ को जब गोधूलि थी और सूरज डूबता था, वे विदा हो गए। उन्होंने गुरु के पैर छुए और वे विदा हुए। रास्ते पर जब कि सूरज करीब-करीब डूबने को है, उन्होंने देखा, एक छोटी सी पगडंडी पर जिसको वे पार करते हैं, बहुत से कांटे पड़े हैं। एक युवक जो आगे था ठिठका, और फिर छलांग लगा कर निकल गया। दूसरा युवक जो उसके पीछे था, वह भी ठिठका, लेकिन पगडंडी को छोड़ कर बगल के खेत से निकल गया। तीसरा युवक भी ठिठका, उसने अपना सामान नीचे रखा, वे कांटे उठा कर बीने और झाड़ी में डाले। और जब वह झाड़ी में डालता ही था, उन तीनों ने हैरान होकर देखा, उस झाड़ी के पीछे से गुरु निकला और उसने कहाः जिसने कांटे बीने हैं वह चला जाए, उसकी शिक्षा पूरी हो गई। लेकिन जिन्होंने कांटे छलांग लगा कर निकल गए हैं वे रुक जाएं, उनकी शिक्षा अभी अधूरी है।
जो दूसरों के रास्तों से कांटे नहीं उठा सकता, उसे ज्ञान मिला हो, उसे प्रेम नहीं मिला। जो दूसरे के रास्ते से कांटे नहीं उठा सका, उसे ज्ञान मिला हो, लेकिन प्रेम नहीं मिला। और जिसे प्रेम नहीं मिला, वह कुछ भी हो पूरे अर्थों में आदमी नहीं हो सकता। अकेला ज्ञान पूरे अर्थों में आदमी नहीं बना सकता है। वह युवक उत्तीर्ण हुआ अंतिम परीक्षा में जिसने कांटे उठा कर डाल दिए। दो युवक रोक लिए गए।
प्रेम विस्तीर्ण करने का मेरा मतलब हैः किसी के रास्ते पर कांटे उठा देना। प्रेम विस्तीर्ण करने का मेरा मतलब हैः किसी के रास्ते पर बन सके तो दो फूल डाल देना। प्रेम विस्तीर्ण करने का मेरा मतलब हैः आपकी भावना में, आपके चित्त में, समस्त जगत के कण-कण के प्रति मैत्री का, और प्रेम का, और करुणा का भाव हो। वह भाव उनको लाभ पहुंचाएगा यह महत्वपूर्ण नहीं है, वह भाव आपको मुक्त करेगा। प्रेम एक मात्र मुक्ति है। और प्रेम में ही व्यक्ति परिपूर्ण रूप से मुक्त होता है; क्योंकि परिपूर्ण रूप से अहंकार-शून्य होता है। तो प्रेम को विधायक रूप से विस्तीर्ण करना है और ज्ञान को नकारात्मक रूप से आविर्भाव करना है।
जब ज्ञान और प्रेम का संयोग बनता है, तो संगीत पैदा होता है। जब ज्ञान
और प्रेम समन्वित होते हैं, तो व्यक्ति सत्य के साथ समन्वय को उपलब्ध होता है। जब ज्ञान और प्रेम समन्वित होते हैं, तो व्यक्ति के भीतर प्रवास होता है ज्ञान का, और व्यक्ति के आचरण में अहिंसा होती है प्रेम की। जब ज्ञान और प्रेम पूर्ण होते हैं, तो व्यक्ति के भीतर आनंद होता है। और बाहर भी वह उस आनंद की सुगंध को विस्तीर्ण करता है।
ज्ञान उसे स्वयं तक पहुंचा देता है और प्रेम उसे समस्त तक पहुंचा देता है। ज्ञान उसे स्वयं के सत्य का उदघाटन करा देता है और प्रेम समस्त के सत्य का उदघाटन करा देता है। ज्ञान की भाषा में कहें, तो वह आत्मा को उपलब्ध हो जाता है। प्रेम की भाषा में कहें, तो वह परमात्मा को उपलब्ध हो जाता है। प्रेम की भाषा परमात्मा को पकड़ती है, ज्ञान की भाषा आत्मा को पकड़ती है। और प्रेम और ज्ञान पूर्ण हों, तो व्यक्ति जानता है आत्मा और परमात्मा भिन्न नहीं हैं, एक ही है। ज्ञान और प्रेम की परिपूर्णता में व्यक्ति चरम सत्य को जानता है, खंडित सत्य को नहीं।
अगर ज्ञान अकेला हो, तो मात्र आत्मा को जानता है; अगर प्रेम भी हो, तो समस्त को जानता है। अगर ज्ञान अकेला हो, तो स्व को जानता है; अगर ज्ञान और प्रेम हो, तो वह सर्वज्ञ हो जाता है, सबको जानता है। ज्ञान स्वयं के द्वार खोलता है, प्रेम सबके द्वार खोल देता है। ज्ञान और प्रेम की समग्र अखंड साधना को मैं कहता हूं। ज्ञान और प्रेम के रास्ते अलग नहीं हैं, अखंड हैं। उस अखंड साधना को जो साधता है वह स्वयं अखंड को उपलब्ध हो जाता है।
ये थोड़ी सी बातें मैंने आपसे कहीं। आपके जीवन में ज्ञान का प्रकाश हो
और प्रेम की सुगंध हो, यह कामना करता हूं। आपके जीवन में ज्ञान की ज्योति

हो और प्रेम का आनंद हो, इसकी कामना करता हूं। आप ज्ञान से भरें और आपके चारों तरफ प्रेम प्रवाहित हो, यह कामना करता हूं।

मेरी इन बातों को इतने प्रेम से सुना है, इतनी शांति से सुना है, उसके लिए बहुत-बहुत अनुगृहीत हूं। अंत में चाहे मेरे ज्ञान को अस्वीकार कर दें, मेरे प्रेम को स्वीकार करें।

विज्ञान, धर्म और कला
दसवां प्रवचन

धर्म को वैज्ञानिकता देनी जरूरी है

मेरे प्रिय आत्मन्!
मैं छोटी सी कहानी से अपनी बात शुरू करना चाहूंगा।
एक अमावस की रात्रि में एक अंधा मित्र अपने किसी मित्र के घर मेहमान था। आधी रात ही उसे वापस विदा होना था। जैसे ही वह घर से विदा होने लगा, उसके मित्रों ने कहा कि साथ में लालटेन लेते जाएं तो अच्छा होगा। रात बहुत अंधेरी है और आपके पास आंखें भी नहीं हैं। उस अंधे आदमी ने हंस कर कहा कि मेरे हाथ में प्रकाश का क्या अर्थ हो सकता है? मैं अंधा हूं, मुझे रात और दिन बराबर हैं। मुझे दिन का सूरज भी वैसा है, रात की अमावस भी वैसी है। मेरे हाथ में प्रकाश का कोई भी अर्थ नहीं है। लेकिन मित्र का परिवार मानने को राजी न हुआ। और उन्होंने कहा कि तुम्हें तो कोई फर्क नहीं पड़ेगा, लेकिन तुम्हारे हाथ में प्रकाश देख कर दूसरे लोग अंधेरे में तुमसे टकराने से बच जाएंगे, इसलिए प्रकाश लेते जाओ। यह तर्क ठीक मालूम हुआ और वह अंधा आदमी हाथ में लालटेन लेकर विदा हुआ। लेकिन दो सौ कदम भी नहीं जा पाया था कि कोई उससे टकरा गया। वह बहुत हैरान हुआ, और हंसने लगा, और उसने कहा कि मैं समझता था कि वह तर्क गलत है, आखिर वह बात ठीक ही हो गई। दूसरी तरफ जो आदमी था, उससे कहा कि मेरे भाई, क्या तुम्हें दिखाई नहीं पड़ता कि मेरे हाथ में लालटेन है? तुम भी क्या अंधे हो? उस टकराने वाले आदमी ने कहाः मैं तो अंधा नहीं हूं, लेकिन आपके हाथ की लालटेन बुझ गई है।
अंधे आदमी के हाथ में लालटेन हो, तो यह पता चलना कठिन है कि वह कब बुझ
गई है? लेकिन अंधे आदमी को भी एक बात पता चल जाती है कि कोई उससे टकरा गया है।
मनुष्यता मुझे इससे भी ज्यादा अंधी मालूम पड़ती है। हम रोज टकराते हैं, लेकिन हमें यह पता नहीं चलता कि हमारे हाथ का प्रकाश बुझ गया होगा। अंधे हम हैं, यह तो मनुष्य-जाति का पूरा इतिहास कहेगा कि हमारे पास जैसे आंखें नहीं हैं। क्योंकि हम उन्हीं गड्ढों में रोज गिर जाते हैं जिनमें कल भी गिरे थे, और परसों भी, और पीछे भी, और पीछे भी। अंधा होना तो जैसे मनुष्य-जाति का लक्षण माना जा सकता है। लेकिन हमारे हाथ में कुछ लोग प्रकाश भी दे जाते हैं--कोई बुद्ध, कोई महावीर, कोई कृष्ण, कोई क्राइस्ट। इस आशा में कि भला हम अंधे हों, लेकिन कोई हमसे न टकराएगा और प्रकाश दिखाई पड़ता रहेगा। लेकिन रोज हम टकराते हैं, फिर भी हमें यह खयाल पैदा नहीं होता कि हाथ का प्रकाश कहीं बुझ तो नहीं गया है?
इस कहानी से इसलिए मैं बात शुरू करना चाहता हूं कि मेरे देखे आदमी के हाथ का प्रकाश बहुत दिन हुए बुझ गया है। और हम बुझे हुए दीये लेकर जीवन में चल रहे हैं। बुझे हुए दीये दीयों के न होने से भी खतरनाक सिद्ध होते हैं। क्योंकि बुझे दीये जिसके हाथ में होते हैं उसे यह खयाल होता है कि मेरे हाथ में प्रकाश है। जिसके हाथ में कोई प्रकाश नहीं है, कोई दीया नहीं है वह सम्हल कर चलता है; यह सोच कर कि मेरे हाथ में प्रकाश नहीं, रास्ता अंधेरा है और मैं अंधा हूं। लेकिन हमारे हाथ में बुझे हुए दीये हैं। और उन्हीं दीयों को हम अगर जलते हुए दीये समझ रहे हों, तो आदमी का भविष्य बहुत खतरनाक है।
मनुष्य के हाथ में धर्म के नाम पर संप्रदायों के बुझे, बुझे दीयों के अतिरिक्त और कुछ भी नहीं है। धर्म के नाम पर मनुष्य के हाथ में बुझी हुई किताबों के अतिरिक्त और कुछ भी नहीं है। धर्म के नाम पर परमात्मा तो बिल्कुल नहीं है। लेकिन पुरोहित जरूर हैं, मंदिर हैं, प्रार्थनाएं हैं, और सब बुझी हुईं, सब राख, उनमें कोई रोशनी नहीं, कोई प्रकाश नहीं है।
यह मैं इसलिए कह रहा हूं कि अगर मंदिरों में प्रकाश होता और अगर हमारी प्रार्थनाएं जीवंत होतीं, और जली हुई होतीं, तो पृथ्वी की जैसी स्थिति बन गई है नरक जैसी, वैसी बननी असंभव थी। और आश्चर्यों का आश्चर्य तो यह है कि पृथ्वी की इस नरक जैसी स्थिति बनाने में जिन्हें हम धर्म कहते हैं,

उन्होंने ही सबसे अग्रणी हाथ बंटाया। वे ही प्रमुख हैं। हिंदुओं ने, मुसलमानों ने, ईसाईयों ने, जैनों ने, बौद्धों ने मनुष्य-जाति की जो स्थिति कर दी है, वह घबड़ाने वाली है। और हमें आशा थी इनसे प्रकाश पाने की और परिणाम उलटे हुए हैं।
आदमी को आदमी से लड़ाने में, धर्मों ने जो काम किया है, वह अधार्मिक और नास्तिक लोगों ने कभी भी नहीं किया। सोचा जा सकता था कि नास्तिक लोग, अधार्मिक लोग, भौतिकवादी, मैटीरियलिस्ट कह कर जिन्हें धार्मिक लोग गाली देते हैं, उन लोगों ने आदमी को विभाजित किया होता--क्षम्य थी यह बात। लेकिन जो लोग परमात्मा को, प्रेम को और प्रार्थना को दिन-रात स्मरण करते हैं, उन लोगों ने मनुष्य-जाति को खंडित-खंडित किया और विभाजित किया है। और उन्होंने मनुष्य-जाति के साथ इतना अनाचार फैलाया, इतना व्यभिचार, इतनी हत्याएं, इतना खून कि अगर हम सारे इतिहास को उठा कर देखेंगे, तो धर्म के नाम पर जो हुआ है, वह अगर धर्म समझा जाए तो फिर अधर्म किसे समझा जाए यह कहना कठिन हो जाएगा।
धर्म के संबंध में कुछ भी समझने के पहले, इसके पहले कि मैं कुछ कहूं,
यह कह देना जरूरी है कि धर्मों को मैं धर्म नहीं कहता हूं। रिलिजंस को मैं रिलीजन नहीं कहता हूं।
धर्मों ने धर्म की हत्या की है। और आज अगर धर्म नहीं है, और आदमी के हाथ में बुझा हुआ दीया है, तो इस दीये को बुझाने वाले लोग न तो राजनीतिज्ञ हैं, न नास्तिक हैं, न वैज्ञानिक हैं, न भौतिकवादी हैं। इस दीये को बुझाने वाले लोग तथाकथित धार्मिक लोग ही हैं। और इसीलिए यह दिखाई भी हमें नहीं पड़ता, क्योंकि जिनके हाथ में हमने समझा हो कि सुरक्षित होगा दीया, अगर वे ही बुझाने वाले सिद्ध हो जाएं तो पता लगाना बहुत कठिन हो जाता है। यह पता लगाना कठिन हो जाता है कि किन्होंने मनुष्य के जीवन से प्रकाश को, आनंद को, बुद्धिमत्ता को, जीवन की ज्योति को, उद्देश्य को सब कुछ किसने छीन लिया। जैसे ही धर्म संगठित होता है, वैसे ही घातक हो जाता है। जैसे ही धर्म संप्रदाय बनता है, वैसे ही अधार्मिक हो जाता है। असल में कोई भी संगठन धर्म का नहीं हो सकता, कोई आर्गनाइजेशन नहीं हो सकता। धर्म कोई संगठना नहीं है, धर्म साधना है। संगठन होता है भीड़ का, समूह का। और साधना होती है अकेले की, एकांत की।
धर्म मूलतः एकांत की घटना है। मनुष्य जो अपने एकांत में स्वयं के साथ करता है, वही भीड़ से, समूह से, दूसरे से धर्म का कोई संबंध नहीं। और जैसे ही धर्म संगठित होता है, वैसे ही धर्म राजनीति बन जाता है। इस्लाम और हिंदू, और जैन, और ईसाई सब राजनीतियों के नाम हैं, धर्म का इनसे कोई भी संबंध नहीं। लेकिन इन्हें जब तक हम धर्म कहते रहेंगे, तब तक जो धर्म है उसे खोजना कठिन हो जाता है। क्योंकि जब तक हमें यह खयाल है कि मनुष्य-जाति को तोड़ने वाले संगठन धर्म हो सकते हैं, तब तक हम वास्तविक धर्म की तरफ आंखें भी नहीं उठा सकते।
धर्म एक ही हो सकता है। सत्य एक ही हो सकता है। असत्य अनेक हो सकते हैं। बीमारियां अनेक हो सकती हैं, स्वास्थ्य अनेक प्रकार का नहीं होता है। हम सब बीमार हो जाएं, तो अलग-अलग ढंग से बीमार हो जाएंगे। और हम सब स्वस्थ्य हो जाएं, तो स्वास्थ्य अलग-अलग प्रकार का नहीं होता, स्वास्थ्य एक ही है। एक ही जैसा है। असत्य अनेक हो सकते हैं। सत्य अनेक नहीं हो सकता। अधर्म अनेक हो सकते हैं, धर्म अनेक नहीं हो सकता है। और जब तक हमें खयाल है कि धर्म अनेक हैं, तब तक धर्म का जन्म असंभव है।
हम कभी सोच भी नहीं सकते कि हिंदुओं की केमिस्ट्री अलग और मुसलमानों
की केमेस्ट्री अलग हो सकती है। हम सोच भी नहीं सकते कि पश्चिम की फिजिक्स अलग और पूरब की फिजिक्स अलग हो सकती है। हम सोच भी नहीं सकते कि गोरे लोगों की गणित अलग और काले लोगों की गणित अलग हो सकती है। अगर पदार्थ के नियम युनिवर्सल और सार्वभौम हैं और एक ही हैं, अगर विज्ञान एक ही है तो आत्मा के नियम भी अलग-अलग कैसे हो सकते हैं?
आत्मा का नियम भी सार्वभौम होगा और एक ही होगा।

लेकिन धर्मों के कारण उस एक धर्म का विकास मनुष्य नहीं कर पा रहा है। क्योंकि उस एक धर्म के विकास में, उस युनिवर्सल रिलीजन के विकास में, उस एक वैज्ञानिक धर्म के विकास में, प्रत्येक धर्म के नाम से खड़े हुए व्यवसायों के विनाश हो जाने की संभावना है। उनको विदा हो जाना पड़ेगा। और वे कोई भी विदा नहीं होना चाहते हैं।
मनुष्य का उन्होंने बहुत शोषण किया है। और उस शोषण से वह कोई भी अपने हाथ अलग नहीं खींच लेना चाहते हैं। धर्मों ने मिल कर इस भांति जगत में अधर्म को फैलने की सुविधा दे दी है, क्योंकि जो चीज मनुष्य को मनुष्य से तोड़ देती हो, वह चीज मनुष्य को परमात्मा से जोड़ने वाली नहीं हो सकती।
मैंने सुना है, एक रात एक काले आदमी ने एक चर्च के द्वार को खटखटाया।
द्वार खुला और पुरोहित बाहर आया। उसे खयाल भी न था कि कोई काला आदमी होगा।
क्योंकि वह चर्च श्वेत लोगों का चर्च था, सफेद लोगों का चर्च था।
मंदिर भी अलग-अलग लोगों के अलग-अलग हैं। इससे ज्यादा हंसने वाली बात
भी शायद पृथ्वी पर कभी घटित नहीं हो सकती।
देखा, काला आदमी द्वार पर खड़ा है। पुराने दिन होते तो वह कहता, शूद्र
हट यहां से, ये सीढ़ियां अपवित्र हो गईं तेरे होने से। और पुराने दिन होते तो शायद उसकी गर्दन काट दी जाती या उसके कानों में सीसा पिघला कर भर दिया जाता। लेकिन जमाने बदल गए हैं, लेकिन आदमी का दिल नहीं बदला। उस पुरोहित ने मन में सोचा, यह यहां कैसे आ गया? अपवित्र हो गईं सीढ़ियां। लेकिन आज इतने जोर से इस बात को नहीं कहा जा सकता, तो उसने धीरे से कहाः मेरे मित्र, कैसे आए हो? उस काले आदमी ने कहाः प्रभु के दर्शन करने हैं मुझे। मुझे भीतर आने दें, द्वार खोलें। मैं भगवान के दर्शन को प्यासा हो उठा हूं। द्वार खोलें और मुझे भीतर आने दें। उस पुरोहित ने दोनों हाथ रोक कर, वह द्वार पर खड़ा हो गया और उसने कहाः मेरे मित्र जरूर आने दूंगा, लेकिन जब तक मन पवित्र न हो जाए। और जब तक मन शांत न हो जाए। और जब तक मन परिपूर्ण रूप से पाप से मुक्त न हो जाए, तब तक परमात्मा के कोई दर्शन कैसे हो सकते हैं? तू पहले जा और मन को पाप से मुक्त कर और फिर आना। तो जरूर भगवान के दर्शन के लिए द्वार तेरे लिए खुले मिलेंगे।
वह काला आदमी वापस लौट गया। उस पुरोहित ने सोचा कि न होगी यह शर्त पूरी, न यह होगा पाप से मुक्त, न दुबारा यह मंदिर में आएगा, न इसके लिए द्वार खोलने की जरूरत पड़ेगी।
एक वर्ष बीत गया, वह आदमी आया भी नहीं। पुरोहित निश्चित हो गया। निश्चित हो गया कि शर्त काम कर गई है। वह आदमी अब आने का नहीं। लेकिन एक दिन सुबह-सुबह वह आता हुआ दिखाई पड़ा। पुरोहित डरा, लेकिन नहीं, वह भूल में था, वह आदमी चर्च के द्वार तक आया, लेकिन उसने चर्च की तरफ आंख भी न उठाई। और वह किसी दूसरे रास्ते पर ही आगे बढ़ गया। पुरोहित उसे देख रहा था डरा हुआ कि कहीं वह मंदिर में तो नहीं आता है। लेकिन गौर से देखने पर उसे दिखाई पड़ा कि वह आदमी तो प्रतीत होता है बदल गया। उसकी आंखों में कोई और ही शांति आ गई थी। उसके पैरों में कोई और ही धीरज दिखाई पड़ता था। उसके आस-पास कोई हवा ही बदली हुई मालूम होती थी। वह उठा और उस आदमी के पीछे दौड़ा और उसे रोका, और कहा कि मेरे मित्र, तुम आए नहीं?
वह काला आदमी हंसने लगा, उसने कहाः मैं तो आता था, और एक वर्ष तक मैंने यही प्रार्थना की, यही निरंतर भगवान से मांग की सुबह से सांझ मेरे आंसू बहते रहे और रात मैंने सपनों में भी वही किया और दिन भी वही, सारे मन को मैंने शांत करने की कोशिश की, और पाप से मुक्त होने की कोशिश की, और रोज-रोज मेरे कदम आगे बढ़ते गए। और मुझे लगता था, एक दिन वह सौभाग्य आ जाएगा कि मैं मंदिर प्रवेश का अधिकारी हो जाऊंगा। कल रात मुझे ऐसा लगा कि आ गई वह घड़ी, कल मन इतना शांत था, इतना पवित्र था, इतनी प्रार्थना से भरा था कि मैंने सोचा कल सुबह सूरज उगते ही मैं मंदिर के द्वार चला जाऊंगा। लेकिन रात सब गड़बड़ हो गया। रात नींद में मुझे भगवान दिखाई पड़े और उन्होंने कहाः तू किसलिए प्रार्थनाएं कर रहा है? और किसलिए तपश्चर्याएं कर रहा है? और किसलिए रो रहा है? और किसलिए इतना प्यासा है? क्या चाहता है? तो मैंने कहाः और कुछ भी नहीं, वह हमारे जो गांव का मंदिर है, वह जो चर्च है, उसमें

प्रवेश चाहता हूं। तो वे भगवान उदास खड़े हो गए। और उन्होंने कहाः यह खयाल तू छोड़ दे। दस साल से मैं खुद ही उस मंदिर में जाने की कोशिश करता हूं, लेकिन वह पुरोहित मुझे भीतर प्रवेश नहीं करने देता। वह मुझे ही भीतर नहीं आने देता चर्च का पादरी, तो तुझे कैसे आने देगा? तू यह खयाल भूल जा। और कोई वरदान मांगना हो तो मांग ले, यह वरदान मेरे हाथ में नहीं है।
मंदिर पुरोहितों के हाथ में है, भगवान के हाथ में नहीं है।
और यह किसी एक मंदिर के बाबत बात होती तो ठीक भी था, यह सभी मंदिरों के बाबत बात है। और यह दस साल की ही बात होती, तो भी ठीक है, यह मनुष्य के दस हजार साल के पूरे के पूरे इतिहास की बात है कि भगवान किसी मंदिर में प्रवेश नहीं कर सका और कर भी नहीं सकेगा।
क्योंकि जो मंदिर सभी मनुष्यों के लिए ही मंदिर नहीं बन पाया अभी, वह परमात्मा के प्रवेश का स्थान नहीं हो सकता। जो मंदिर सीमाएं मानता है, वह मंदिर असीम के लिए द्वार नहीं हो सकता है। जो मंदिर व्यवसाय है, वह प्रेम और प्रार्थना का स्थल नहीं हो सकता है। जहां पुरोहित है, वहां परमात्मा की कोई भी संभावना नहीं रह जाती। क्योंकि दो के बीच प्रेम में तीसरे की कोई भी जगह नहीं है।
आदमी और परमात्मा के बीच में किसी एजेंसी की, किसी पुरोहित की कोई भी जगह नहीं है। दो के प्रेम के बीच में तीसरे के लिए कोई मौका नहीं है। प्रार्थना प्रेम की चरम उत्कृष्ट अवस्था है, वहां भी किसी के बीच में होने की कोई जरूरत नहीं है।
लेकिन पुरोहित बीच में खड़ा है। संगठन बीच में खड़े हैं। शास्त्र बीच में खड़े हैं। शब्द और सिद्धांत बीच में खड़े हैं। और वह आदमी को उससे भी नहीं मिलने देते जिससे मिले बिना कोई भी आदमी के हाथ में कभी भी प्रकाश नहीं हो सकता है। और किसी भी आदमी के प्राणों में कभी प्रेम नहीं हो सकता है। और किसी आदमी की श्वासों में कभी आनंद नहीं हो सकता है।
धर्म के नाम पर धर्मों ने ही मनुष्य के साथ, मनुष्य के जीवन के साथ ऐसा खिलवाड़ किया है।
इसलिए मैं कहना चाहूंगा कि जब तक हम मनुष्य-जाति को धर्मों से मुक्त नहीं कर लेते, तब तक हम मनुष्य को धार्मिक बनाने में भी समर्थ नहीं हो सकते। हिंदू को विदा हो जाना चाहिए, और मुसलमान को भी, और ईसाई को भी, ताकि आदमी धार्मिक हो सके। जब तक धर्मों की भीड़ है तब तक धार्मिक होने की कोई संभावना नहीं। क्या यह संभव हो सकता है?
यह आज तक संभव नहीं हो पाया है। क्योंकि कुछ बहुत तरकीबें, कुछ गहरे सूत्रों पर आज तक आदमी को बांधने की कोशिश की गई है। और कुछ ऐसे जाल को फैलाया गया है कि हमें दिखाई भी नहीं पड़ सकता कि ये चीजें विदा हो जानी चाहिए। और जब हमें अपनी जंजीरें ही, अपनी सुरक्षा मालूम पड़ने लगती हों, तो फिर उनसे मुक्त होना असंभव हो जाता है।
और जो बहुत होशियार गुलाम बनाने वाले लोग हैं, जो आदमी की आत्मा को गुलामी में ढालने वाले कारखाने हैं, उन्होंने हजारों वर्षों में बड़ी चालाकियां सीख ली हैं। वे एक सबसे बड़ी चालाकी यह सीख गए हैं कि वह जंजीरों को ही सुरक्षा बताना शुरू कर दिया है। जो चीज बांध लेती है, वही मुक्त करने वाली--यह समझाना शुरू कर दिया है। उन दो-तीन थोड़ी सी चीजों पर मैं बात जरूर करना चाहूंगा आपसे, जो जंजीरें हैं और जिनको आज तक मुक्ति का उपाय बताया गया है।
पहली जंजीर है, श्रद्धा की। हजारों साल से आदमी को यही समझाया गया है
कि श्रद्धा करो, विश्वास करो, विश्वास लाओ, बिलीफ करो। और यह भी कहा गया है कि जो श्रद्धा नहीं करेगा वह भटक जाएगा। और यह भी कहा गया है, जो विश्वास नहीं करेगा उसके जीवन में धर्म हो ही नहीं सकता। विश्वास और धर्म को पर्यायवाची सिद्ध करने की कोशिश की गई है। जो कि सबसे बड़े असत्यों में से एक है, जो आदमी के लिए बोला गया और कहा गया।
धर्म का विश्वास से कोई भी संबंध नहीं है। धर्म का संबंध है विवेक से।
और विवेक और विश्वास से बड़ी शत्रुता किसी चीज में नहीं हो सकती। जो आदमी विश्वास कर लेता है वह आदमी विचार करने में असमर्थ हो जाता है। वह अपने ही

पैरों पर अपने हाथ से कुल्हाड़ी मार रहा है। जो आदमी अंधा होकर कोई बात मान लेता है, वह आदमी जानने की यात्रा की तरफ उसके पैर बढ़ने बंद हो जाते हैं। लेकिन हमें सब... हिंदू जरूर कहता है, इस बात में विश्वास करो; मुसलमान कहता है कि उस बात में विश्वास करो; जैन कहते हैं किसी और बात में विश्वास करो, उन सबके आपस में झगड़े हैं कि किस बात में विश्वास करो!
लेकिन एक बात पर वे सभी सहमत हैं कि विश्वास करो! दुनिया भर के सारे संप्रदाय एक मामले में सहमत हैं कि विश्वास करो! इस मामले में झगड़े हो सकते हैं कि किस चीज में विश्वास करो। लेकिन विश्वास करने के मामले में उनके कोई झगड़े नहीं हैं। यह उन सबका सीक्रेट फार्मूला है।
यह आदमी के चित्त को बांध लेने की सबकी बुनियादी तरकीब है। क्योंकि
जो आदमी विचार करेगा उस आदमी को गुलाम नहीं बनाया जा सकता और न ही उसका शोषण किया जा सकता है। क्योंकि विचार बुनियादी रूप से ही रिबेलियस है, बुनियादी रूप से ही विद्रोही है। विचार बुनियादी रूप से ही स्वतंत्रता की मांग है। विचार के गहरे से गहरे प्राणों में अंततम स्वतंत्रता की ही पुकार छिपी रहती है।
तो विचार और विवेक कभी भी दास नहीं बनाए जा सकते।
लेकिन आदमी की आंखों पर पट्टी बांधी गई हैं कि तुम विश्वास करो, विचार
मत करो। क्योंकि विचार करोगे तो भटक जाओगे। और हुआ यह है कि जितना हमने विश्वास किया उतने हम भटक गए हैं और जितना हमने कम विचार किया उतने ही हम भटकते जा रहे हैं। और जितना हम भटकते हैं उतने ही वे धर्मगुरु हमें समझाने की कोशिश करते हैं कि देखो विश्वास कम किया इसलिए तुम भटकते जा रहे हो। एक विसियस सर्किल पैदा हो गया है। हम विश्वास करते हैं और भटकते हैं। हम भटकते हैं और वे चिल्लाते हैं कि देखो भटक रहे हो, विश्वास कम करते हो, और विश्वास करो। हम और विश्वास करते हैं, और भटकते जाते हैं।
विश्वास भटकाएगा ही, क्योंकि विश्वास अंधे होने की सलाह है। वह इस बात की सलाह है कि तुम अपनी आंख से मत देखना, दूसरे की आंखों से देखना। मैंने सुना है, एक छोटे से गांव में बंगाल का एक विचारक रहता था। वह एक दिन सुबह एक गांव के तेली की दुकान पर तेल खरीदने गया था। तेल खरीदता था, तब उसने देखा कि तेली की दुकान चलती है। तेली दुकान चलाता है और पीछे उसका कोल्हू चलता है, उसका बैल उसके तेल को पेर रहा है। वह देख कर हैरान हुआ, बैल को कोई भी नहीं चला रहा है, बैल अपने आप ही चलता जा रहा है और कोल्हू चला रहा है। उस विचारक ने उस तेली से पूछा कि मैं बड़ा हैरान हूं, यह बैल बड़ा धार्मिक, बड़ा रिलिजियस मालूम पड़ता है। इसको कोई चला भी नहीं रहा और यह चल भी रहा है, बड़ा विश्वासी मालूम पड़ता है। उस तेली ने कहाः आप देखते नहीं हैं, बैल धार्मिक नहीं है। बैल कोई आदमी नहीं है कि जल्दी से धार्मिक हो जाए, बैल बहुत चालाक और होशियार है; आदमी जैसा नासमझ और मूढ़ नहीं। लेकिन मैंने उसकी आंखों पर पट्टियां बांध दी हैं, आप देखते नहीं। आंख पर पट्टियां बंधी हुई हैं, उसे दिखाई नहीं पड़ता कि कोई चला रहा है कि नहीं चला रहा है। अगर उसको दिखाई पड़ जाए, तो वह आदमी जैसा नहीं है कि दिखाई भी पड़ जाए और फिर भी उलटा मानता चला जाए। वह फौरन खड़ा हो जाएगा, लेकिन उसको दिखाई नहीं पड़ रहा।
उस विचारक ने कहाः लेकिन बैल अगर इतना समझदार है, जैसा तुम कहते हो, तो बैल कभी खड़े होकर परीक्षा भी तो कर सकता है कि कोई पीछे है कि नहीं? उसने कहाः आप समझते नहीं हैं, मैंने बैल के गले में घंटी बांध रखी है, जैसे ही वह खड़ा होता है घंटी बजनी बंद हो जाती है, मैं पीछे चल कर जल्दी से उसको चला देता हूं। उसको खयाल नहीं पैदा हो पाता कि कोई पीछे मौजूद नहीं था। घंटी रुकी और मैं चला देता हूं। जब तक घंटी बजती रहती है मैं समझता हूं बैल चल रहा है। उस विचारक ने कहाः लेकिन मेरे भाई, बैल खड़े होकर भी तो सिर हिला सकता है कि घंटी बजती रहे? उस तेली ने कहाः क्षमा करिए, आप तेल कहीं और से खरीद लेना, अगर बैल ने आपकी बातें सुन लीं तो मैं मुसीबत में पड़ जाऊंगा। आप तेल और कहीं से खरीद लिया करें, ऐसे आदमियों का पास भी आना खतरनाक है। आदमी की आंखों पर भी खूब पट्टियां बांधी गई हैं। और ऐसी बातों को भी पास में आने देने में खतरा समझा गया है, जिनसे कहीं आदमी को खयाल न आ जाए कि

मेरे साथ क्या किया गया है। इसलिए न तो कहा गया है कि आदमी विचार करे, न कहा गया है कि सोचे। कहा गया है कि अंधा होकर शरण आ जाए और सब स्वीकार कर ले। जो कहा जाता है, उस पर जो संदेह करेगा, वह नरक जाएगा। अगर जीवन में स्वर्ग को, मोक्ष को, आनंद को उपलब्ध करना है तो विश्वास ही एकमात्र मार्ग रहा है। और इस झूठी बात ने सारी मनुष्य-जाति के साथ जो, जो अनाचार किया है, सारी मनुष्य-जाति के साथ जो महान पाप किया है, उसका कोई हिसाब नहीं है।
आज जो मनुष्य-जाति इतनी अंधी, मूढ़ और जड़ मालूम हो रही है उसके पीछे इस विश्वास का हाथ है। फिर इसी विश्वास का उपयोग जब दूसरे लोग करने लगे... धर्मगुरुओं ने जब तक किया, तब तक कोई अड़चन न थी। लेकिन जब स्टैलिन और हिटलर और मुसोलिनी करने लगे, तो अड़चन शुरू हो गई। और जब फिल्मी अभिनेता करने लगे तो मुसीबत शुरू हो गई। और जब राजनीतिज्ञ करने लगे तो मुसीबत शुरू हो गई। धीरे-धीरे सीक्रेट सभी को पता चल गया कि आदमी विश्वास करता है उसका कोई भी शोषण किया जा सकता है। उसका किसी भी भांति शोषण किया जा सकता है। जब सबको यह तरकीब पता चल गई, तो कठिनाई शुरू हो गई।
आज सारी दुनिया में विश्वास के आधार पर आदमी के विभिन्न रूप से शोषण किए जा रहे है--धार्मिक, राजनैतिक, आर्थिक, बौद्धिक, सब तरह के शोषण किए जा रहे हैं। यह जो दुनिया इतनी बदतर है, यह विश्वास की वजह से बदतर हो गई है। एक-एक आदमी के भीतर विचार की ऊर्जा और क्रांति जगनी चाहिए। धर्म को विश्वास से छुटकारा दिलाना चाहिए। और धर्म के आधार विचार पर, अत्यंत विचार पर निर्धारित किए जाने चाहिए।
जिस दिन भी विचार पर धर्म खड़ा होगा, उसी दिन दुनिया में बहुत धर्म रहने बंद हो जाएंगे। क्योंकि विचार की अनिवार्य चेष्टा, युनिवर्सल, सार्वभौम हो जाने की... विचार कभी भी लोकल नहीं रह सकता। विज्ञान इसीलिए सार्वभौम हो सका कि उसने विश्वास से छुटकारा पा लिया और विचार पर अपनी आधारशिलाएं रख दीं।
धर्म भी विज्ञान बन जाएगा और परम विज्ञान बन जाएगा, क्योंकि धर्म से ज्यादा श्रेष्ठ और परम विज्ञान और कुछ भी नहीं हो सकता। लेकिन विश्वास से बंधा हुआ यह नहीं होगा। जब तक विश्वास से बंधी थी विज्ञान की परंपराएं, तब तक अल्केमी थी, केमिस्ट्री नहीं थी; तब तक ज्योतिष शास्त्र था, ज्योतिर्विज्ञान नहीं था। और जब तक धर्म भी बंधा है विश्वास से, तब तक धर्म शास्त्र होगा। जिस दिन विचार से धर्म का संबंध होगा, उसी दिन धर्म-विज्ञान का जन्म हो जाएगा। धर्म को लाना है जगत में तो धर्म को वैज्ञानिकता देनी जरूरी है।
और पहला सूत्र हैः विश्वास से मुक्ति और विचार में दीक्षा।
दूसरी एक और बात और फिर मैं अपनी बात पूरी करूंगा। दूसरी एक बात जो अत्यंत अनिवार्य है, वह यह कि अब तक धर्म ने जगत में व्यक्ति पैदा नहीं किए हैं, अनुयायी पैदा किए हैं, फॉलोवर्स पैदा किए हैं। अनुयायी व्यक्ति नहीं होता, इंडिविजुअल नहीं होता। असल में जितना वह अनुयायी बनता है, उतनी ही उसकी इंडिविजुअलिटी खो जाती है, उतना ही उसका व्यक्तित्व खो जाता है, उतना ही वह दीन-हीन सपाट हो जाता है, वह एक भीड़ का हिस्सा हो जाता है। अनुयायी होता है एक भीड़, और मनुष्य की गरिमा उपलब्ध होती है व्यक्तित्व की उपलब्धि से, एक निजता, एक इंडिविजुअलिटी की उपलब्धि से।
तो आज तक धर्मों ने विश्वास सिखाया, और साथ में अनुषांगिक रूप से अनुगमन सिखाया कि तुम किसी के पीछे जाओ, तुम किसी के अनुयायी बनो, तुम किसी जैसे बनने की कोशिश करो--राम जैसे बनो, बुद्ध जैसे बनो, गांधी जैसे बनो। यह शिक्षा इतनी विषाक्त, इतनी पाय.जनस है जिसका कोई हिसाब नहीं। क्योंकि जब भी कोई आदमी किसी दूसरे जैसा बनने की कोशिश करेगा, तो दो परिणाम होंगे। एक परिणाम तो यह होगा कि दूसरे जैसा कभी कोई आदमी बन ही नहीं सकता। यह बिल्कुल अस्वाभाविक और असंभव है कि कोई आदमी किसी जैसा बन जाए। और दूसरी घटना यह घटेगी कि जब दूसरे जैसा बनने में सारी शक्ति लगा देगा; तो वह जो बनने को पैदा हुआ था, वह भी नहीं बन सकेगा।
अगर मैं फूलों की बगिया में चला जाऊं और चमेली से कहूं गुलाब हो जा, और गुलाब से कहूं कमल हो जाओ। तो पहली तो बात फूल मेरी बात नहीं सुनेंगे। फूल

आदमियों जैसे नासमझ नहीं होते कि किसी की भी बात सुनने को इकट्ठे हो जाएं। लेकिन हो सकता है कुछ फूल आदमियों की सोहबत में रहते-रहते बिगड़ गए हों। आदमी की सोहबत में रहते-रहते जानवर भी बिगड़ जाते हैं, पौधे भी बिगड़ जाते हैं। हो सकता है फूल बिगड़ गए हों आदमी की बगिया में रहते-रहते और उपदेश सुनने लगे हों, और मेरी बात फूल मान लें, तो उस बगिया में एक भूकंप आ जाएगा, एक अराजकता आ जाएगी, एक केऑस पैदा हो जाएगा। उस बगिया में फिर फूल पैदा नहीं होंगे। क्योंकि गुलाब कभी भी चमेली नहीं बन सकता, चमेली कभी गुलाब नहीं बन सकती। लेकिन अगर गुलाब ने चमेली बनने की कोशिश की, तो गुलाब में फिर गुलाब के फूल भी पैदा नहीं हो सकते। सारी शक्ति चमेली बनने में व्यय हो जाएगी और गुलाब होने की संभावना समाप्त हो जाएगी।
ठीक धर्म प्रत्येक मनुष्य को स्वयं होने की शिक्षा देगा। और यह स्वयं होने की शिक्षा को ही मैं आत्मा की शिक्षा कहता हूं। आज तक आत्मा की शिक्षा झूठी रही, क्योंकि वह अनुगमन की शिक्षा है। और जो आदमी अनुयायी बनता है, वह कभी किसी आत्मा को उपलब्ध नहीं हो सकता।
आत्मा के उपलब्ध होने का मतलब है: मैं उसको खोज लूं और पा लूं जो मेरे भीतर छिपा है। और जो आदमी किसी और जैसे होने की कोशिश में अपने को ढालना शुरू करता है, वह एक नकली आदमी बन जाता है। जो उसके भीतर छिपा है उसकी खोज तो दूर, वह एक अभिनेता...

विज्ञान, धर्म और कला
ग्यारहवां प्रवचन

नया मनुष्य

मेरे प्रिय आत्मन्!
बीसवीं सदी नये मनुष्य की जन्म की सदी है। इस संबंध में थोड़ी सी बात आपसे करना चाहूंगा। इसके पहले कि हम नये मनुष्य के संबंध में कुछ समझें, यह जरूरी होगा कि पुराने मनुष्य को समझ लें। पुराने मनुष्य के कुछ लक्षण थे। पहला लक्षण पुराने मनुष्य का था कि वह विचार से नहीं जी रहा था, विश्वास से जी रहा था। विश्वास से जीना अंधे जीने का ढंग है। माना कि अंधे होने की भी अपनी सुविधाएं हैं। और यह भी माना कि विश्वास के अपने संतोष और अपनी सांत्वनाएं हैं। और यह भी माना कि विश्वास की अपनी शांति और अपना सुख है। लेकिन यदि विचार के बाद शांति मिल सके और संतोष मिल सके, विचार के बाद यदि सांत्वना मिल सके और सुख मिल सके, तो विचार के आनंद का कोई भी मुकाबला विश्वास का सुख नहीं कर सकता है।
सुकरात से किसी ने पूछा था एक दिन सुबह कि तुम एक संतुष्ट सूअर होने
के बजाय असंतुष्ट सुकरात होना पसंद करोगे या असंतुष्ट सुकरात होने के बजाय एक संतुष्ट सूअर होना पसंद करोगे? सुकरात ने कहा कि संतुष्ट सूअर होने के बजाय मैं एक असंतुष्ट सुकरात होना ही पसंद करूंगा। क्योंकि सूअर की जिंदगी में जहां असंतोष नहीं है, वहां संतोष भी मुर्दा होगा। जहां जीवंत असंतोष नहीं है, वहां संतोष के जीवित होने की भी कोई संभावना नहीं है। और जहां जीवित अशांति नहीं है, वहां शांति मरघट की ही हो सकती है। सुकरात का चुनाव बीसवीं सदी की पहली सूचना है। पच्चीस सौ साल पहले दी गई। बीसवीं सदी एक दिन में नहीं आ गई है। बीसवीं सदी को आने में हजारों वर्ष लगे हैं। आते-आते आई है। अभी भी सारी जमीन पर नहीं आ गई है। बीसवीं सदी से मेरा संबंध समय के मापदंड से नहीं है। इस बीसवीं सदी में आज पृथ्वी पर बहुत सदियों मेें रहने वाले लोग हैं।
और हम यहां इतने लोग बैठे हैं, हम सभी लोग एक सदी में हों ऐसा मानने का कोई भी कारण दिखाई नहीं पड़ता। हम सब कनटेंप्ररी.ज हैं, समसामयिक हैं--यह सिर्फ कैलेंडर का धोखा है। हमारे बीच में कोई आदमी बीसवीं सदी का हो सकता है, और कोई आदमी पहली सदी का हो सकता है, कोई इक्कीसवीं सदी का भी हो सकता है।
सुकरात बीसवीं सदी का पहला आदमी था जिसने यह कहा कि विचार, विचारपूर्वक असंतोष को भी स्वीकार कर सकता हूं, लेकिन अंधे विश्वासपूर्वक संतोष का भी कोई अर्थ नहीं। असल में जिंदगी का सारा विकास विचार का विकास है। और जो विश्वास को पकड़ कर बैठ जाएगा, वह विकास की गति को छोड़ कर बैठ जाता है। पुराना मनुष्य चंूकि विश्वास के केंद्र पर जी रहा था, इसलिए स्टैग्नेंट था, ठहरा हुआ।
जैसे कोई नदी तालाब बन जाए। तालाब बहुत विश्वासी, नदी बहुत अविश्वासी
और विचारवान है। असल में तालाब ने सारी खोज छोड़ दी है। वह जहां है वहां होने के लिए राजी हो गया है। जो है उसे उसने भाग्य मान लिया है। नदी की खोज जारी है। वह जो नहीं है उसे पाने की चेष्टा है, वह जहां नहीं है वहां पहुंचने की आकांक्षा है। जो अनुपलब्ध है उसे उपलब्ध करने की तीव्र पीड़ा है। इसलिए नदी असंतुष्ट है, नदी डिस्कंटेंट है, और नदी रोज नये के लिए खोज कर रही है।
निश्चित ही अपरिचित रास्तों की तकलीफें हैं। तालाब का सुख नहीं हो सकता नदी को। लेकिन अपरिचित सागरों को पाने का आनंद भी है। वह आनंद तालाब के पास नहीं हो सकता है। तालाब न कहीं जाएगा, न कुछ पाएगा, जहां है वहां जीएगा। या कहना चाहिए जीएगा कम, मरेगा ज्यादा। तालाब के पास जिंदगी नहीं होती, क्योंकि जिंदगी गति के साथ है। तालाब के पास तो क्रमिक मृत्यु होती है, ग्रेजुअल डेथ होती है। सिर्फ सूखता है, सड़ता है। नदी गति है, जीवन है। पुराना मनुष्य तालाब की तरह था, विश्वास के डबरे में बंद। नया मनुष्य नदी की तरह असंतोष, विचार, तर्क, नये की खोज को आतुर, अभीप्सित। नदी और

तालाब पहला प्रतीक है, जो मैं कहना चाहूंगा। पुराना आदमी तालाब की तरह था, नया आदमी नदी की तरह है। लेकिन कठिनाई यह पड़ रही है कि पुराना आदमी जो तालाब की तरह था, वह पुराना पानी जो तालाब में था, नदी में आकर बहुत पीड़ा में पड़ गया। क्योंकि उसकी आदत सदा बंद घेरे में जीने की थी--बिना बहने की। और यह जो संक्रमण का क्षण है, जब कि तालाब नदी बन रही है, जब कि तालाब नदी में रूपांतरित हो रहा है, जब कि विश्वास संदेह में परिवर्तित हो रहे हैं--तो बहुत पीड़ा की घड़ी है, प्रसव-पीड़ा की घड़ी है। बीसवीं सदी प्रसव-पीड़ा की घड़ी है। जिसमें हम पुरानी सारी सीमाओं को तोड़ कर नये रास्तों की खोज कर रहे हैं।
तो पहली तो बात थीः विश्वास जो पुराने आदमी का मौलिक लक्षण था और विश्वास नये आदमी का लक्षण नहीं है। और विश्वास और विचार के बीच इतना फासला है जितना जमीन और आसमान के बीच नहीं। विश्वास का अर्थ ही हैः विचार नहीं।
असल में विश्वास में विचार के अंकुरण का कोई उपाय ही नहीं है। और अगर कोई विश्वासी थोड़ा बहुत विचार करता हो, तो उसी मात्रा में अविश्वासी होता है। विचार का मतलब ही है कि संदेह मौजूद है, डाउट मौजूद है। संदेह है तो विचार है। संदेह नहीं है तो विचार कैसा? असल में अगर ठीक कोई आदमी पूरा विश्वासी है तो उसके भीतर मस्तिष्क विलीन और विदा हो जाएगा, या कहना चाहिए कि उसके भीतर मस्तिष्क पैदा ही नहीं होगा। वह तो विचार से पैदा होता है। पुराना आदमी...इसलिए दूसरी बात आपसे कहना चाहूंगा, पुराने आदमी चूंकि विश्वास से जी रहे थे, इसलिए विचार, मस्तिष्क, बुद्धि उससे उनका कम वास्ता था। भाव, भावना, फीलिंग--उससे उनका ज्यादा वास्ता था। स्वभावतः भाव के अपने रस, स्वभावतः भाव के अपने सुख हैं, लेकिन विचार के बाद जिस भाव का जन्म होता है उसका प्लेन, उसका तल दूसरा है। और विचार के पूर्व जो भाव होता है उसका तल दूसरा है।
कभी किसी पहाड़ पर आप चढ़े हों, तो बहुत बार एक ही जगह पर आ जाते हैं। जगह
तो एक ही होती है, लेकिन ऊंचाई में फर्क हो जाता है। अगर आप पहाड़ पर चढ़ रहे हैं, तो गोल चक्करों में ही चढ़ना पड़ता है। घंटे भर बाद आप फिर पाते हैं कि उसी जगह पर आ गए हैं जहां घंटे भर पहले थे चार मील चलने के। लेकिन अब दूसरे तल पर तल बदल गया है, जगह वही है, दृश्य वही है, लेकिन तल बदल गया है।
विचार के पहले जो भाव है वह पशु का तल है; वह मनुष्य का तल है नहीं। पशु
भी विचार के बिना भाव में जी रहा है। लेकिन विचार के बाद जब भाव का तल आता है, तब पहली दफा मनुष्य के तल पर भाव की दुनिया शुरू होगी। जो विचार नहीं कर सकता है इसलिए भावना से भरा हुआ है। इसकी भावना का कोई भी मूल्य नहीं है। जो विचार कर सकता है फिर भी भावना को विकसित कर पाया है, इसकी भावना मानवीय है--मनुष्य की। लेकिन दोनों ही भाव के स्थान हैं--अलग-अलग तलों पर। पुराना आदमी भाव के पास जी रहा था। वह पशु की निकटता थी। अगर पुराना आदमी बेईमान नहीं था, तो आप यह मत समझ लेना कि वह ईमानदार था। पुराना आदमी बेईमान नहीं था, इसलिए बेईमानी पूर्व था। ईमानदार सिर्फ उसी आदमी को हम कह सकते हैं जो बेईमान हो सकता है। जो नहीं हो सकता, उसकी ईमानदारी का कोई बहुत अर्थ नहीं है। पुराने आदमी की ईमानदारी का कोई भी अर्थ नहीं है, क्योंकि उसमें बेईमानी की संभावना नहीं है।
अगर एक आदिवासी ईमानदार है, उसकी ईमानदारी का कोई बहुत मूल्य नहीं है। वह बेईमान होने में असमर्थ है। बेईमानी के लिए बुद्धि चाहिए। इसलिए जितनी दुनिया में बुद्धि बढ़ेगी, उतनी बेईमानी स्वभावतः बढ़ जाएगी। लेकिन बेईमानी बुद्धि का अंत नहीं है। असल में बेईमानी पहली दफा ईमानदारी को वास्तविक मानवीय तल पर प्रकट होने का मौका है। और बुद्धिमानी जब और बढ़ेगी, बुद्धिमानी का अधूरा होना बेईमानी बन जाएगा। और बुद्धिमानी जब और बढ़ेगी, तो हम फिर एक ईमानदारी को उपलब्ध होते हैं--जो ईमानदारी उपलब्धि की भांति है।
वह आदिवासी की और गांव के ग्रामीण की ईमानदारी नहीं है, जो कि बेईमान होने में असमर्थ था। वह एक नये मनुष्य की ईमानदारी है जो बेईमान हो सकता है और नहीं हो रहा है। ध्यान रखें, मनुष्य का सारा विकास विपरीत संभावनाओं

की अपेक्षा में होता है। अगर गांव का आदमी भोला-भाला था, तो उस भोले-भाले को मैं दो कौड़ी का भी मूल्य देने को राजी नहीं हूं। भोला-भाला होना ही उसकी नियति थी, डेस्टिनी थी। वह भोला-भाला ही हो सकता था। वह अपने भोले-भालेपन के बाहर जाने के लिए कोई रास्ता उसके पास नहीं था। वह चाहता तो भी भोले- भालेपन के बाहर नहीं जा सकता था। उसका भोला-भालापन मजबूरी थी, कंप्लशन था। वह भोले-भालेपन के लिए गौरवान्वित नहीं किया जा सकता। हां, भोले-भालेपन के लिए प्रशंसित भला किया जा सके, लेकिन गौरवमंडित नहीं किया जा सकता। इसलिए जो लोग आज इस बीसवीं सदी में भी गांव की बात करते हैं, नासमझी की बात करते हैं। जो लोग कहते हैं कि पीछे लौट चलो, बैक टु नेचर, वे नासमझी की बात करते हैं। उनको पता नहीं है कि गांव का भोला-भालापन वस्तुतः वह भोला- भालापन नहीं है जो मनुष्य को गौरव दे। वह वही भोला-भालापन है जिसमें सारे पशु जी रहे हैं, पक्षी जी रहे हैं, पौधे जी रहे हैं। बीसवीं सदी ने मनुष्य को उपलब्धि के द्वार खोले जहां ईमानदारी होना हमारा चुनाव, हमारी च्वाइस होगी।
और ध्यान रहे, जिस क्षण हम चुनते हैं उसी क्षण हम पहली दफा मनुष्य होते हैं। चुनाव ही मनुष्य की प्राथमिक भूमिका है। पशु जैसे हैं वह उनका चुनाव नहीं है, वह उनकी च्वाइस नहीं है। वे ऐसे हैं, यह उनका होना है, यह उनका स्वभाव। पौधे जैसे हैं यह उनका चुनाव नहीं है। कोई गुलाब यह नहीं चुनाव करता कि मैं लाल फूल को चुनूं। फूल लाल आता है तो लाल आता है, सफेद आता है तो सफेद आता है। न ही कोई गुलाब यह चुनाव करता है कि मेरा फूल सुंदर हो। सुंदर हो तो ठीक, असुंदर हो तो ठीक। न कोई वृक्ष चुनाव करता है कि उसके पत्ते कैसे हों। मनुष्य पहला चुनाव है। और बीसवीं सदी का मनुष्य प्रत्येक चीज को चुनाव करके जीएगा।
असल में विश्वास जब तक हो तब तक चुनाव भी नहीं हो सकता। विचार हो तब चुनाव शुरू होता है। चुनाव मनुष्यता की गरिमा का पहला आधार है। आप जो हैं अगर वह आपका चुनाव नहीं है, तो आप पशु के निकट जी रहे हैं। अगर वह आपका चुनाव है, तो आप पशु के ऊपर उठ रहे हैं। और ध्यान रहे, पशुता की ईमानदारी के मुकाबले मैं चुनी हुई बेईमानी को भी चुन लंूगा। कारण है उसका। अपने आप सहज जो भोला-भालापन है, उसके बजाय तो मैं चुनी हुई चालाकी और कनिंगनेस को पसंद कर लूंगा। कारण है उसका।
क्योंकि चुनाव से मनुष्य का प्रारंभ हो जाता है। और जो मनुष्य बेईमानी चुन सकता है वह आज नहीं कल ईमानदारी भी चुन सकता है। और जो मनुष्य चालाकी चुन सकता है, वह आज नहीं कल भोला-भालापन भी चुन सकता है। लेकिन जब चुना हुआ भोला-भालापन मनुष्य में आएगा, तो इसमें तल का भेद होगा। यह पहाड़ का रास्ता है, जिसमें हम फिर उसी जगह आ जाएंगे जहां आदिवासी था। लेकिन उसके और हमारे बीच जमीन का बहुत फासला हो गया, ऊंचाई का बहुत फासला हो गया। प्लेन अलग हो गया, जगह वही है।
ऐसा समझें कि एक छोटा बच्चा है, छोटे बच्चे की इनोसेंस किसी कीमत की नहीं है। छोटे बच्चे का निर्दोष होना दो कौड़ी का भी नहीं है, छोटे बच्चे का निर्दोष होना सहज है। लेकिन अगर कोई बूढ़ा आदमी एक छोटे बच्चे की तरह निर्दोष हो जाए, तो संत हो जाता है। लेकिन छोटे बच्चे को हम संत कहने को राजी न होंगे। छोटा बच्चा संत होता भी नहीं। क्योंकि जो अभी शैतान होने में समर्थ नहीं हुआ उसके संत होने का क्या उपाय है? इसलिए छोटे बच्चे का निर्दोषपन ठीक है, अपनी जगह है। लेकिन जब कोई बूढ़ी आंखें और छोटे बच्चे की तरह सरल हो जाती हैं, तो उपलब्धि है, अचीवमेंट है। यह कोई आसान मामला नहीं है, यह चुनाव है। यह बूढ़ा आदमी शैतान होने की पूरी जिंदगी से गुजर गया है और संत है, और शैतान होने के हर मौके थे और नहीं चुने, या चुने थे और छोड़े हैं।
हर संत का अतीत शैतानी के रास्ते से गुजरता है। लेकिन बच्चे का कोई अतीत नहीं है। बच्चे की पूरी संभावना है, अभी तो वह शैतान हो। और हम चाहेंगे कि वह उस जगह आ जाए जहां चुनाव का क्षण आए। क्योंकि जिस क्षण चुनाव का क्षण है, डिसीजन का, उसी क्षण मनुष्य पैदा होता है। डिसीजन के

मूवमेंट में, निर्णय के क्षण में मनुष्यता पहली दफा क्रिस्टलाइज होती है।
और जितना बड़ा चुनाव है उतनी बड़ी मनुष्यता का जन्म होता है।
इसलिए मैं उनके पक्ष में नहीं हूं जो आदमी को पीछे लौटाना चाहते हैं। चाहे रूसो, चाहे टाल्सटाय, और चाहे रस्किन, और चाहे थोरो, और चाहे इमर्सन, और चाहे गांधी। वे सारे लोग जो मनुष्य को पीछे लौटाना चाहते हैं और सोचते हैं पुराने दिन वापस लौट आएं, वे मनुष्य की जिंदगी में बड़े से बड़े खतरे की बात कर रहे हैं। नहीं, कोई पुराना दिन वापस नहीं चाहिए पुराने दिन की भांति। नया आदमी चाहिए।
पुराना दिन वापस लौटाने की कोशिश रिग्रेशन है, वह आदमी को पीछे धकेलना है। डर तो लगता है, कि गांव के आदमी को देखते हैं तो लगता है कैसा भोला-भाला है, लेकिन लाओ गांव के आदमी को शहर में और पाओगे कि वह चालाक हो गया। लाओ गांव के आदमी को शहर में और पाओगे वह शहर के आदमी से ज्यादा चालाक हो गया है।
क्योंकि नया मुसलमान ज्यादा मस्जिद जाता है।
चालाकी उसके लिए पहला मौका है, उसकी चेतना तेजी से चालाकी का काम करेगी। इसलिए जब ग्रामीण चालाक होता है तो शहरी चालाक से ज्यादा हो जाता है। शहर के आदमी के लिए चालाकी थिर हो गई है। चारों तरफ का परिचित वातावरण हो गई है। गांव का आदमी चालाक नहीं है; क्योंकि परिस्थितियां और चेतना चुनाव की नहीं हैं।
नहीं; आदमी को पीछे नहीं लौटाना है, आगे ले जाना है। बीसवीं सदी ने जो मौका दिया है वह बहुत ही डेफिनेटिव है। वह मौका बहुत डिसिसिव है। वह मौका बहुत निर्णायक है। और हमें चुनाव का पहली दफा मौका मिला है। इसलिए दूसरी बात आपसे कहना चाहता हूं कि बीसवीं सदी के मनुष्य का जो विशेष लक्षण है--वह चुनाव है, च्वाइस है। अब हम जो भी होंगे, च्वाइस से होंगे। अब हम वही नहीं हो सकते प्रकृति से। प्रकृति ने हमें उस जगह ला दिया है जहां अब हमारा चुनाव काम करेगा।
मेरे हिसाब से बीसवीं सदी पहली दफा ठीक मनुष्य को जन्म दे रही है। निश्चित ही खतरे हैं। चुनाव के साथ खतरे शुरू हो जाते हैं। लेकिन जितना बड़ा खतरा है, जीवन की पुलक उतनी बढ़ जाती है। जितना कम खतरा है, जीवन की पुलक उतनी क्षीण हो जाती है। अगर खतरा बिलकुल नहीं है, तो जीते और मरे आदमी में कोई फर्क नहीं रह जाता। कब्र सबसे सुरक्षित जगह है, वहां कोई खतरा नहीं आता। न वहां बीमारी आती और न कब्र में मौत आ सकती। अब मरने का भी कोई उपाय नहीं है कब्र के भीतर, वहां सब सुरक्षित है।
मैंने सुना है कि एक सम्राट ने एक महल बनाया था। और ऐसा महल कि जिसमें
सब तरह की सुरक्षा थी। उसने खिड़की-दरवाजे नहीं रखे थे, सिर्फ एक दरवाजा रखा था कि कहीं कोई चोर, कहीं कोई बीमारी, कहीं कोई दुश्मन कहीं से घुस न जाए। एक दरवाजा था और एक दरवाजे पर हजारों सिपाहियों का पहरा था। पड़ोस का राजा उसके महल की खबर सुन कर देखने आया। देख कर उसने कहा कि सच में ही इतनी सुरक्षित जगह मैंने नहीं देखी। कोई खतरा नहीं। मैं भी ऐसा महल बनाऊंगा। जब पड़ोस का राजा बाहर द्वार पर विदा ले रहा था और अपने रथ पर सवार हो रहा था, तब उसने पुनः-पुनः धन्यवाद दिए और प्रशंसा की और उसने कहा कि ऐसा सुरक्षित महल निश्चित ही होना चाहिए, जहां कोई खतरा न हो। रास्ते के किनारे बैठा एक भिखारी जोर से हंसने लगा। उस मकान के मालिक राजा ने पूछा कि क्यों हंसते हो? क्या बात हो गई?
उस भिखारी ने कहा कि मैं इसलिए हंसता हूं कि आपके मकान को मैंने बनते
भी देखा, बन गया भी देखा, लोगों को प्रशंसा करते भी देखता हूं। लेकिन मुझे एक भूल मालूम पड़ती है इस मकान में। उस राजा ने कहाः कौन सी भूल? उस भिखारी ने कहाः इसमें एक दरवाजा है, यह भी खतरा है। आप इसको भी बंद करवा लें और भीतर हो जाएं, आप खतरे के बिलकुल बाहर हो जाएंगे।
एक दरवाजा भी कुछ खतरा तो है ही, बहुत दरवाजे बहुत खतरा था। एक दरवाजा कुछ खतरा है। लेकिन खतरे के बाहर नहीं हो गए हैं। और दुश्मन चाहे न भी घुस सके, मौत तो इस एक दरवाजे से भी घुस जाएगी। उस राजा ने कहाः पागल, अगर मैं

यह दरवाजा भी बंद करके भीतर हो जाऊं, तब तो मौत को घुसने की जरूरत ही न रह जाएगी। मैं मर ही जाऊंगा।
उस भिखारी ने कहाः करीब-करीब आप मर ही चुके हैं, क्योंकि जिंदगी में जितने खतरे के दरवाजे होते हैं, उतनी ही जिंदगी होती है। जितने खतरे के दरवाजे कम हो जाते हैं, उतनी जिंदगी कम हो जाती है। अगर खतरे के सब दरवाजे बंद हो जाएं, तो जिंदगी खत्म हो जाती है।
बीसवीं सदी ने पहली दफा खतरा लिया है। आज तक आदमी ने खतरे नहीं लिए, वह खतरे के बाहर सुरक्षा में जी रहा है। उसने सब तरह की सुरक्षाएं कर रखी थीं, सब तरह की सुरक्षाएं। मानसिक, आध्यात्मिक सब तरह की सुरक्षाएं। जिंदगी बहुत साफ नक्शे की भांति थी, जिसमें खतरे नहीं थे। रास्ते पिटे हुए और ठीक से बने हुए थे, रेडीमेड। बीसवीं सदी में पहली दफा आदमी ने अनिश्चित होने का खतरा लिया है।
आज स्वर्ग निश्चित नहीं है, आज पुण्य करना खतरे से खाली नहीं है। इसके पहले पुण्य करना बिलकुल ही खतरे के बाहर था। आज से पहले पुण्य करना बिलकुल सुनिश्चित बात थी। पुण्य के बाद उसका परिणाम निश्चित था कि स्वर्ग मिलना है--इसमें कोई शक, संदेह न था। पाप के बाद नरक मिलना है--यह साफ था, यह तय था। जिंदगी बहुत साफ-सुथरी थी। शतरंज के खेल की तरह खाने बंटे हुए थे। रास्ते बंधे-बंधाए थे। जिंदगी में हर चीज का उत्तर था।
बीसवीं सदी ने सब उत्तर छोड़ दिए। अब जिंदगी में बंधा हुआ उत्तर कोई भी नहीं है। रेडिमेड आंसर जैसी कोई चीज ही नहीं है। बीसवीं सदी का आदमी पहली दफा सारे खतरों के दरवाजे खोल कर खड़ा हो गया। उसने शतरंज उठा कर फेंक दी, उसने कहा, यह भी कोई जिंदगी है कि बंधे हुए खाकों में घूमते रहो?
यह जिंदगी नहीं है। यह तो रेल की पटरियां जैसे बिछी हों उस पर रेल के डिब्बे दौड़ रहे हैं। यह मालगाड़ी की जिंदगी है। बंधी हुई पटरियां हैं लोहे की, आदमी उन पर दौड़ रहा है। पुराना आदमी बंधी पटरियों पर दौड़ रहा था। उसने सब पटरियां तय कर रखी थीं, वह नीचे कभी नहीं उतरता था। सब पटरियां तय थीं, और सब उत्तर सुनिश्चित थे, और जिंदगी के पास सब उत्तर थे। संदेह बिलकुल न था। सब साफ-सुथरा था।
अगर आप आज से पांच सौ साल या हजार साल पहले पैदा होते या अभी भी अगर हजार साल पुराने किसी साधु-संत के पास जाने का आपको दुर्भाग्य मिल जाए, तो आपके लिए सब बंधे हुए उत्तर मिलेंगे। आप पूछिए तो स्वर्ग और नरक के सब नक्शे मंदिरों में टंगे हुए थे। कुछ मंदिरों ने डर की वजह से वह उतार दिए, कुछ पुराने मंदिर अभी भी टांगे हुए हैं। जिनको इस जमीन के नक्शे का भी पूरा पता नहीं था, उन्होंने स्वर्ग और नरक के नक्शे भी तय कर रखे थे। जिनको यह भी पता नहीं था कि यह जमीन गोल है, उन्होंने स्वर्ग के रास्तों का भी ठीक-ठीक हिसाब बना रखा था। जिनको यह भी पता नहीं था कि आग कितनी डिग्री पर जलाती है, उन्होंने नरक में भट्टियां तक जला छोड़ी। जिनको वस्तुतः कुछ भी पता नहीं था, वे इस भ्रम में जी रहे थे कि उन्हें सब पता है।
असल में अज्ञानी चित्त एक ही तरह से अपने अज्ञान को बचा सकता है कि वह अपने अज्ञान के रहते हुए पूरी तरह ज्ञानी होने के खयाल से भर जाए। बीसवीं सदी के पहले का आदमी पूरी तरह अज्ञानी था जीवन के रहस्यों के बाबत। लेकिन पूरे खयाल से भरा था कि सब पता है। और यह सब पता का खयाल अज्ञान के खिलाफ सुरक्षा के लिए था। क्योंकि अज्ञान बड़ा खतरनाक है। क्योंकि जब हमें सब पता न रह जाए तो जिंदगी डांवाडोल हो जाती है, तय करना मुश्किल हो जाता है। आज बहुत साफ नहीं है कि धर्मशाला बनाने के बाद भगवान आपको स्वर्ग के दरवाजे पर लेने को तैयार मिलेगा कि नहीं मिलेगा। कुछ पक्का नहीं है। यह भी पक्का नहीं है कि धर्मशाला बना कर स्वर्ग ही जाइएगा कि नरक जाइएगा, यह भी कुछ पक्का नहीं है। नरक-स्वर्ग हैं भी, यह भी पक्का नहीं है। धर्मशाला बनाने में पुण्य हो रहा है कि पाप हो रहा है यह भी कुछ पक्का नहीं है। पहली दफा आदमी अपने अज्ञान को स्वीकार करने की हिम्मत जुटा पाया है।
यह बहुत बड़ी हिम्मत है, यह बहुत बड़ा क्रेज है। यह साहस इतना बड़ा है कि इतना बड़ा साहस कभी आदमी नहीं जुटा पाया था। बीसवीं सदी साहस की।

और बीसवीं सदी, एक आदमी, साहस का आदमी, स्वभावतः साहस के साथ खतरे आने शुरू हो जाते हैं। वे चारों तरफ से आ गए। जब जिंदगी में कोई उत्तर तय न रह जाए, तो जिंदगी को मशीन की तरह चलाना मुश्किल हो जाता है। जब जिंदगी में कोई उत्तर साफ न रह जाए, तो अपने उत्तर खुद खोजने पड़ते हैं। और भूल-चूक होनी शुरू हो जाती है। और जब जिंदगी में सब बंधा हुआ ढांचा न रह जाए, तो हर आदमी अपना ढांचा अलग बनाने लगता है। इसलिए समाज का ढांचा टूटने लगता है। बीसवीं सदी के पहले का व्यक्तित्व वस्तुतः व्यक्तित्व नहीं था। समाज
का एक अंश था बीसवीं सदी के पहले का आदमी। पहली दफा बीसवीं सदी में इंडिविजुअल पैदा हुआ है और सोसाइटी मरने के करीब पहुंची। समाज मरने के करीब है और व्यक्ति पैदा हुआ है।
असल में अगर आज से हम पिछले गांव में लौट जाएं, तो हमें पता चलेगा कि व्यक्ति पैदा ही नहीं हो सकता था। जिस गांव की हम बहुत तारीफ करते हैं और हमारे कवि जिसकी बहुत चर्चा करते हैं, हालांकि वे सब कवि शहरों में रहते हैं। गांव में कोई जाता नहीं। और जो महात्मा गांव की बहुत प्रशंसा करते हैं, वे सब राजधानियों में ठहरते हैं। कोई गांव-वांव से मतलब नहीं है। लेकिन जिस गांव की हमारी सारी चर्चा चलती है हमें पता नहीं कि उस गांव में व्यक्ति था ही नहीं, हो ही नहीं सकता था। गांव में व्यक्ति के पैदा होने का उपाय नहीं था।
गांव में समाज था और समाज इतना भारी और मजबूत था कि उसमें से इंच भर हिलना-डुलना संभव नहीं था। अगर एक आदमी गांव में जरा सा व्यक्तित्व का प्रदर्शन करे, तो उसका हुक्का-पानी बंद। उसको कोई घर में बैठने नहीं बुलाएगा, उसको मंदिर में प्रवेश बंद हो जाएगा, गांव के कुएं पर उसको पानी नहीं मिलेगा और सारा गांव उस पर एक साथ हंसेगा और सारा गांव उसका एक साथ विरोध करेगा और सारा गांव एक-एक व्यक्ति पर आंख रखेगा कि वह क्या कर रहा है? वह क्या खा रहा है? क्या पी रहा है? कहां उठ रहा है? कहां बैठ रहा है? पूरे गांव की आंखें एक व्यक्ति पर टिकी रहेंगी। सारा गांव, सारे गांव की आंखें उस व्यक्ति को जकड़े रहेंगी। वह जरा सा भी हिल-डुल नहीं सकता इसके बीच में। पहली दफा बीसवीं सदी में व्यक्ति को व्यक्तित्व दिया, प्राइवेसी दी है। इसके पहले कोई प्राइवेसी नहीं थी।
अगर आप एक छोटे गांव में एक अपरिचित स्त्री के साथ निकल जाते, तो आपको पता चलता कि प्राइवेसी बिलकुल नहीं है। सारा गांव पकड़ लेता कि स्त्री कौन है? गांव की सेंशन चाहिए इस स्त्री के साथ सड़क पर निकलने के लिए। गांव का लाइसेंस चाहिए कि आप एक स्त्री के साथ सड़क पर निकल सकते हैं।
आदमी का प्रेम भी अगर व्यक्ति निर्णायक न हो और समाज निर्णायक हो जाए,
तो व्यक्तित्व के जन्म की कोई संभावना नहीं है। किसी को कोई हक नहीं है कि कोई किसी से पूछे कि आप किसके साथ हैं। यह अशिष्टता की हद है, असभ्यता की, असंस्कृति की हद है। लेकिन पुरानी दुनिया इसे स्वीकार करके चलती है। असल में पुरानी दुनिया व्यक्ति को कोई मौका नहीं देती। इसलिए पुरानी दुनिया में न व्यक्ति था और न पुरानी दुनिया में कोई क्रांति। क्योंकि व्यक्ति आए तो क्रांति उसके पीछे आनी शुरू होती है। व्यक्ति के बिना कोई क्रांति नहीं आती।
गांव के देश में क्रांति बहुत मुश्किल है, बहुत कठिन है। क्योंकि गांव अपनी बंधी हुई लीक पर जीता है। और लीक से इंच भर कोई हटा कि पूरा गांव उसका दुश्मन हो जाता है। इसलिए भारत जैसा देश जो हजारों साल से गांव का देश है, क्रांति-विरोधी देश है, उसमें कोई क्रांति नहीं हो सकी। भारत जैसा देश जिसमें सबकी आंखें सब पर हैं और हरेक आदमी के बाकी लोग पुलिसवाले का काम कर रहे हैं, उस देश में व्यक्तित्व पैदा नहीं हो पाया। उस देश में व्यक्तित्व पैदा होना मुश्किल है। उस देश में व्यक्तित्व पैदा होना अत्यंत असंभव है।
बीसवीं सदी ने पहली दफा समाज के ढांचे को ढीला किया और व्यक्ति की आत्मा को प्रखर किया है। लेकिन इससे हमें बहुत बेचैनी होती है। क्योंकि जब ढांचे ढीले होते हैं, तो अराजकता आ जाती है। जब ढांचे ढीले होते हैं, तो इनडिसिप्लिन आ जाता है। जब ढांचे ढीले होते हैं, तो अनुशासन टूट जाता है।

असल में अनुशासन का वक्त गया। भविष्य में पुराने दिनों का अनुशासन नहीं हो सकता है। और जब तक हम पुराने अनुशासन की जिद करेंगे, तब तक भविष्य का एक नया अनुशासन जो पैदा हो सकता है वह भी पैदा नहीं हो सकता। पुराना अनुशासन समाज आरोपित था, नया अनुशासन व्यक्ति से आविर्भूत होगा। वह एक इनर डिसिप्लिन होगी जो व्यक्ति के भीतर से आएगी। जब व्यक्ति पैदा हो चुका है, तो अनुशासन समाज नहीं थोप सकता। जब व्यक्ति पैदा हो चुका है, तो हमें नया अनुशासन खोजना पड़ेगा, जिसका निर्णायक व्यक्ति होगा।
असल में हमें अनुशासन की सारी परिभाषा बदलनी पड़ेगी। अब अनुशासन आत्मानुशासन ही होगा। अब अनुशासन समाज अनुशासन नहीं हो सकता। असल में पुराना सारा अनुशासन किसी के द्वारा दिया गया था। नया अनुशासन अब किसी के द्वारा स्वीकार नहीं किया जा सकेगा। व्यक्ति पैदा हो चुका है और आप उस ढांचे को थोपना चाह रहे हैं जो व्यक्ति पूर्व है, प्री-इंडिविजुअल। वह नहीं टिक सकता। इसलिए बच्चे आपको अगर बगावत करते मालूम पड़ रहे हैं, तो इसमें बच्चों का कसूर नहीं है।
असल में आपने बच्चों को व्यक्तित्व दे दिया और आप अनुशासन वह दे रहे हैं जो समाज का है। ये दोनों बातें साथ नहीं चल सकतीं। जब व्यक्ति पैदा हो गया है, विचार पैदा हो गया है, तो अब तो व्यक्ति को अपना अनुशासन स्वयं तय करना पड़ेगा। स्वभावतः पुरानी आंखों में अराजकता, अनार्की दिखाई पड़नी शुरू हो जाएगी। लेकिन यह अराजकता पुरानी आंखों के देखने के ढंग की गलती है। यह अराजकता है नहीं, यह असल में व्यक्तियों के पैदा होने का अराजक क्षण है। जब समाज की पुरानी व्यवस्था जाएगी और नई व्यवस्था आएगी।
अब बहुत हैरानी की बात है, अगर एक युवक या एक युवती अपने ढंग के कपड़े पहन कर सड़क पर निकलते हैं, तो अराजकता क्या हो गई? कपड़े पहनने का हक भी आप तय करेंगे कि कैसे कपड़े पहने जाएं? तो जब कपड़े तक आप तय करेंगे, तो फिर आत्मा तो आप क्या तय करने देंगे किसी व्यक्ति को कि उसकी अपनी हो पाए? नहीं, लेकिन पुरानी आंखों में तकलीफ शुरू हो जाती है। तकलीफ शुरू हो जाती है, क्योंकि कपड़े भी समाज तय करता था। उस संबंध में भी व्यक्ति की कोई हैसियत न थी। आप क्या पहनेंगे, यह समाज का निर्धारण था; आप क्या खाएंगे, यह समाज का निर्धारण था; आप कैसे उठेंगे, बैठेंगे, यह समाज का निर्धारण था। नहीं; अब यह कुछ भी नहीं चल सकता। नया आदमी जन्म के करीब है। करीब-करीब उसके पहले खबरें आ गईं, उसकी प्रसव-पीड़ा करीब है। वह बगावत करेगा और बगावत कठिन हो जाएगी अगर रुकावट डाली गई। अगर स्वीकार कर ली गई, तो सरल हो जाएगी। लेकिन मैं कई दफे हैरान होता हूं कि स्वीकार करने में कठिनाई क्या है? अगर लोग अपने ढंग के कपड़े पहन रहे हैं, इसमें बेचैनी क्या है? आप अपने ढंग के पहन रहे हैं, किसी को बेचैनी नहीं है; वे अपने ढंग के पहन रहे हैं, आपको बेचैनी क्या है? लेकिन पिता को बेचैनी है कि उसका लड़का और ढंग के कपड़े पहने हुए है। पिता को बेचैनी है कि वह टोपी लगाए हुए है, तो बेटा टोपी नहीं लगाए हुए है। पिता को बेचैनी है कि वह ढीले कपड़े पहने है, बेटा चुस्त कपड़े पहने हुए है।
लेकिन बेचैनी क्या है? बेटे बाप के कपड़े पहने, यह जरूरी क्यों है? मां बहुत परेशान है कि उसकी लड़की कैसे कपड़े पहने हुए है? कोई अर्थ नहीं है इस बात में। इसको हम व्यर्थ ही अराजकता और अनुशासनहीनता समझ कर चल रहे हैं, व्यर्थ ही।
पुरानी व्यवस्था थी तो मां-बाप बच्चों का विवाह तय कर रहे थे। क्योंकि पुरानी व्यवस्था चुनाव का मौका व्यक्ति को कम से कम देना चाहती थी। चुनाव का मौका मिला कि व्यक्ति का जन्म हुआ। इसलिए बाल-विवाह सारे जगत में स्वीकृत था। बाल-विवाह का मतलब है कि हम प्रेम न होने देंगे। बाल-विवाह का मतलब है कि इसके पहले कि तुम्हारी जिंदगी में प्रेम उठे, हम तुम्हें विवाहित किए देते हैं। बाल-विवाह का मतलब है कि प्रेम से ज्यादा मूल्यवान सेक्स है। इसके पहले कि प्रेम का जन्म हो, हम तुम्हें सेक्स की सुविधा दिए देते हैं।
पुराना आदमी कामुकता के घेरे पर जी रहा था। हालांकि पुराना आदमी कहता
है कि नया आदमी कामुक है। गलत है यह बात। पुराना आदमी कहता है कि नये लोग

बहुत कामुक हैं। झूठी है यह बात। पुराना आदमी बिलकुल कामुक था। असल में नये आदमी ने पहली दफा काम के ऊपर प्रेम की आवाज बुलंद की है, इसलिए तकलीफ शुरू हो गई। और प्रेम मनुष्य के खास गुणों में से एक है और सेक्स मनुष्य का कोई खास गुण नहीं है। पशुओं में, पक्षियों में, पौधों में सबमें है। पुराने मनुष्य ने सेक्स की व्यवस्था की थी; प्रेम की कोई सुविधा न दी थी। असल में पुराना मनुष्य पत्नी को भी इसी भांति देता था--जिस तरह मां मिलती है, बहन मिलती है, भाई मिलता है, पिता मिलता है। गिवन फैक्टर्स। अब मैं अपनी मां को नहीं बदल सकता, वह मेरा चुनाव नहीं है। मैं अपने पिता को नहीं बदल सकता, वह मेरा चुनाव नहीं है। कोई उपाय नहीं है उसमें। मैं अपनी बहन को नहीं बदल सकता, वह मेरा चुनाव नहीं है। ये गिवन फैक्टर्स हैं। सिर्फ एक जिंदगी में चुनाव है--पत्नी का। वह पुराने आदमी ने छीन रखा था। क्योंकि उससे ही व्यक्ति पैदा हो जाएगा। और चुनाव का मौका नहीं होना चाहिए। मां तो चुनी नहीं जा सकती, कोई डर नहीं है। पिता चुना नहीं जा सकता, कोई डर नहीं है। सिर्फ पत्नी या पति चुना जा सकता है; वह भी समाज चुन लेगा, मां-बाप चुन लेंगे। वह चुनाव भी छीन लिया जाएगा।
और जिस आदमी की जिंदगी में प्रेम का चुनाव नहीं है, उस आदमी की जिंदगी में आत्मा के जन्म की संभावना बहुत क्षीण हो जाती है। उसमें व्यक्तित्व की संभावना क्षीण हो जाती है। निश्चित ही पुराना समाज प्रेम के खतरों से मुक्त था। विवाह में कोई खतरा नहीं है; क्योंकि वह एक इंस्ट्यूशन, विवाह में कोई खतरा नहीं; वह एक व्यवस्था है। विवाह में कोई खतरा नहीं है; क्योंकि वह मां-बाप, अनुभवी, समझदारों के द्वारा किया गया इंतजाम है। प्रेम में सदा खतरा है। क्योंकि वह गैर-अनुभवी, नासमझों के द्वारा किया गया एक्सपेरिमेंट, प्रयोग है। विवाह में कभी खतरा नहीं है। प्रेम में सदा खतरा है। लेकिन विवाह में इसलिए खतरा नहीं है कि उसमें प्रेम का उपाय नहीं है। और प्रेम में इसीलिए खतरा है कि अगर प्रेम ठीक से विकसित हो तो विवाह विदा हो सकता है, विवाह समाप्त हो सकता है। विवाह में खतरा नहीं है, क्योंकि वह डेड इंस्ट्यूशन है, मरी हुई संस्था है। प्रेम में खतरा है, क्योंकि वह लिविंग है, वह जीवंत भावना है।
कोई खतरा नहीं था, दुनिया में नीति बड़े ढंग से चल रही थी। बीसवीं सदी
ने पहली दफा दुनिया की नीति को भूकंप ला दिया। नीति बड़ी व्यवस्थित चल रही थी। बड़ी व्यवस्थित दुनिया थी। पत्नियां घर में थीं, वेश्याएं सड़कों पर थीं। हमने दोनों इंतजाम कर दिए थे। हमने इंतजाम कर दिया था--पत्नी का, पति का। यह जीवन स्थायी इंतजाम था। यह एक दफा हो गया, तो इसमें बदलने का कोई उपाय नहीं था। दुबारा चुनाव की कोई संभावना नहीं थी। यह थिर संबंध था। लेकिन इसमें खतरा था और डर था। और डर सिर्फ एक था कि यह भी हो सकता है
कि जिन दो अपरिचित लोगों को किन्हीं पंडितों ने जन्म-कुंडली देख कर मिला दिया है, जिनका इससे कोई संबंध नहीं, जिनका इनके प्रेम से कोई संबंध नहीं, जिनका इनके हृदय से कोई संबंध नहीं। किन्हीं दो पंडितों ने जिनकी जन्म-कंुंडली देख कर मेल बैठा दिया है। किन्हीं मां-बाप ने धन, पद, प्रतिष्ठा, वंश, परंपरा सब सोच-समझ कर, सिर्फ प्रेम को सोचने के बाहर छोड़ कर, बाकी सब सोच-समझ कर इंतजाम कर दिया है। हो सकता है इनके बीच तनाव रहे। हो सकता है इनके बीच लगाव न बन पाए। इसलिए विवाह की व्यवस्था को एक सब्स्टीट्यूट इंस्ट्यूशन वेश्या की खड़ी करनी प.ड़ेगी।
जब तक दुनिया में विवाह प्रभावी रहेगा, दुनिया से वेश्याएं नहीं मिट सकतीं। क्योंकि विवाह और वेश्या एक ही संस्था के दो पहलू हैं। असल में घर की पत्नी को अगर जीवन भर साथ रखना है और घर के पति को अगर जीवन भर साथ रखना है, तो बीच-बीच में व्यावसायिक छूट के मौके होने जरूरी हैं।
वेश्या खतरनाक नहीं है, क्योंकि उससे पैसे का संबंध है। उससे भी प्रेम का कोई संबंध नहीं है। और पत्नी भी यही पसंद करेगी कि उसका पति वेश्या के पास चला जाए बजाय किसी और स्त्री के पास चला जाए। क्योंकि किसी और स्त्री से प्रेम पैदा हो सकता है। वेश्या से प्रेम का कोई कारण नहीं है। वह धंधा है। इसलिए पत्नियां अपने सामने अपने पतियों को वेश्याओं को नचाते देखती रहीं, उन्हें कोई तकलीफ न थी। उसमें कोई खतरा न था। खतरे का

कोई कारण न था। वेश्या से संबंध पैसे का है। वह सेक्सुअल है। वह कामुक है। प्रेम खतरा है पत्नी के लिए, कामुकता कोई खतरा नहीं है।

पुरानी दुनिया का आदमी सोचता तो ऐसा ही रहा कि बड़ा ही काम-मुक्त था, बड़ा नैतिक था। मुझे नहीं दिखाई पड़ रहा। क्योंकि नैतिक होने की संभावना अनैतिक होने की संभावना से ही शुरू होती है। इसलिए नैतिक होने की भी सब संभावनाएं कट गई थीं। बीसवीं सदी का आदमी पहली दफा मॉरल हो सकता है, नैतिक हो सकता है। क्योंकि चुनाव है, और उसके पास मौका है कि वह चाहे तो अनैतिक हो जाए और चाहे तो नैतिक हो जाए।

यह जो हमने चुनाव-रहित, व्यक्तित्वहीन, विचाररिक्त विश्वास और श्रद्धा का जाल खड़ा किया था, वह सब जगह टूट गया है। हम उसी को जोड़ने में लगे हैं। हम किसी तरह उसी जाल को, उस पुराने जाल को जोड़ने में समय गंवा रहे हैं। जब कि जरूरी है कि हम समझ लें कि पुराना जाल न अब जोड़ा जा सकता है, न लौटाया जा सकता है। न उसके वापस लौटने की कोई संभावना है। इसलिए जितनी देर हम उसके सुधारने में और उसको ठीक करने में गंवा रहे हैं, उतनी देर यह प्रसव की पीड़ा लंबी होती चली जाती है।

अगर यह साफ हो सके कि वह गया ही, जा ही चुका, तो उसको दफना देने की जरूरत है और तत्काल चिंतन को नया मार्ग देने की जरूरत है कि नये मनुष्य के चुनाव के लिए हम क्या करें। उसके सामने नैतिक-अनैतिक कौन सी धारणाएं उपस्थित करें।

निश्चित ही पुरानी धारणाएं काम नहीं करेंगी। जैसे पुरानी सारी नीति भय पर खड़ी हैं। सब भय पर खड़ी नीति थीं, डर पर खड़ी थीं। डरा रहे थे हम आदमी को। उससे कह रहे थे कि तूने बुरा किया तो फिर--आग में, नरक में, कीड़े-मकोड़ों में जिंदगी बसर करनी पड़ेगी।

और जिसने यह नरकों की कल्पनाएं की थीं, बड़े खतरनाक लोग रहे होंगे। क्योंकि उनकी कल्पनाएं बताती हैं कि वे जरूर पैथालॉजिकल, उनका दिमाग रुग्ण रहा होगा। कैसी-कैसी कल्पनाएं हैं कि कढ़ाहों में आदमी को जलाया जा रहा है। जलते तो बहुत हैं, लेकिन जल ही नहीं जाते। बड़े मजेदार लोग हैं। बड़े सैडिस्ट, बड़े दूसरे को दुख देने में उत्सुक लोग रहे होंगे। आदमी को कढाहे में जलाया जा रहा है, जलने की पूरी तकलीफ भोग रहा है वह, लेकिन जल नहीं जाता। जल जाए एक दफा में तो फिर दुबारा तकलीफ कैसे देंगे, उसको तकलीफ दिए चले जाना है। अंतहीन पीड़ा होगी वह। नरक में कीड़े-मकोड़े उसके शरीर में हजारों कीड़े-मकोड़े इधर से घुसेंगे, उधर से निकलेंगे। सब तरफ छेद कर देंगे और दौड़ते रहेंगे। वह आदमी मरेगा नहीं, जिंदा रहेगा। जिंदा रखना जरूरी है। नहीं तो कीड़े जो तकलीफ दे रहे हैं वह तकलीफ कैसे झेली जाएगी। प्यास नरक में लगेगी, पानी भी नरक में होगा, लेकिन पी न सकेंगे। जैसे पीएंगे फौरन मूच्र्छित हो जाएंगे। जैसे ही होश आएगा, प्यास लगेगी, जैसे ही पानी के पास जाएंगे, मूच्र्छित हो जाएंगे।

अजीब लोग थे! इनसे ज्यादा वायलेंट, इनसे ज्यादा हिंसक आदमी खोजना कठिन है। लेकिन ये सब साधु-संत थे। इनकी हिंसा क्या विचार करेगी? किस तरह का इंतजाम कर रहे थे उन लोगों के लिए जो इनकी बात को न मानेंगे? उनके लिए इंतजाम कर रहे थे। इसलिए इनको बेचारों को हर मुल्क में अलग-अलग नरक का इंतजाम करना पड़ा। क्योंकि हर मुल्क में दुख की धारणा अगल-अलग है। हिंदुस्तान में अगर हमने नरक बनाया, तो हमें उसमें आग जलानी पड़ी। तिब्बत में अगर नरक में आग जलाओगे, तो कई लोग नरक में जाने को राजी हो जाएंगे, क्योंकि ठंड से तिब्बत बहुत पीड़ित है। इसलिए तिब्बत के नरक में बर्फ ही बर्फ जमानी पड़ी। तो वहां बर्फ ही बर्फ है अंतहीन। और वहां आग जल ही नहीं सकती, तिब्बती नरक में।

अब बड़े मजे की बात है कि नरक भी हमें अलग-अलग राष्ट्रीयताओं के हिसाब से बांटने पड़े। तिब्बती नरक अलग है। क्योंकि तिब्बती आदमी को ठंड से ही डराया जा सकता है। और भारत के आदमी को गर्मी से डराया जा सकता है। यह भय! स्वर्ग में इंतजाम करना पड़ा हमें प्रलोभन का, वह भय का दूसरा रूप है।

प्रलोभन भी गहरे में भय है कि अगर इस बात को माना तो यह लाभ है और नहीं माना तो यह हानि है। तो हमने स्वर्ग में इंतजाम किए। हमने वह सब इंतजाम कर

दिए जिसको धर्मगुरु यहां इनकार करते हैं आदमी के लिए कि बुरा है। यहां वे कहते हैं कि स्त्री, दूसरे की स्त्री की तरफ देखना बुरा है। असल में स्त्री की तरफ ही देखना बुरा है। और वहां, वहां अप्सराएं, जिनको स्वर्गीय वेश्याएं कहना चाहिए, उनका इंतजाम किया हुआ है। और मजे की बात यह है कि यहां तो जमीन पर स्त्री आखिर बूढ़ी हो जाती है, लेकिन वेश्याएं जो स्वर्ग की हैं, अप्सराएं जिनका नाम है, उनकी उम्र सोलह साल से आगे नहीं बढ़ती, वहां रुक जाती है। और यह महात्माओं ने यह सारा का सारा इंतजाम किया हुआ है लोगों को प्रलोभन देने के लिए कि अगर तुमने अच्छे काम किए तो अच्छे काम के फल में यह मिलने वाला है। बहिश्त में, स्वर्ग में शराब के चश्मे बह रहे हैं। यहां शराब चुल्लू भर मत पीना--और वहां चश्मे बह रहे हैं।
अरब में, चंूकि एक परवरटेड सेक्सुअलिटी प्रचलित थी। होमो सेक्सुअलिटी प्रचलित थी मोहम्मद के वक्त में। क्योंकि अरब में पुरुष भी पुरुषों के साथ काम-संबंध तय किए हुए थे। इसलिए इस्लाम धर्म को स्वर्ग में अप्सराओं की ही नहीं, गुलमों की भी व्यवस्था करनी पड़ी--लड़कों की, खूबसूरत लड़कों की। कैसा पागलपन है? होमो सेक्सुअल्स के लिए भी इंतजाम किया वहां स्वर्ग में। यानी जिनका यहां इलाज होना चाहिए, उनका वहां इंतजाम किया हुआ है।
यह सारा भय और प्रलोभन पुरानी नीति के आधार में था। यह सब भय और प्रलोभन खत्म हो गए हैं। हमें पता नहीं चल रहा है कि इनके आधार खत्म हो गए हैं। अब न कोई स्वर्ग के लिए उत्सुक है और न कोई नरक से भयभीत है। लेकिन हम पुरानी नीति की बातें दोहराए चले जा रहे हैं। और उनकी बुनियादें गिर गई हैं। मकान के नीचे से जमीन खिसक गई है, हम छप्पर को सम्हाले खड़े हैं। वह छप्पर भारी पड़ रहा है।
नहीं, हमें नई नीति को जन्म देना पड़ेगा, जो भय पर आधारित नहीं हो सकती। आदमी भय के बाहर हो गया है। बीसवीं सदी का आदमी फियरलेस हो गया है, वह भय के बाहर हो गया है। और उचित है, जब भी कोई आदमी जवान होगा तो भय के बाहर हो जाएगा। बच्चों को डराना आसान है कि चैके में मत जाना, वहां भूत-प्रेत; लेकिन वह बच्चा जब जवान हो जाएगा, एडल्ट हो जाएगा, तो उससे आप कहेंगे, भूत-प्रेत हैं, वह कहेगा कि निपट लेंगे। उसको भूत-प्रेत से कोई परिणाम नहीं हो सकता। मनुष्यता एडल्ट हो गई है। इस सदी में आकर पहली दफा मनुष्यता प्रौढ़ हो गई है। बचपन बचपन नहीं रहा आदमी का। अब उसको पुराने भय काम नहीं करते। लेकिन हम पुराने भय दोहराए जा रहे हैं। और जब वे भय काम नहीं करते और आदमी अनैतिक होता जाता है, तो हम चिल्लाते हैंः आदमी अनैतिक हो गया। असली बात यह है कि हमारी नीति असंगत हो गई है। हमारी जो, जो माॅरल सिस्टम थी, वह जो नीति की व्यवस्था थी, वह इररिलेवेंट हो गई है। उसका कोई संबंध नहीं रह गया।
अब इस नये आदमी को, इस बीसवीं सदी के आदमी को नई नीति चाहिए। उस नीति
के नये आधार चाहिए। यह नई नीति ज्ञान पर खड़ी होगी, भय पर नहीं। यह नई नीति इस बात पर खड़ी होगी कि आज के आदमी को समझ में आना चाहिए कि नैतिक होना उसके लिए आनंदपूर्ण है, नैतिक होना उसके लिए स्वास्थ्यपूर्ण है। नैतिक होना उसके निजी हित में है। यह किसी भविष्य के भय के लिए नहीं है। यह कल मृत्यु के बाद किसी स्वर्ग के लिए नहीं, आज इसी पृथ्वी पर नैतिक होने का रस। और जो अनैतिक है वह अपने हाथ से अपने पैर काट रहा है। जो अनैतिक है वह भविष्य में नरक जाएगा ऐसा नहीं है, जो अनैतिक है वह आज अपने लिए नरक पैदा कर रहा है। असल में, अनीति, कर्म और फल, नरक, इतना फासला अब नहीं चल सकता। अनीति ही अगर नरक है यह आदमी के ज्ञान का हिस्सा बन जाए और नीति ही अगर स्वर्ग है यह आदमी के ज्ञान का हिस्सा बन जाए, तो हम भविष्य के लिए नीति के आधार रख पाएंगे। अन्यथा हम न रख पाएंगे।
लेकिन मुझे लगता है कि ये आधार रखे जा सकते हैं। आज सारी दुनिया के वैज्ञानिक कह रहे हैं कि क्रोध के क्षण में आप इसी वक्त नरक में हो जाते हैं; कहीं मरने के बाद नरक में जाने की कोई जरूरत नहीं है। क्रोध के क्षण मेें आपके सारे शरीर में जहर फैल जाता है। अब किसी को यह कहना कि तुम क्रोध करोगे तो नरक में सड़ना पड़ेगा, बेमानी है। अब तो क्रोध को लेबोरेटरी में

जांच करवाया जा सकता है कि जाओ और लेबोरेटरी में प्रयोग करके देखो कि जब तुम क्रोध में होते हो, तब तुम्हारी कितनी उम्र कम हो जाती है जहर के फैलने से। जब तुम क्रोध में होते हो, तब तुम्हारी कितनी बुद्धि क्षीण हो जाती है जहर के फैलने से। जब तुम क्रोध में होते हो तब तुम्हारा स्वास्थ्य कितना कमजोर हो जाता है जहर के फैलने से। और तुम्हारे बीमार होने की संभावना कितनी तीव्र हो जाती है जहर के फैलने से। और जब तुम क्रोध में हो, तब तुम अपनी आत्महत्या कर रहे हो। सेग्मेंट्री है यह आत्महत्या--खंड-खंड, अंश-अंश में है, इसलिए पता नहीं चलती।
एक आदमी जब पूरे तीव्र क्रोध में होता है तो जितना जहर उसके खून में फैलता है, इसका सौ गुना जहर एक आदमी की हत्या के लिए काफी है। यह हमें ज्ञान का हिस्सा बनाना पड़ेगा। अब भविष्य की नैतिकता ज्ञान का हिस्सा होगी। हमें प्रेम को ज्ञान का हिस्सा बनाना पड़ेगा।
अभी आॅक्सफोर्ड युनिवर्सिटी में एक लेबोरेटरी है, डिलाबार। उस लेबोरेटरी में कुछ बहुत अदभुत प्रयोग हुए हैं, जो मैं आपसे कहना चाहूंगा। जो कि भविष्य की नीति को प्रभावित करेंगे। उन प्रयोगों ने बहुत हैरानी में डाल दिया है। एक ईसाई फकीर ने उस लेबोरेटरी में जाकर यह कहा कि मैं जिन बीजोें पर प्रार्थना करकेे पानी डाल दूं, वे उन बीजों से जल्दी अंकुरित होते हैं जिन पर मैं प्रार्थना करके पानी न डालूं। लेबोरेटरी और वैज्ञानिक यह मानने को तैयार नहीं हो सकता कि प्रार्थना किया गया पानी और बीज को जल्दी अंकुरित कर दे?
प्रयोग किया गया। सौ प्रयोग किए गए और हर बार वह फकीर सही साबित हुआ।
एक ही पुड़े के बीज--आधे एक गमले में डाले गए, आधे दूसरे गमले में डाले गए। एक सी जमीन, एक सी मिट्टी, एक सा पानी, एक सी धूप, सारा इंतजाम एक सा। सिर्फ इतना थोड़ा सा फर्क--एक सा पानी--लेकिन एक पानी पर उस फकीर ने खड़े होकर प्रार्थना की और दूसरे पानी पर प्रार्थना न की। इतना ही फर्क। और हर बार सौ प्रयोगों में वह फकीर सही साबित हुआ। जिस बीज पर प्रार्थना करके पानी डाला गया, वह बीज जल्दी अंकुरित हुए--सारे बीज अंकुरित हुए। जल्दी उनमें फूल आए, जल्दी वे फलों को उपलब्ध हुए। उनके फूलों की सुगंध भी और थी, उनके फलों की ताजगी भी और थी, उन वृक्षों की शान भी और थी।
और जिन बीजों पर प्रार्थना नहीं की गई, उनमें कुछ भेद था। वे सारे बीज अंकुरित नहीं हुए। अंकुरित जैसे धीरे-धीरे होना था वैसे हुए। और इन पौधों के सामने वे बिलकुल ही ऐसे मालूम पड़ने लगे कि कोई अनिवार्य तत्व उनको नहीं मिला है जो इन पौधों को मिल गया है। लेकिन वह अनिवार्य तत्व प्रार्थना हो सकती है, इसकी कल्पना वैज्ञानिक को कठिन है। लेकिन प्रयोगों ने सिद्ध किया कि प्रार्थना वह अनिवार्य तत्व हो सकती है।
अब प्रार्थना भगवान से डर कर कोई आदमी इस दुनिया में नहीं करेगा। करनी भी नहीं चाहिए। क्योंकि जो प्रार्थना भय के कारण की जाए, वह प्रार्थना हो भी नहीं सकती। क्योंकि जिस प्रार्थना में भीतर भय है, वह प्रार्थना प्रेम नहीं बन सकती। असल में जहां भय है, वहां प्रेम पैदा ही नहीं हो सकता।
तुलसीदास ने कहा हैः भय बिनु होय न प्रीति। एकदम गलत बात कही है। कहा
है कि बिना भय के प्रेम नहीं होता। यह पुराने आदमी का दिमाग था। मैं आपसे कहता हूंः जहां भय है, वहां प्रेम कभी होता ही नहीं। जहां भय नहीं है, वहीं प्रेम होता है।
पुराना आदमी भय के कारण प्रार्थना कर रहा था। हाथ जोड़े, घुटने टेक कर खड़ा हुआ था। अब नये आदमी को भयभीत नहीं किया जा सकता। यह उचित है, बुरा भी नहीं हुआ। यह आदमी का विकास है, यह ग्रोथ है कि उसकी चेतना आगे बढ़ी। अब अगर वह प्रार्थना भी करेगा, तो किसी ज्ञान के कारण। नई नीति भय केंद्रित नहीं, ज्ञान केंद्रित होगी।
इस फकीर के साथ एक और घटना घटी है उस लेबोरेटरी में, वह भी आपसे कहना चाहूंगा। जिस बीज पर इसने प्रार्थना की उनमें से एक बीज का फोटोग्राफ लिया गया कि इसमें कोई फर्क तो नहीं हो गया बीज में। क्योंकि जब बीज के अंकुर में फर्क पड़ा, और जब उसके पत्तों में फर्क पड़ा, और फूलों में फर्क

पड़ा, तो बीज में कोई फर्क पड़ जाना चाहिए; नहीं तो कैसे फर्क पड़ेगा? तो उस बीज का फोटो लिया गया जिस पर प्रार्थना नहीं की गई और उस बीज का फोटो लिया गया जिस पर प्रार्थना की गई। और एक मिरैकल और एक चमत्कार की घटना घटी, और आॅक्सफोर्ड जैसी युनिवर्सिटी में। और वह चमत्कार की घटना यह है कि जिस बीज पर प्रार्थना की गई, वह फकीर अपने गले में क्राॅस लटकाए हुए था क्राइस्ट का, उस बीज के भीतर क्राॅस का चिह्न आ गया।
अब अगर हम मनुष्य को प्रार्थना की तरफ...और बिना प्रार्थना के मनुष्य अधूरा है। और बिना प्रार्थना के मनुष्य की जिंदगी में रौनक नहीं हो सकती। लेकिन बीसवीं सदी अब प्रार्थना को, प्रेम को, घृणा को, क्रोध को, अनीति को, नीति को ज्ञान केंद्रित बनाएगी। वे नाॅलेज ओरिएंटेड होंगे, फीयर ओरिएंटेड नहीं हो सकते। असल में अज्ञान में भय के अतिरिक्त और कोई उपाय न था। अब ज्ञान में भय कोई भी उपाय नहीं है।
लेकिन हम पुरानी बातचीत दोहराए चले जाते हैं। हम पुराने गुरुओं को दोहराए चले जाते हैं। हम पुराने शास्त्रों को दोहराए चले जाते हैं। उन बच्चों के सामने जो कि बीसवीं सदी के हैं। इनके बीच हजारों साल का फासला हो गया है। इनसे इनका कोई संबंध नहीं रह गया है। अब ये सब शास्त्र, और सब ग्रंथ, और ये सब गुरु इनके लिए बेमानी हो गए हैं। इनसे इनका कोई आत्मिक संबंध नहीं रह गया है इनके भीतर। और इन गुरुओं और शास्त्रों के बीच अब कोई लेन-देन नहीं है। और आप अगर इन्हीं को दोहराए चले गए, तो इन बच्चों को अगर विकृति मिल जाए, अगर यह बीसवीं सदी का आदमी अनीति की तरफ झुकता चला जाए, अगर यह बीसवीं सदी का आदमी अराजक हो जाए, अगर यह बीसवीं सदी का आदमी उच्छृंखल हो जाए--तो जिम्मा किसका होगा?
जिम्मा हमारा होगा। जो कि पुरानी बातें दोहराए चले गए, जो असंगत हो गई थीं।
नये मनुष्य के लिए नये जीवन का ज्ञान चाहिए। नये मनुष्य के लिए परमात्मा की नई प्रतिमाएं चाहिए। नये मनुष्य के लिए नीति के नये मापदंड चाहिए। नये मनुष्य के लिए जीवन की पूरी नई व्यवस्था चाहिए। वह पुराने से सब टूट गया है। जैसे बैलगाड़ी के चक्के रेलगाड़ी में काम नहीं पड़ते, वैसे ही सब पुरानी नीति के चक्के अब नये आदमी के बिलकुल काम पड़ने वाले नहीं हैं। यह अगर हमें स्मरण आ जाए, तो कोई कठिनाई नहीं है कि बीसवीं सदी का मनुष्य एक बहुत बड़ा चरण, एक बहुत बड़ा सोपान, एक बहुत बड़ी उपलब्धि सिद्ध हो।
और अगर यह हमें समझ में न आए तो भी पीछे तो लौटा नहीं जा सकता, यह प्रसव
की पीड़ा लंबी हो जाएगी। और इस प्रसव की पीड़ा में यह खतरा है कि पुरानी पीढ़ियां आदमी को पीछे की तरफ खींचती रहें और नई पीढ़ियां सिर्फ प्रतिक्रिया में विकृत और परवर्ट हो जाएं। और पुराने आदमी से बचने के लिए कहीं भी दौड़ने लगें और विक्षिप्त हो जाए। यह खतरा सामने खड़ा हो गया है। आज सारी दुनिया में चाहे हिप्पी हों, चाहे बीटल हों, चाहे बीटनिक हों, चाहे इप्पीज हों, और चाहे और तरह के हजार नाम हैं यूरोप और अमरीका में उनके, वे हों, चाहे हमारे नक्सलाइड हों, और चाहे कोई और होें--ये सारे बच्चे एक बहुत गहरी घनी पीड़ा में जी रहे हैं। इनकी पीड़ा यह है कि पुरानी सारी व्यवस्था असंगत हो गई और नई कोई व्यवस्था नहीं है। और नई व्यवस्था बच्चे पैदा कर पाएं, इसमें अगर उनको पुरानी पीढ़ियों का सहारा मिल जाए, साथ मिल जाए, तो बड़ी सुविधा हो सकती है। नये बच्चे पैदा करेंगे, लेकिन देर लग सकती है। बहुत देर लग सकती है। इतनी भी देर लग सकती है कि चीजें इतनी रुग्ण और इतनी विकृत हो जाएं कि उनको सुधारना निरंतर कठिनाई लेने लगे।
एक अंतिम बात फिर मैं अपनी बात पूरी करूं। और वह बात यह है आखिरी कि पुराना आदमी दुख को स्वीकार करके जी रहा था। उसकी एक एक्सेप्टिबिलिटी थी दुख के प्रति। उससे राजी हो गया था। मौत थी, तो राजी था; बीमारी थी, तो राजी था; गरीबी थी, तो राजी था--जो कुछ भी था, उसके लिए राजी था। नया आदमी अब दुख को स्वीकार करने को राजी नहीं है।
क्योंकि विज्ञान ने सुख की सारी सुविधाएं दे दी हैं, जो पुराने आदमी
के पास नहीं थीं। इसलिए अब नये आदमी को अगर हम दुखवादी दर्शन सिखाने जाएंगे, तो वह अर्थहीन है। पुराना आदमी मजबूरी में था, दुख था और कोई उपाय

न था। मौत थी और उसको आगे हटाने का कोई उपाय न था। इसलिए हस्तरेखा विज्ञान और ज्योतिष और सब चीजें विकसित करना सुलभ था। आदमी पता लगा लेता था कि सत्तर साल जीना है। जीना है सत्तर साल, बात खत्म हो गई। इकहत्तर साल का कोई सवाल नहीं था। अब यह बात खत्म हो गई है। अब इसका कोई अर्थ नहीं रह गया है। अब आदमी जितना लंबा जीना चाहे, उसके हमारे पास उपाय हैं। और अब यह भी कठिन नहीं है कि किसी आदमी को हम अगर अनंत समय तक जिंदा रखना चाहें, तो पचास सालों बाद हम उसे जिंदा रख सकें।
एक आदमी ने, अमरीका में अभी मरा है, तो दस करोड़ डालर की वसीयत करके मरा
है कि उसकी लाश को सुरक्षित रखा जाए। क्योंकि विज्ञान करीब-करीब उस जगह पहुंच गया है जहां बीस-पच्चीस साल में मरे हुए आदमी को पुनरुज्जीवित किया जा सके। तो उस आदमी की लाश पर एक लाख रुपया रोज खर्च किया जा रहा है, ताकि वह उसी हालत में रहे जिस हालत में मरते क्षण में था। वह आदमी इस आशा में मरा हुआ पड़ा है कि तीस-चालीस साल में जब विज्ञान इस जगह आ जाएगा कि आदमी पुनरुज्जीवित किया जा सके, तो वह पुनरुज्जीवित हो सके। वह करीब आ रहा है। इसलिए अब, अब मृत्यु को रेखा नहीं माना जा सकता है। अब ज्योतिष उस अर्थ में सार्थक नहीं हो सकता है। अब बीमारी अनिवार्य नहीं है, सिर्फ हमारा अज्ञान है। अब कुरूपता भी भाग्य नहीं है, सिर्फ हमारा अज्ञान है। क्योंकि यह भविष्य में बीस-पच्चीस साल, तीस साल में दुनिया में किसी आदमी के कुरूप होने का कोई कारण नहीं है।
तो अब जो भविष्य का मनुष्य होगा, वह दुख के आधार पर जीवन को निर्मित नहीं करेगा, इसलिए त्यागवादी नहीं हो सकता। भविष्य का मनुष्य सुख के जीवन पर आधार बनाएगा, इसलिए भोगवादी होगा। और ध्यान रहे, त्यागवाद हमारी मजबूरी थी। और इसलिए त्याग यहां करवाते थे, भोग का इंतजाम स्वर्ग में करते थे। जब भविष्य का आदमी यहीं स्वर्ग बना सकेगा, तो त्यागवादी नहीं हो सकता। हमें समझ लेना चाहिए कि दुनिया में अब उसी धर्म का भविष्य है जो जीवन
के रस और जीवन के भोग को सहज स्वीकार कर सके--जो जीवन को दुख की दिशा न दे, जो यह न कहे कि संसार दुख है, जो यह न कहे कि जीवन पाप है, जो यह न कहे कि आवागमन से मुक्ति ही हमारा लक्ष्य।
नहीं; अब जो धर्म यह घोषणा कर सके कि जीवन परमात्मा की देन है, जो धर्म
यह घोषणा कर सके कि जीवन परमात्मा का दिया हुआ आशीर्वाद है। अब जो धर्म यह घोषणा कर सके कि जो योग्य हैं, जो सफल हैं, जो जीवन के रस को पूरा लेते हैं, उन्हें अनंत जीवन उपलब्ध होने की संभावना है। ऐसा धर्म भविष्य की पीढ़ी के लिए धर्म बन सकता है।
ये थोड़ी सी बातें मैंने कहीं। मेरी बातों को मान लेना आवश्यक नहीं है। खतरनाक भी है मान लेना। मानने से बचना ही चाहिए। मेरी बातों को सोचना। हो सकता है मेरी सारी बातें गलत हों। और आप सोचें और पाएं कि बातें गलत हैं, तो भी आपका लाभ होगा। क्योंकि कुछ बातों को गलत जान लेने से आदमी सही की तरफ बढ़ जाता है। और अगर कोई बात सही मालूम पड़ जाए, तो वह मेरी न रह जाएगी, वह आपकी अपनी हो जाएगी। जिसको हम विचारपूर्वक जानते हैं कि सही है, वह उधार नहीं रह जाती, वह स्वयं की हो जाती है। और सिर्फ वे ही सत्य कारगर होते हैं जो स्वयं के हैं। दूसरे के उधार सत्य सिर्फ बोझ बन जाते हैं। तो मैं आपका बोझ न बनूं, इसकी आखिरी प्रार्थना करता हूं। पुराने गुरु बहुत बोझ बन गए हैं। अब किसी को सिर पर रखने की जरूरत नहीं है।

मेरी बातें इतने प्रेम और शांति से सुनीं, उससे बहुत अनुगृहीत हूं।
और अंत में सबके भीतर बैठे परमात्मा को प्रणाम करता हूं। मेरे प्रणाम स्वीकार करें।